बाणभट्टविरचितं

हर्षचरितम्

(प्रथमः उच्छ्वासः)

(समालोचनात्मक भूमिका, हिन्दी-अनुवाद, संस्कृत-व्याख्या शब्दार्थ-टिप्पण्यादि सहितम्)

67

बाणभट्टविरचितं

हर्षचरितम्

(प्रथमः उच्छ्वासः)

[समालोचनात्मक भूमिका, हिन्दी-अनुवाद, संस्कृत-व्याख्या, शब्दार्थ, टिप्पण्यादि सहितम्]

सम्पादक तथा व्याख्याकार :

चुन्नीलाल शुक्ल साहित्याचार्य

एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत), साहित्यरत्न

साहित्य भण्डार
सुभाष बाजार
मेरठ-२५०००२

प्रकाशक :

रतिराम शास्त्री

अध्यक्ष,

साहित्य भण्डार,

सुभाष बाजार, मेरठ।

दूरभाष : ७७६५४

प्रथम संस्करण, सितम्बर १६७२
द्वितीय संस्करण, जौलाई १६७४
तृतीय संस्करण, सितम्वर १६७६
चतुर्थ संस्करण, जनवरी १६८२

मूल्य : पाँच रुपये मात्र (५·००)

मुद्रक :

अरविन्द प्रिंटिंग प्रैस, मेरठ।

दूरभाष : ७४४७५

प्राक्कथन

यह निर्विवाद एवं सर्वविदित है कि संस्कृत साहित्य की सभी विधायें वैदिक साहित्य से ही आविर्भूत हुई हैं। अतः संस्कृत-गद्य-साहित्य का भी उद्गम-स्थल वैदिक साहित्य है। सर्वप्रथम गद्य का दर्शन, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा सूत्रभाष्य टीका आदि के रूप में प्राप्त होता है। तदन्तर गद्य का सरल एवं स्वाभाविक रूप वृहत्कथा, लोककथा और पञ्चतन्त्र आदि में देखा जाता है। इसके बाद सुबन्धु और दण्डी ने गद्य-रचना को अलंकृत एवं दीर्घकाय, श्लेषपूर्ण, कृत्रिम गद्य शैली के द्वारा विभूषित किया। जिसका प्रौढ़ प्राञ्जल रूप बाणभट्ट की रचनाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बाणभट्ट की मौलिक प्रतिभा से प्रभावित होकर भारतीय विद्वान् समीक्षकों ने बाणभट्ट को गद्य-सम्राट की उपाधि से सहर्ष सम्मानित किया है कि आज बाणभट्ट की प्रतिभा को कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष आदि की नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के समकक्ष माना जाता है। यद्यपि बाणभट्ट की रचनाओं में कालिदास जैसी उदात्त भावप्रवणता नहीं है तथापि माघ, भवभूति आदि की कृतियों के समान बाण की कृतियों में सानुप्रासिक एवं अलंकृत दीर्घकाय समासयुक्त पदावली का उत्कृष्ट स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इसलिये कहा जाता है कि 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'।

वस्तुतः बाणभट्ट एक ऐसे गद्य-लेखक हैं जिनकी प्रतिभा एवं वर्णन-शैली प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश में अन्य कविगण प्रातःकालीन नक्षत्र समूह के समान कान्तिहीन एवं तिरोहित हो जाते हैं। बाण की मुख्य दो रचनायें हैं जिनमें 'हर्षचरितम्' नामक खण्डकाव्य और 'कादम्बरी' महाकाव्य है। हर्षचरित एक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण खण्डकाव्य है जिसकी रचना 'आख्यायिका' के सर्वथा बहुरूप है। कादम्बरी एक कथा है। कथा की कथावस्तु काल्पनिक होती है और आख्यायिका की कथावस्तु ऐतिहासिक होती है। अतः आपकी दोनों रचनायें सफल एवं अनुपम कृति हैं।

हर्षचरित की उत्कृष्ट रचना से प्रभावित होकर कतिपय विश्वविद्यालय इसे स्नातकोत्तर परीक्षा में निर्धारित करते हुये गौरव का अनुभव कर रहे हैं।

मैंने इसकी सरल हिन्दी, संस्कृत-व्याख्या, शब्दार्थ आदि लिखकर छात्रों के लिये उपयोगी बनाने का प्रयास किया है, आशा है छात्रगण हर्षचरित की इस सरल टीका से अवश्य लाभान्वित होंगे।

यद्यपि इसके मुद्रण में पर्याप्त सावधानी रखने का प्रयास किया गया है तथापि स्खलतियाँ सम्भव हो सकती हैं क्योंकि परेश शक्ति को छोड़कर अन्य सभी दृश्यमान जगत् त्रुटिग्रस्त एवम् अपूर्ण हैं। महामहिम विद्वज्जनों से सानुरोध निवेदन है कि वे स्वानुभूत स्खलतियों की सूचना देकर कृतार्थ करें। जिनका भविष्य में ध्यान रखा जायगा।

इस 'हर्षचरित' प्रथमोच्छ्वास की टीका लिखने में जिन मनीषियों की कृतियों का अवलम्बन ग्रहण किया गया है, उनके प्रति श्रद्धावनत होकर आभार प्रकट करता हूं। साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ के संस्थापक एवम् अध्यक्ष श्री रतिराम जी शास्त्री के प्रति जो आभार प्रकट करूं वह अत्यल्प ही होगा क्योंकि उनकी प्रेरणा और शुभशंसाओं के परिणाम-स्वरूप मैं लेखन कार्य में प्रवृत्त हुआ हूं। अतः अब तक मेरी हर्षचरित सहित सात पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनके नाम (१) काव्यप्रकाशप्रकाश (प्रश्नोत्तररूप में), (२) गद्यकारबाण (प्रश्नोत्तर रूप में), (३) संस्कृत नाटकालोचन (प्रश्नोत्तर रूप में, सात नाटककारों की कृतियों की समीक्षा), (४) कर्पूरमञ्जरी (नाटक की टीका), (५) निरुक्त (प्र० अ० षष्ठपाद, द्वितीय अध्याय और सप्त अध्याय की टीका), (६) बुद्धिचरित (तृतीय सर्ग की टीका), (७) हर्षचरित (प्रथमोच्छ्वास की टीका) हैं।

अन्त में इस पुस्तक के प्रकाशन एवं मुद्रण में अधिक परिश्रम करने वाले श्री रतिराम जी शास्त्री के सुपुत्र राजकिशोर शर्मा एम० ए० विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। जिनके परिश्रम से इसका मुद्रण-कार्य सम्पन्न हुआ। अन्त में उन सभी सज्जनों को धन्यवाद देता हूं जिनका इसके मुद्रण एवं प्रकाशन में सहयोग प्राप्त हुआ।

लेखक—
विदुषामाश्रवः
चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्याचार्य
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), साहित्यरत्न
प्रवक्ता,
बी० ए० वी० इण्टर कालेज, मेरठ।
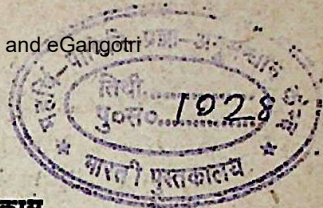
भूमिका

संस्कृत गद्य साहित्य का आविर्भाव तथा विकास

यद्यपि संस्कृत साहित्य में गद्य की उत्पत्ति वेदों से ही हुई है तथापि वेदों में पद्य को प्रचुरता प्राप्त होने से वेद गद्य-साहित्य के निर्देशक ही कहे जा सकते हैं, प्रवर्तक नहीं। परन्तु वेदों के व्याख्यान रूप ब्राह्मण ग्रन्थ, गद्यप्रधान होने के कारण गद्य के प्रवर्तक स्वीकार किये जा सकते हैं। इसके पश्चात् आरण्यक-ग्रन्थ तथा उपनिषद् ग्रन्थ, गद्य प्रधान होने के कारण लौकिक गद्य-साहित्य के प्रवर्तक माने जाते हैं। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर क्रमशः गद्य साहित्य, उपनिषद् ग्रन्थों तक पुष्पित, पल्लवित, होता हुआ विकास की ओर उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ लौकिक साहित्य में विकसित हुआ। उपनिषदों की सरल, माधुर्य गुण से अलंकृत एवं परिष्कृत भाषा काव्यामृत की वर्षा करती हुई लौकिक साहित्य में अवतरित हुई। अतः लौकिक साहित्य में गद्य-साहित्य की उत्पत्ति वेद से ही हुई है। यह मानना अधिक समीचीन एवं न्याय संगत है। 'वृत्तवन्धोज्झितगद्यम्' इस लक्षण के अनुसार छन्दोवद्ध रहित सुललित पदों से अलंकृत रचना को गद्य कहते हैं। यह गद्य रचना क्रमशः (१) वृत्तगन्ध (२) उत्कलिकाप्राय (३) चूर्णक (४) मुक्तक भेद से चार प्रकार की होती है। गद्य रचना से गुम्फित काव्य को गद्य-काव्य कहते हैं। व्यास ने महाभारत में गद्य का प्रयोग किया है। यास्क ने ७०० ई० पूर्व निरुक्त की रचना गद्य में ही की है। महा वैयाकरण महर्षि पतञ्जलि ने १५० ई० पूर्व महाभाष्य नामक ग्रन्थ की रचना गद्य में ही की है। पद्य की अपेक्षा गद्य-रचना अधिक सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसी भाव को व्यक्त करने के लिये प्राचीन विद्वानों कहा है कि—

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"

अर्थात् गद्य-रचना ही कवि की योग्यता की कसौटी (परीक्षा का आधार) है। प्रथम, संस्कृत में गद्य का प्रयोग टीका के रूप में प्रारम्भ हुआ। व्याकरण, न्याय, वेदान्त, योग, ज्योतिष आदि के ग्रन्थों में गद्य का प्रयोग हुआ है।

पद्य की अपेक्षा गद्य रचना साहित्य के रूप में अल्पमात्रा में प्राप्त होती है। गद्य का प्रयोग, आख्यायिका एवं नाटकों के रूप में विकसित हुआ है। गद्य साहित्य का आविर्भाव वेदों से ही माना जाता है। तथापि लौकिक साहित्य में गद्य की उत्पत्ति कब और कैसे हुई यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। परन्तु साहित्यिक गद्य का दर्शन सर्वप्रथम दण्डी, सुबन्धु तथा बाण-भट्ट की रचनाओं में प्राप्त होता है। वह पूर्ण विकसित एवं सशक्त है। दण्डी, सुबन्धु से पूर्व कलाकारों की कृतियों का परिचय निविड़ अन्धकार में अन्तर्हित है। परन्तु यह निश्चित है कि गद्य साहित्य संस्कृत की एक प्राचीन परम्परा है।

कात्यायन ने ३०० ई० पू० अपने 'आख्यानाख्यातिकेतिहासपुराणेभ्यश्च' वार्तिक में आख्यायिका शब्द का उल्लेख किया है महाभाष्यकार पतञ्जलि ने (१) वासवदत्ता (२) सुमनोत्तश और (३) भैमरथी इन तीन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है। गद्य-काव्य की रचना का विकास पद्य-काव्यों से लोक कथाओं के आधार से ही हुआ। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में भट्टारहरिश्चन्द्र का नाम उच्चकोटि के गद्य-लेखक के रूप में लिखा है तथापि भट्टारहरिश्चन्द्र का कोई गद्य का ग्रन्थ नहीं प्राप्त होता है। किन्तु कुछ शिलालेखों पर अंकित लेखों से उनके गद्य-साहित्य का परिचय प्राप्त होता है। १५० ई० में रुद्रदामन के शिलालेख में अंकित गद्य-शैली को देखने से अलङ्कृत गद्य-शैली का परिचय प्राप्त होता है। गुप्तकाल के एक शिला-लेख में (४०० ई० में) एक ऐसी परिमार्जित गद्य-शैली का परिचय मिलता है, जिसको देखकर बाण की शैली का अनुमान लगाया जा सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि दण्डी, सुबन्धु, बाण से पहले ही संस्कृत-गद्य कला का विकास हो चुका था। परन्तु दण्डी, सुबन्धु और बाण ने अपनी असाधारण प्रतिभा से ऐसे उत्कृष्ट गद्य साहित्य का सृजन किया, जिसकी तुलना में अन्य पूर्ववर्ती कवियों एवं लेखकों की गद्य-कला तिरोहित हो गयी। इसीलिये उन कलाकारों के नाम भी प्राप्त नहीं होते हैं। वस्तुतः दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट, गद्य साहित्य के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि लेखक हैं। यद्यपि वररुचि-कृत 'चारुमति' रामिलसोमिल के द्वारा लिखित 'शूद्रकथा' और श्री पालि-कृत 'तरङ्गवती' आदि रचनायें यह सिद्ध कर रही हैं कि इन दण्डी, सुबन्धु,

बाणभट्ट से पूर्व गद्य का पर्याप्त विकास हो चुका था, यद्यपि यह रचनायें आज उपलब्ध नहीं हैं तथापि गद्य-साहित्य का परिचय एवं क्रमिक विकास को सूचित करती हैं।

कथा और आख्यायिका—संस्कृत गद्य साहित्य में मुख्य रूप से (१) कथा और (२) आख्यायिका के दो भेद प्राप्त होते हैं। दण्डी के मतानुसार (१) कथा कवि कल्पना प्रसूत होती है और आख्यायिका ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित होती है। (२) कथा में वक्ता स्वयं नायक, तथा कोई अन्य नायक होता है जबकि आख्यायिकाओं में नायक स्वयं वक्ता होता है। इस प्रकार आत्मकथा को ही आख्यायिका कहते हैं। (३) कथा का विभाजन उच्छ्वास अथवा अध्यायों में किया जाता है तथा आख्यायिका में वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का वर्णन रहता है किन्तु कथा में नहीं। (४) कथा में कन्यापहरण, युद्ध, विरह, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि प्रकृति वर्णनों का चित्रण रहता है, परन्तु आख्यायिका में नहीं। (५) कथा में लेखक किसी अभिप्राय विशेष से कुछ ऐसे शब्दों को व्यवहृत करता है जो कथा और आख्यायिका में अन्तर स्पष्ट करते हैं।

परन्तु उपर्युक्त इस भेद का निर्वाह संस्कृत गद्यकारों ने पूर्णरूप से नहीं किया है। दण्डी का मत है कि वस्तुतः कथा और आख्यायिका में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अपितु गद्य के कथा और आख्यायिका ये दो नाम मात्र हैं।

दण्डी—संस्कृत गद्यकारों में सबसे प्राचीन रचना महाकवि दण्डी की प्राप्त होती है। "शार्ङ्गधरपद्धति" में लिखित श्लोक से दण्डी के तीन रचना ग्रन्थों का संकेत प्राप्त होता है। इनमें (१) काव्यादर्श (२) दशकुमारचरित ये दो रचनायें हैं। तृतीय रचना के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कोई दण्डी की तृतीय रचना "छन्दोविचिति" या "कलापरिच्छेद" मानता है। डा० पिशेल ने निम्नलिखित दो आधारों से मृच्छकटिक को दण्डी की रचना स्वीकार किया है। उनका तर्क है कि — १)

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्मे विफलतां गता॥

यह मृच्छकटिक का श्लोक काव्यादर्श में भी प्राप्त होता है। (२)

तथा मृच्छकटिक और दशकुमारचरित का सामाजिक वर्णन एक जैसा है अतः मृच्छकटिक और दशकुमारचरित में दोनों रचनायें दण्डी की हैं। परन्तु भास के नाटकों के परिशीलन से डा० पिशेल का यह मत समीचीन प्रतीत नहीं होता है। कुछ विद्वानों ने 'मल्लिकामारुत' नामक नाटक को दण्डी की तृतीय रचना माना है। परन्तु यह नाटक ५०० ई० की रचना स्वीकार किया जा चुका है। भोजदेव ने 'द्विसन्धान काव्य' को दण्डी की रचना स्वीकार किया है। १९२४ ई० में "अवन्तिसुन्दरीकथा" नामक एक अपूर्ण गद्य काव्य का प्रकाशन हुआ है— इसकी समानता का चित्र 'दशकुमार' में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। अतः एम० आर० महोदय ने दण्डी की तृतीय रचना "अवन्तिसुन्दरीकथा" को मानने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः अवन्तिसुन्दरी कथा नामक रचना ही दण्डी की तृतीय रचना है, क्योंकि काव्यादर्श की टीका में जंघाल ने दण्डी की तृतीय रचना 'अविन्तसुन्दरी कथा' का उल्लेख किया है। इसी आधार पर कतिपय विद्वान् दण्डी की तृतीय रचना "अवन्ति-सुन्दरीकथा" को मानते हैं।

दण्डी, सरस एवं मनोहर वैदर्भी रीति प्रधान गद्य-शैली के आचार्य माने जाते हैं। आपकी वर्णन शैली प्रभावमयी ओर प्रसादगुण युक्त है। इसके अतिरिक्त दण्डी की भाषा व्यावहारिक एवं प्रवाहपूर्ण तथा परिमार्जित है। सुबन्धु के समान प्रत्यक्षर श्लेषमयी भाषा नहीं है और न बाणभट्ट की तरह दीर्घ दीर्घतर समास बहुल रचना है तथा कृत्रिम अलङ्कारों के भार से बोझिल भी नहीं है। वाक्य छोटे-छोटे तथा ललित पदावली से सुशोभित हो रहे हैं। इस प्रकार दण्डी संस्कृत गद्य-लेखकों में प्रशंसनीय एवं आदर्श कवि माने जाते हैं। किसी भारतीय समालोचक ने दण्डी की प्रशंसा करते हुए कहा है कि—

"कविर्दण्डीकविर्दण्डीकविर्दण्डी न संशयः"

इसके अतिरिक्त किसी अन्य समीक्षक ने वाल्मीकि के लिये कवि शब्द का प्रयोग एक वचन में और व्यास के बाद कवि शब्द का प्रयोग द्विवचन में तथा दण्डी के बाद कवि का बहुवचन में प्रयोग किया है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

अतः संस्कृत गद्य-साहित्य में आचार्य दण्डी का स्थान एक गौरवपूर्ण स्थान है।

सुबन्धु — वासवदत्ता नामक गद्य-काव्य के प्रणेता सुबन्धु के जन्म, समय आदि के विषय में मतभेद प्राप्त होता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि सुबन्धु, वाणभट्ट के परिवर्ती थे; क्योंकि सुबन्धु ने वाण की रचना का अनुकरण किया है, वासवदत्ता में इन्द्रायुध शब्द का प्रयोग चन्द्रापीड के इन्द्रायुघ का संकेत करता है। महाश्वेता और कादम्बरी अपने-अपने प्रेमियों के निधन पर प्राणपरित्याग करने के लिये उद्यत होती हैं। किन्तु आकाशवाणी से सान्त्वना प्राप्त कर प्राण परित्याग नहीं करती हैं। "वासवदत्ता" में भी प्रेयसी के खो जाने पर कन्दर्पकेतु भी प्राणोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करता है। इससे कुछ विद्वानों का कहना है कि सुबन्धु वाणभट्ट के पश्चात् उत्पन्न हुये। परन्तु इस मत को स्वीकार करने में कोई प्रमाण नहीं है। म० म० काणे महोदय ने प्रमाण सहित सिद्ध कर दिया है कि सुबन्धु वाण से प्रथम हुये और वाण ने अपनी रचना कादम्बरी में सुबन्धुकृत वासवदत्ता का ही उल्लेख किया है। सुबन्धु ने स्वयं एक नायिका का वर्णन करते हुए लिखा है—

"न्यायास्थितमिवोद्योतकरस्वरूपां बौद्ध-संगतिमिवालङ्कारभूषिताम्"

डा० कीथ के मतानुसार सुबन्धु के महाश्लेष ने माध्यम से नैयायिक उद्योतकर तथा बौद्ध धर्मकीर्ति के "बौद्ध संगत्यलंकार" नामक ग्रन्थ की ओर संकेत किया है। इन दोनों लेखकों का समय सप्तम शताब्दी का पूर्वार्द्ध था। इसके अतिरिक्त जिन भद्रक्षमाश्रमण ने अपने भाष्य में (६०८ ई० में) "वासवदत्ता" और "तरंगवती" का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि सुबन्धु का समय ६०० ई० से कुछ पूर्व मानना चाहिए।

वासवदत्ता ही सुबन्धु की एकमात्र रचना प्राप्त होती है, वासवदत्ता की कथा अत्यल्प है परन्तु वर्णन विस्तार की प्रधानता और पण्डित्य कल्पना का स्थान ग्रहण करता है। राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्न में भावी प्रियतमा का दर्शन करता है और काम सन्तप्त होकर उसकी खोज में निकल पड़ता है। वासवदत्ता की अति संक्षिप्त यही कथा है सुबन्धु की रचना शैली अतिशयोक्ति, अनुप्रास एवं समासप्रधान शैली है। उनकी यह गर्वोक्ति सत्य है कि मैंने प्रत्यक्षरश्लेषमयी रचना का प्रणयन किया है। आपकी रचना में श्लेष के

सघन कानन पग-पग पर प्राप्त हो रहे हैं जिनके कारण वास्तविक काव्यत्व की समीक्षा करना कठिन्न हो जाता है। आपकी समास बहुल पदावली में स्वरमाधुर्य एवं गेयता मुखरित हो रही है।

बाणभट्ट

श्री हर्षवद्धन की सभा के पण्डित एवं दरबारी महाकवि बाणभट्ट का समय निश्चित और विवादरहित है। आपका समय सप्तम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। आपका जन्म वात्स्यायन गोत्र में हुआ था। यह एक समृद्ध परिवार में उत्पन्न हुए थे। गुणग्राही हर्षवर्धन की सभा में रहकर संस्कृत गद्यकारों में सर्वाधिक यश प्राप्त किया। आपकी प्रमुख दो रचनायें हैं (१) हर्षचरित और (२) कादम्बरी। हर्षचरित एक ऐतिहासिक रचना है, जिसमें अपने वंश का और सम्राट् हर्ष के उदात्त चरित्र का वर्णन किया है। कादम्बरी एक काल्पनिक कथा है जिसमें लम्बे-लम्बे समासों के विपुल कानन हैं। तथापि कादम्बरी सरस संस्कृत गद्य-साहित्य का महाकाव्य ही नहीं अपितु उत्कृष्ट महाकाव्य है। बाण की रचना शैली में अलंकारों का चित्रण बड़ी मनोरमता एवं सतर्कता के साथ किया गया है।

बाण के प्रकृति-चित्रण, सजीव एवं सूक्ष्म विवेचन शक्ति के परिचायक हैं। रमणीम अच्छोद सरोवर, हिमालय, भयावह-विन्ध्याटवी, सन्ध्या के वर्णन—प्रकृति वर्णनों की श्लिष्टता के उदाहरण हैं। चन्द्रदेव का कहना है कि कुछ कविगण श्लेष वर्णन में और कुछ लोग शब्द गुम्फन की कला में और कुछ रसाभिव्यक्ति में, कुछ अलंकार योजना में एवं कुछ वर्णन में दक्ष होते हैं; परन्तु बाणभट्ट तो कवितारूपी विन्ध्याटवी में कविरूपी कुंजरों के मस्तकों को विदीर्ण करने वाले सिंह हैं, जैसा कि लिखा भी है—

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसेचापरेऽ—
लंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आसर्वत्रगभीरधीरकवताविन्ध्याटवीचातुरी,
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरोबाणस्तु पञ्चाननः।

इस प्रकार निःसंदेह बाणभट्ट संस्कृत-गद्य सम्राट थे, जिनकी तुलना करने वाला "भूतो न भविष्यति" की उक्ति को चरितार्थ कर रहा है। यद्यपि बाणभट्ट के पश्चात् भी गद्य-रचना का विकास चलता आ रहा है परन्तु जो गद्य-

साहित्य की चरमोन्नति दण्डी, सुवन्धु और वाण के समय में हुई वह फिर आगे नहीं हो सकी है। यद्यपि पं० अम्बिकादत्त व्यास तथा पण्डित क्षमाराव आदि ने भी संस्कृत-गद्य-काव्यों की रचना करके अपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त की है, किन्तु वह सब वाणभट्ट की शैली का अनुसरण ही कहा जा सकता है। अतः वाण संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट् एवं प्रतिनिधि कवि थे। इस विषय में किञ्चित् भी सन्देह का अवसर नहीं रह जाता है।

आधुनिक संस्कृत गद्य कवि—गद्य रचना प्राचीन काल से निरन्तर होती आ रही है। आधुनिक काल में भी अनेक प्रतिभा सम्पन्न गद्य-कवि अवतरित हुये हैं जिनमें अम्विकादत्त व्यास, हृषीकेश भट्टाचार्य एवं पण्डित क्षमाराव मुख्य माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त नासिक निवासी पं० मेघाव्रत ने शिवराजविजय के अनुकरण पर "कुमुदिनीचन्द्र" नामक उपन्यास की रचना की है। श्रीमती राजम्वा, श्री पाद शास्त्री, नारायण खिस्ते, व्यासराय शास्त्री, महालिंग शास्त्री, टी० के० गणपति, रामावतार शास्त्री, हंसराज अग्रवाल, मथुरादत्त दीक्षित, ब्रह्मानन्द शुक्ल आदि गद्य लेखक हुये हैं। इस प्रकार आज भी गद्य का निर्माण एवं विकास प्राप्त हो रहा है। आशा है उत्तरोत्तर गद्य-रचना का विकास होता रहेगा।

बाणभट्ट का जीवनवृत्त

संस्कृत साहित्य में जिस गद्य-शैली का प्रणयन महाकवि दण्डी ने "दशकुमारचरितम्" के माध्यम से किया है। महाकवि दण्डी द्वारा प्रणीत उसी गद्य शैली का आश्रय ग्रहण करके सुबन्धु ने "प्रत्यक्षरश्लेषमयी" प्रौढ़ गद्य-शैली ग्रहण करके गद्य का चरमोत्कर्ष स्थापित किया। अथवा यह कहें कि पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश में प्राप्त सरल गद्य-रचना का यह एक नैसर्गिक विकास था, जो धीरे-धीरे सरलता से समास बहुल और जटिल गद्य-रचना की ओर अग्रसर हो रहा था। पद्यमयी काव्य रचना की श्लेष बहुलता भाव-प्रवणता, कल्पना एवं अलंकार प्रधानता को स्वीकार करती हुई, गद्य-रचना भी पद्य-रचना की समस्त विशेषताओं को आत्मसात् करती हुई उत्कर्ष की ओर बढ़ रही थी।

सुबन्धु ने जिस समास-प्रधान एवं अलकार प्रधान गद्य-रचना का आविष्कार किया था, बाणभट्ट ने उसी अलंकृत प्रौढ़ गद्य-शैली को अपनाकर गद्य-

काव्य की अन्तरात्मा का सूक्ष्म निरीक्षण करके गद्य-काव्य में चार-चाँद लगा दिये हैं। बाण की गद्य-रचना में सुबन्धु की श्लेष-प्रियता और दण्डी का पदलालित्य स्पष्ट रूप में परिलक्षित हो रहा है। इसके अतिरिक्त बाण की रचना में गद्य-रचना के प्रौढ़तम अलंकृत स्वरूप के साथ-साथ पद्यकाव्य की सरसता भी तरंगित हो रही है। यह निश्चित है कि बाण की गद्य-रचना पर सुबन्धु तथा दण्डी का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। तथापि बाण ने जिस प्रौढ़तम गद्य-रचना का मार्ग प्रशस्त किया है, वह परम्परा से प्राप्त होने पर भी पूर्णरूप से नवीन एवं सर्वोत्कृष्ट है। इसके लिए संस्कृत साहित्य में महाकवि बाणभट्ट चिरस्मरणीय एवं अनुकरणीय हैं और रहेंगे।

बाण का जीवन-परिचय और समय

यद्यपि संस्कृत के प्रायः सभी कलाकार अपने भौतिक परिचय के प्रति उदासीन ही रहे हैं अर्थात् प्राचीन संस्कृत साहित्यकारों ने जीवन के समस्त आवश्यक तत्त्वों पर बड़ी सतर्कता एवं सूक्ष्मता से चिन्तन तथा मनन करते हुये मौलिक चतुर्वर्ग प्रदायक साहित्य का सृजन किया है। किन्तु अपने जीवन-वृत्त, समय, वंश आदि का किञ्चित् भी उल्लेख नहीं किया है। केवल संस्कृत के कुछ ३-४ साहित्यकारों ने ही अपना परिचय स्वयं अपने ग्रन्थों में दिया है। जिनके नाम बाण, विल्हण, मंखक आदि हैं। अतः बाणभट्ट के जीवनवृत्त तथा समय के विषय में कोई विवाद एवं सन्देह का विषय नहीं रह जाता है। इस प्रकार बाणभट्ट ने अपने जीवनवृत्त आदि के विषय में अपनी (१) हर्षचरित और (२) कादम्बरी नामक रचनाओं में अपना परिचय स्पष्ट रूप से दिया है। 'कादम्बरी' में अपना जीवन परिचय संक्षेप रूप में और 'हर्षचरित' में विस्तार के साथ वर्णन किया है।

गद्यकार बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' के प्रथम दो उच्छ्वासों और तृतीय उच्छ्वास में अपनी आत्मकथा का विस्तार के साथ उल्लेख किया है। जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि बाणभट्ट वात्स्यायन गोत्र में जन्म ग्रहण करने वाले ब्राह्मण थे। 'हर्षचरित' में वर्णित वंश परिचय के अनुसार बाणभट्ट का वंश चक्र निम्न प्रकार समझा जा सकता है—
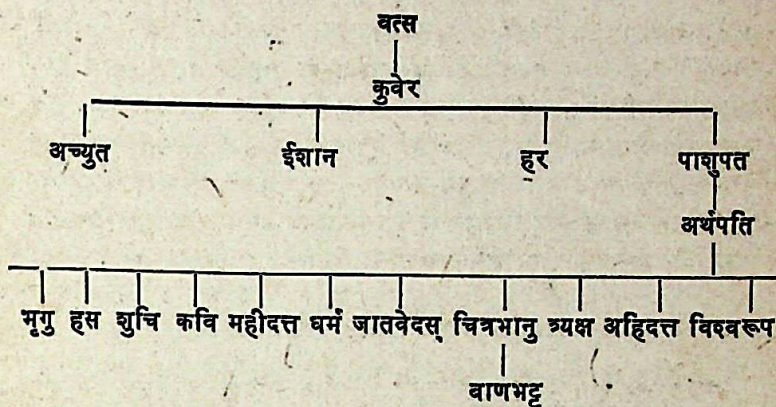
बाणभट्ट ने अपने कुल का दैवी उत्पत्ति मानकर वर्णन किया है। बाणभट्ट के आदिपूर्वज़ वत्स थे। यह वत्स सरस्वती तथा दधीचि के पुत्र थे। वत्स के पुत्र का नाम कुबेर था। बाणभट्ट नें कादम्बरी में अपने पूर्वज कुबेर का वर्णन करते हुए लिखा है कि छात्रगण कुबेर के घर में भयभीत होते हुये मन्त्रों का उच्चारण करते थे कि कहीं ये विद्वान् शुक् मारिकायें हमारी अशुद्धि को न पकड़ लें अर्थात् मेरी अशुद्धि को न टोक दें, जैसा कि निम्न लिखित श्लोक से स्पष्ट किया गया है –

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः,
ससारिकैः पञ्चरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा वटवः पदे पदे,
यजूंषि समानि च यस्य शङ्किताः॥

इससे स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि बाणभट्ट का वंश, परम्परा से ही सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत था। कुबेर के (१) अच्युत, (२) इशान, (३) हर, (४) पाशुपत चार पुत्र थे। चतुर्थ पुत्र पाशुपत के पुत्र का नाम अर्थपति हुआ और अर्थपति के ११ पुत्र हुये, जिनमें एक पुत्र का नाम चित्रभानु था। चित्रभानु की धर्मपत्नी का नाम राजदेवी था। इस प्रकार बाण के पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था। बाणभट्ट की माता बाण के शैशवकाल में ही परलोक वासिनी हो गई थी।

माता की मृत्यु के पश्चात् चित्रभानु ने (पिता ने) ही वाणभट्ट का पालन-पोषण किया; किन्तु दैवगति के विपरीत होने के कारण बाण के पिता भी अल्पायु में ही परलोकगामी हो गये। पिता की मृत्यु के समय बाण १४ वर्ष के थे। बाण का उपनयन (जनेऊ) संस्कार हो चुका था। पिता की मृत्यु से अति दुःखी वाणभट्ट ने कुछ दिनों तक घर में ही जीवन यापन किया। बाण एक धनी परिवार में उत्पन्न हुये थे—किन्तु पिता के संरक्षण के अभाव में बाण का सम्पर्क कुछ उच्छृंखल युवकों से हो गया, उनके स्वभाव में भी परिवर्तन हो गया और देशाटन करने के लिये घर से निकल पड़े। अब क्या था बाणभट्ट के अनेक भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले मित्र बन गये। बाणभट्ट ने अपनी 'हर्षचरित' नामक रचना में अनेक मित्रों का उल्लेख विस्तार के साथ किया है। स्वेच्छाचारी वाणभट्ट का लोक में उपहास भी होने लगा था। इस देशाटन की एक लम्बी अवधि में बाणभट्ट अनेक गुरुकुलों में भी गये और विद्या प्राप्त की तथा गुणों का अर्जन भी किया। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत करने के पश्चात् देशाटन से स्वदेश (प्रीतिकूट) लौट आये। बाण के वंश के लोग देशाटन से आये हुये वाणभट्ट को देखकर बहुत प्रसन्न हुये। अब वाणभट्ट घर पर ही रहने लगे।

एक दिन बाणभट्ट अपने घर में बैठे थे कि बाणभट्ट के चचेरे भाई चन्द्रसेन ने आकर कहा कि सम्राट् हर्ष के भाई कृष्ण का दूत आया है, आपसे मिलने के लिये प्रतीक्षा कर रहा है। बाणभट्ट ने उस दूत को प्रवेश कराने के लिये कहा। दूत ने प्रवेश करके बाणभट्ट को एक पत्र दिया। उस पत्र में लिखा था कि पत्रवाहक मेखलक से सन्देश सुन लीजिये, तब बाणभट्ट ने मेखलक से सन्देश सुनाने के लिये कहा तो उस दूत ने कहा कि "सम्राट हर्षवर्धन" से कुछ लोगों ने आपके विषय कहा है कि बाणभट्ट का जीवन निन्दनीय हो गया है, अर्थात् वाणभट्ट अपना जीवन निन्दित रूप से व्यतीत कर रहे हैं उनका सम्पर्क उच्छृंखल मनचले युवकों से हो गया है; किन्तु मैंने (कृष्ण ने) सम्राट से कह दिया है कि बाणभट्ट का कोई दोष नहीं है। शैशवावस्था में ऐसी स्खलितियां हो जाया करती हैं। यह कोई दोष नहीं है। उन्होंने मेरे इस कथन को सत्य मानकर विश्वास कर लिया है। परन्तु आपको स्वयं निर्दोष सिद्ध करने के लिये शीघ्र राजसभा में उपस्थित होना चाहिये।

इसके पश्चात् बाणभट्ट ने बहुत सोच-विचार करने के बाद मांगलिक कार्यों को करके प्रीतिकूट से प्रस्थान किया। तीन दिन मार्ग में व्यतीत करने के अनन्तर सम्राट हर्ष की सभा में उपस्थित हुये। सम्राट् हर्ष ने पहले बाण को सामने आया हुआ देखकर क्रोधपूर्ण स्वर से कहा कि "महानयं भुजङ्गः" इत्यादि वाक्यों से भर्त्सना की। श्रीहर्ष के अपार क्रोधपूर्ण व्यवहार को देखकर प्रथम बाणभट्ट कुछ समय तक शान्त खड़े रहे, फिर विनत भाव से प्रसिद्ध अपने लोकापवाद का खण्डन करते हुये अपनी बाल चपलता को स्वीकार किया और सम्राट को आश्वासन दिया कि भविष्य में निन्दनीय जीवन नहीं व्यतीत करूँगा तथा कोई ऐसा कार्य नहीं करूँगा जिससे मेरे ऊपर किसी को कुछ दोषारोपण करने का अवसर मिल सके। फिर क्या था गुणग्राही विद्वान् सम्राट् श्रीहर्ष ने बाण को अपनी सभा में पण्डितपद पर नियुक्त कर लिया। उसी समय से हर्ष के कृपा-भाजन बनकर बाणभट्ट सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे।

कुछ समय पश्चात् बाणभट्ट अपने आवास स्थान प्रीतिकूट लौटकर आये तो बाण के मित्रों ने अपूर्व स्वागत किया और कुशल समाचार पूछा। सुदृष्टी नामक मित्र ने "वायु पुराण" का पाठ करके बाण का मनोरंजन किया। सूचीबाण नामक बन्दी ने दो आर्याछन्दों को सुनाया। इन दो आर्याछन्दों को सुनकर बाण के चचेरे भाइयों ने सम्राट् हर्ष के चरित्र को विस्तार से सुनने की इच्छा व्यक्त की। बाणभट्ट ने अपने चचेरे भाइयों की इच्छापूर्ति की अभिलाषा से 'हर्षचरित्र' की रचना करके सम्राट श्रीहर्ष के उदार गुणों का वर्णन किया है। इस प्रकार बाण ने "हर्षचरित्र" के माध्यम से सम्राट् हर्ष की जीवन गाथा का वर्णन प्रस्तुत किया। संस्कृत के अन्य कलाकारों के समान बाण का जीवन धन के अभाव से ग्रसित नहीं था। अपितु बाण को अपार पैतृक सम्पत्ति भी प्राप्त हुई थी तथा श्रीहर्ष के "कृपा-भाजन" होने के कारण धन-सम्पत्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गई। अतः बाण एक समृद्ध कलाकार थे। बाण के देशाटन से ज्ञात होता है कि बाणभट्ट केवल विद्वान् ही नहीं अपितु लोक-व्यवहार से पूर्ण परिचित थे तथा बालचपलता-वंश और योग्य संरक्षण के अभाव में उनके जीवन की प्रारम्भिक दशा का शोचनीय परिचय भी प्राप्त हो जाता है। हर्षचरित में बाण ने अपने सह-

योगियों का विस्तृत वर्णन किया है इस प्रकार बाण के जीवन का स्पष्ट चित्र सहृदय के हृदयपटल पर स्वतः अंकित हो जाता है। "हर्षचरित" में बाणभट्ट ने अपने जीवन के प्रमुख वृतान्तों का वर्णन किया है। किन्तु पुत्रों का उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः इसका कारण यह रहा होगा कि तब तक बाणभट्ट के कोई सन्तान नहीं हुई होगी, "हर्षचरित" की रचना के अनन्तर पुत्र हुआ होगा, जिसने "कादम्बरी" के उतरार्द्ध भाग की रचना की।

बाणभट्ट कादम्बरी के पूर्व भाग की रचना करके परलोकवासी हो गये। फिर कादम्बरी के उत्तरार्द्ध की रचना बाण के पुत्र ने की। यह बात स्वयं बाण के पुत्र ने लिखी है—

याते दिवं पितरितद्वचसैवआर्धं,
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य,
प्रारब्ध एष च मया न कवित्वदर्पात् ॥

डा० बूलर का मत है कि बाण के पुत्र का नाम "भूषण बाण" था कादम्बरी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में बाणभट्ट के पुत्र का नाम पुलिन्द, या पुलिन प्राप्त होता है। धनपाल ने तिलकमंजरी में बाणभट्ट की प्रशंसा करते हुए बाणभट्ट के पुत्र का नाम पुलिन्द लिखा है—

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्ध्र (न्द) कृतसन्निधिः ॥

इस प्रकार बाण के पुत्र का नाम पुलिन्द स्वीकार करना अधिक उपयुक्त होगा।

एक किम्वदन्ती के अनुसार कहा जाता है कि मयूरभट्ट, बाणभट्ट के समकालीन थे। वाग्देवतावता सम्मत् ने "काव्यप्रकाश" में काव्य के प्रयोजनों का वर्णन करते हुए "शिवेतरक्षतये" का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

"आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्"

इस कथन के अनुसार यह प्रसिद्ध है कि मयूरभट्ट को कुष्ठी होने का शाप हो गया था, जिसकी मुक्ति सूर्यशतक के निर्माण से प्राप्त हुई थी अर्थात्

सूर्यशतक के निर्माण से कुष्ठरोग नष्ट हो गया था। इस कथा का सम्बन्ध बाणभट्ट से सम्बन्धित माना जाता है।

इस प्रसिद्ध कथा के अनुसार बाणभट्ट का विवाह मयूरभट्ट की बहिन से हुआ था। एक दिन मयूरभट्ट, बाणभट्ट, के द्वार पर प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में गए तो उस समय भी बाणभट्ट अपनी अप्रसन्न मान किये हुई पत्नि को मनाने में आसक्त थे। बाण पत्नि को मनाने के लिये एक श्लोक की रचना करते हुए बार-बार तीन पादों की आवृत्ति कर रहे थे, किन्तु चतुर्थ पाद पूर्ण नहीं हो पा रहा था, वे तीन पाद इस प्रकार हैं—

गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव,
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव,
प्राणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो,

इन तीन पादों को सुनकर मयूर से न रहा गया और मयूरभट्ट ने चतुर्थ पाद की पूर्ति करते हुए कहा है—

कुचप्रत्यासच्या हृदयमपि ते चण्डि ? कठिनम् ॥

इस चतुर्थ पाद की पूर्ति से क्रोधित होकर बाणभट्ट ने मयूरभट्ट को कुष्ठी होने का शाप दे दिया और मयूरभट्ट ने भी बाणभट को शाप दे दिया। मयूर भट्ट ने सूर्यशतक की रचना करके शाप से मुक्ति प्राप्त की थी इस किम्वदन्ती पर कोई विश्वास करे या न करे किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण प्राप्त होते हैं जिनके अनुसार मयूरभट को बाण का समकालीन माना जा सकता है। सुभाषित पद्यों में उद्‌धृत राजशेखर कृत श्लोक से भी स्पष्ट होता है कि मयूरभट्ट बाण के समकालीन थे। जैसा कि कहा गया है—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ॥

इसी प्रकार नवसाहसाँकचरित में भी लिखा है—

सचित्रवर्णविच्छत्तिहारिणोरवनीश्वरः ।
श्री हर्ष इव संघट्टं चक्रे बाणमयूरयोः ॥

इस प्रकार यह अधिक सम्भव है कि बाण और मयूर समकालीन तथा परस्पर एक दूसरे के सम्बन्धी अर्थात् साले बहनोई थे। बाणभट सम्राट श्री

हर्षवर्धन के समकालीन ही नहीं अपितु सभापण्डित पद पर स्थित लब्धप्रतिष्ठ महाकवि थे। श्री हर्ष का समय स्पष्ट होने के कारण बाणट्ट का समय स्वतः निश्चित हो जाता है। सम्राट श्री हर्ष ने ६०६ ई०-६४८ ई० तक राज्य किया। बाणभट्ट के तथा श्रीहर्ष के प्रथम साक्षात्कार से स्पष्ट होता है कि उस समय बाणभट्ट युवक रहे होंगे। "हर्षचरित" का सम्यक् परिशीलन करने से स्पष्ट हो जाता है कि 'हर्षचरित' का प्रणयन सम्राट श्रीहर्ष के शासन के उत्तर काल में होना सिद्ध होता है। अतः बाणभट्ट का समय सप्तम शताब्दी का पूर्वभाग निश्चित होता है।

इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध हो रहा है कि बाण का समय सप्तम शताब्दी का पूर्वार्द्ध मानना चाहिये। क्योंकि (१) रुय्यक ने अपने ग्रन्थ 'अलंकार सर्वस्व' में बाणभट्ट विरचित 'हर्षचरित' का उल्लेख किया है और रुय्यक का समय ११५० ई० माना जाता है—इस प्रकार रुय्यक के अलंकार सर्वस्व नामक ग्रन्थ से भी बाण का उपयुक्त समय सिद्ध होता है (२) एकादश शताब्दी के उत्तरार्द्ध में क्षेमेन्द्र ने अनेक बार बाणभट्ट के नाम का उल्लेख किया है–तथा उन्होंने अपनी कृति 'औचित्य विचार चर्चा' में कादम्बरी के निम्नलिखित आर्या-छन्द का उद्धरण दिया है कि -

स्तनयुगमश्रु स्नातं हृदयतरर्गानशोकाग्नेः।
चरित विमुक्ताहारं व्रतमिवभवतोरिपुस्त्रीणाम् ॥

इसके अतिरिक्त 'कण्ठाभरण' में बाण के कटुरक्वणन्तो मलदायकाः खला इत्यादि का उल्लेख किया है।

(३) काव्यालंकार के टीकाकार नमि साधु ने बाणभट्ट के द्वारा विरचित हर्षचरित की आख्यायिका और कादम्बरी को कथा कहा। नमि साधु ने काव्यालंकार की टीका १०६९ ई० में की है (४) भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में बाणभट्ट की रचना की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है। (५) दशरूपक के प्रणेता धनञ्जय ने दशम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बाणभट्ट का स्मरण किया है। (६) आनन्दवर्धनाचार्य ने ८५० ई० में बाण का नाम उल्लेख किया है। (७) वामन ने बाणभट्ट विरचित कादम्बरी का उल्लेख ८०० ई० में किया है। इन बाह्य प्रमाणों से भी स्पष्ट हो जाता है कि—अष्टम शताब्दी के अन्त तक कादम्बरी की पर्याप्त ख्याति फैल चुकी थी।

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट एवं निश्चित हो जाता है कि बाणभट्ट का समय सप्तम शताब्दी का पूर्वार्द्ध ही स्वीकार करना उचित एवं तर्क संगत प्रतीत होता है।

रचनायें—यह एक विवादास्पद विषय है कि बाणभट्ट की कितनी रचनायें हैं। (१) हर्षचरित और (२) कादम्बरी बाणभट्ट की दो प्रसिद्ध रचनायें हैं। परन्तु कुछ विद्वान इनके अतिरिक्त (१) "पार्वतीपरिणय" (नाटक) और (२) "चण्डीशतक" नामक दो अन्य रचनायें भी बाणभट्ट की कृति मानते हैं। परन्तु 'पार्वतीपरिणय' की शिथिल रचना को देखकर यह प्रतीति नहीं होती है कि बाणभट्ट जैसा अप्रतिम प्रतिभावान् महाकवि 'पार्वती परिणय' जैसी शिथिल रचना करता। अतः 'पार्वतीपरिणय' कादम्बरी प्रणेता बाणभट्ट की रचना नहीं है। सुना जाता है कि १५ वीं शताब्दी में 'वामन भट्टबाण' नामक कवि ने 'पार्वतीपरिणय' की रचना की है। नाम की साम्यता से कुछ विद्वान् 'पार्वती परिणय' को बाणभट्ट की रचना कहने लगे हैं। वस्तुतः 'पार्वतीपरिणय' बाणभट्ट की रचना नहीं है डा० कीथ का भी मत है कि—'पार्वतीपरिणय' बाणभट्ट की रचना नहीं है तथा इसकी रचना १५ वीं शताब्दी में हुई ऐसा मानते हैं। अतः 'पार्वतीपरिणय' बाण की रचना स्वीकार करने में संकोच स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रहा है। इसके अतिरिक्त दुर्गा की स्तुति में लिखित 'चण्डीशतक' को बाण की रचना स्वीकार करने में विद्वानों ने सन्देह व्यक्त किया है। परन्तु 'चण्डीशतक' की रचना को अमान्य सिद्ध करने में कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध होता है। अतः 'चण्डीशतक' को बाणभट्ट की रचना स्वीकार कर लेना चाहिए इस सम्बन्ध में पी० वी० काणे ने लिखा है:—

'There is nothing improbable in Pana authorship of a century of verses in honour of Chandi' चण्डी के प्रति बाण के हृदय में विशेष स्थान था कादम्बरी के चण्डिका मन्दिर का वर्णन इसका प्रमाण है। काणे महोदय ने भी लिखा है—We know that he gives in Kadambari powerful and picturesque description of that temple of Chandika. (Intaoduction) to his edition of Harshcharit P. XVIII.

(१) हर्षचरित—सम्राट् हर्षवर्धन की प्रशंसा में लिखित 'हर्षचरित' की रचना आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। स्वयं बाणभट्ट ने हर्षचरित नामक अपनी रचना को आख्यायिका कहा है—

तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ॥

हर्षचरित का आरम्भ बाणभट्ट ने शिव की स्तुति करते हुए किया है। इसके पश्चात् इक्कीस श्लोकों द्वारा व्यास, भट्टहरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास आदि की प्रशंसा की है। बृहत्कथा, वासवदत्ता आदि के सत्कवियों की प्रशंसा की और असत्कवियों की तीव्र भर्त्सना भी की है। प्रथम उच्छ्वास में बाणभट्ट ने अपने वंश की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार से किया है तथा अपने चरित का प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उच्छ्वास के पूर्वभाग तक बहुत विस्तार से वर्णन किया है। चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठम तथा सप्तम् उच्छ्वासों में सम्राट् हर्षवर्धन के वंश-परिचय, शौर्य आदि गुणों का विस्तार से वर्णन किया है. अष्टम उच्छ्वास में बहिन 'राज्यश्री' को खोजने के लिए स्वयं श्रीहर्ष ने विन्ध्याटवी में प्रवेश किया और राज्यश्री को खोजते हुये भिक्षु दिवाकर मित्र के आश्रम में गये। किन्तु दिवाकर मित्र से राज्यश्री का पता न प्राप्त करने पर अति दुःखी होते हैं। उसी समय एक भिक्षु ने प्रवेश करके कहा कि एक परम सुन्दरी रमणी शोक से अग्नि में प्रविष्ट होकर आत्महत्या करने के लिये उद्यत हो रही है। यह सुनकर श्री हर्ष उस भिक्षु को साथ लेकर राज्यश्री के प्राणों की रक्षा करने में सफल हो गये और राज्यश्री को साथ लेकर सम्राट् हर्षवर्धन की सेवा में लौट आये। बाणभट्ट ने यहीं पर 'हर्षचरित' को अधूरा छोड़ दिया है। बाण-भट्ट अपने चचेरे भाई श्यामलाल भट्ट के आग्रह पर 'हर्षचरित' के कुछ अंश को ही सुनाने के लिये तैयार हुये थे। इसलिये बाण भट्ट ने हर्षचरित के कुछ अंशों का ही वर्णन करके छोड़ दिया। 'हर्षचरित' को सुनाने से पूर्व बाणभट्ट ने कहा था कि—कः खलु पुरुषायुषशतेनाऽपि शक्नुयादविकमलस्य चरितं वर्णयितुम्। एकदेशे तु यदि कुतुहलं वः सज्जा वयम्। इसके अतिरिक्त बाणभट्ट को इतिहास की अपेक्षा काव्यकला से अधिक अनुराग

होने के कारण ही इतिहासकार के समय हर्ष के जीवन की समस्त घटनाओं का निरूपण नहीं किया है। इसीलिये सम्राट् हर्षवर्धन के प्रारम्भिक घटनास्थलों का ही 'हर्षचरित' में वर्णन किया है।

कादम्बरी—बाणभट्ट की यह असाधारण रचना 'कादम्बरी' संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महा (गद्य) काव्य है। यदि गद्य-काव्यों के लक्षणों के आधार से कादम्बरी की समीक्षा करें तो 'कादम्बरी' में कथा का लक्षण पूर्णरूप से घटित हो रहा है। अतः कादम्बरी की रचना एक उत्कृष्ट कथा है। बाणभट्ट की प्रथम रचना हर्षचरित' एक ऐतिहासिक रचना है। किन्तु कादम्बरी एक काल्पनिक साहित्यिक कथा है। कुछ विद्वानों का कथन है कि कादम्बरी की कथा 'गुणाढ्य' की वृहत्कथा से ली गई है। कादम्बरी बाण की मौलिक रचना नहीं है, क्योंकि वृहत्कथा में राजकुमारी मकरन्दिका को निषाद कन्या होने के शाप का वर्णन किया गया है जिससे दुःखी होकर मकरन्दिका के पिता की मृत्यु हो गयी थी और पुनः शुक रूप में जन्म ग्रहण करके पूर्वजन्म की कथा एवं अनुभवों को सुनाता है। कादम्बरी में महाश्वेता अज्ञानतावश वैशम्पायन को शुक होने का शाप देती है और यही शुक, शूद्रक की सभा में पूर्व जन्म की कथाओं को कहता है। इस प्रकार तीन जन्मों की कथा कहने की समानता वृहत्कथा के समान कादम्बरी में प्राप्त होती है। इसी आधार से कादम्बरी को वृहत्कथा का अनुकरण माना जाता है। परन्तु यह कहना आवश्यक हो जाता है कि बाणभट्ट ने वृहत्कथा से कादम्बरी की कथा का स्रोत भले ही ग्रहण किया हो, तथापि बाणभट्ट की कादम्बरी संस्कृत-गद्य-साहित्य की एक मौलिक एवं उत्कृष्ट रचना है। यद्यपि आज वृहत्कथा प्राप्त नहीं होती है, तथा वृहत्कथा के रूपान्तर हीं प्राप्त होते हैं। उनको देखने से स्पष्ट हो जाता है कि जिस मनोरम शैली के माध्यम से मानवीय कोमल भावों का तथा प्रकृति के विभिन्न मनोहर एवं उदात्त रूपों का, राजाओं की समृद्धि, पवित्र तपोधन एवं जीवनोपयोगी भावों का जैसा सशक्त वर्णन कादम्बरी में किया गया है क्या वैसा वर्णन वृहत्कथा में भी सम्भव हो सकता ह अर्थात् नहीं। इस प्रकार निःसन्देह कहा जा सकता है कि कादम्बरी बाणभट्ट की मौलिक एवं अनुपम कृति है। विद्वानों ने कादम्बरी का महत्त्व "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं" लिखकर गाया है। इससे निश्चय होता है कि बाण की अनुपम कृति कादम्बरी है जो संस्कृत गद्य-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थरत्न है।

गद्य काव्याकारों में बाणभट्ट का स्थान

यद्यपि, दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट से पूर्व संस्कृत गद्य-साहित्य का सृजन हो चुका था, परन्तु काल-गति के कारण इन गद्यकारों के नाम और उनकी रचनाएं प्राप्त न होने से प्रमाण रूप में कुछ कह सकना कठिन सा प्रतीत होता है। परन्तु गद्य-सम्राट् बाणभट्ट ने स्वयं अपने खण्डकाव्य "हर्षचरित" में भट्टार हरिश्चन्द्र नामक गद्य-कवि के नाम का उल्लेख किया है किन्तु खेद है कि भट्टार हरिश्चन्द्र की कोई रचना प्राप्त नहीं हो रही है। तथापि यही निश्चित है कि दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट से पूर्व अवश्य गद्य रचना का कोई क्रम था। इसी गद्य-क्रम का परिमार्जित रूप इन गद्य-कवियों की रचना में प्राप्त हो रहा है। वस्तुतः कोई साहित्यिक रचना स्वयं स्वतन्त्र रूप में सहसा उत्पन्न नहीं होती है। उसके पृष्ठ भाग में पूर्ववर्ती रचना अथवा समकालीन रचना अथवा लोककथा, एवं लोकप्रथा आदि कारण अवश्य विद्यमान रहते हैं। गद्य रचना के विषय में भी ये ही कारण मूल रूप में अवश्य रहे होंगे। अतः लोक कथा एवं लोक नीति कथा आदि गद्य-साहित्य की पृष्ठ भूमि का आधार ग्रहण करके संस्कृत गद्य धारा प्रवाहित हुई। प्रमुख गद्यकारों के नाम निम्न प्रकार हैं :—

(१) दण्डी (दशकुमार, काव्यादर्श, अवन्तिसुन्दरी कथा के रचयिता)
(२) सुबन्धु (वासवदत्ता के रचयिता)
(३) बाणभट्ट (हर्षचरित, कादम्बरी के रचयिता)

दण्डी का समय ६०० ई० के लगभग माना जाता है। यद्यपि दण्डी की रचना के सम्बन्ध में अनेकों किम्वदन्तियां प्राप्त होती हैं तथापि यह निश्चित है कि दण्डी की क्रमशः (१) काव्यादर्श, (२) दशकुमारचरित, (३) अवन्तिसुन्दरी कथा है।

काव्यादर्श और दशकुमार चरित्र के अनुशीलन से दण्डी के जीवन के सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत नहीं प्राप्त होते हैं, तथापि यह स्पष्ट हो जाता कि दण्डी दक्षिणात्य थे। आपने वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ माना है। दशकुमार में चित्रित राजकुमारों के प्रेम, छद्म, यात्रा आदि के स्वाभाविक वर्णनों से दण्डी की बहुज्ञता, एवं देशाटन भ्रमण से उत्पन्न अनेक प्रकार के कटु अनुभवों का परिचय प्राप्त हो रहा है। "शार्ङ्गधर पद्धति" के एक श्लोक में यह स्पष्ट हो जाता है कि दण्डी की तीन मुख्य रचनाएं हैं—

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।
त्रयो दण्डि प्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥

यह सत्य है कि दण्डी संस्कृत गद्य-साहित्य के प्रमुख गद्यकार हैं । उनकी कथा में प्रवाह अवान्तर कथाओं का वर्णन सामञ्जस्य, श्लिष्टवर्णन, हास्य और व्यंग्य, पर्याप्त आदर्श का सन्तुलन, आकर्षक चित्रण, रसाभिव्यक्ति के अनुकूल शब्द-योजना, परिमार्जित, सरस, सरल प्रसाद गुण युक्त, भाषा और स्वाभाविक शैली आदि विशेषताएं प्राप्त होती है । परन्तु परवर्ती संस्कृत गद्यकारों ने दण्डी की गद्य शैली का अनुकरण नहीं किया है । वस्तुतः दण्डी की रचना मे जो प्रवाहमय प्रसाद गुण का दर्शन होता है, वह सुवन्धु और वाणभट्ट की रचना में प्राप्त नहीं होता । दण्डी के विषय में कथित निम्न पद में से अत्युक्ति का अंश निकालकर यथार्थ रूप में पर्यवेक्षण करें तो स्पष्ट हो जाता है कि - कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशय" ।

सुबन्धु—दण्डी ने अपनी रचना में पञ्चतन्त्र और हितोपदेश की सरल गद्य-शैली का परिमार्जित, प्रवाहपूर्ण, प्रसाद गुणमय गद्य शैली का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है । परन्तु सुवन्धु ने "प्रत्यक्षरश्लेषमयी" शैली का आविष्कार करके संस्कृत गद्य-शैली में जटिलता का स्वरूप निर्मित किया और अलंकारों का प्रचुर प्रयोग करके व्यावहारिक संस्कृत गद्य-शैली का अभाव सा कर दिया । इसके अतिरिक्त स्वाभाविक गद्य-शैली को छोड़कर श्लेष-प्रधान कृत्रिम शैली का चरम विकास हुआ । इस अलंकृत, जटिल, विचित्र एवं कृत्रिम गद्य-शैली के प्रवर्त्तक सुवन्धु हुये, जिनकी रचना "वासवदत्ता" से प्रत्यक्षरश्लेषमयी रचना के उद्घोष को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । सुवन्धु का समय लगभग ६०० ई० माना जाता है ।

रचना :—सुवन्धु की केवल एक रचना "वासवदत्ता" ही प्राप्त होती है । "वासवदत्ता" की कथा अतिसंक्षिप्त कथा है । सुवन्धु ने इस लघुकथा को शुक से कहलाकर विस्तार करते हुये रोचक बनाने का प्रयास किया है परन्तु कादम्वरीकार के समान सफलता नहीं प्राप्त कर सके । "वासवदत्ता" की कथा में शिथिलता दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि सुवन्धु ने प्रकृति वर्णनों में ही (वन, नदी, पर्वत, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि में ही पड़कर) कथावस्तु की उपेक्षा सी कर डाली है । इसके अतिरिक्त नायक-नायिका के प्रेम-चित्रण आदि के प्रसंग में श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारों का पर्याप्त चित्रण

करते चले जाते हैं। इस प्रकार कलात्मक वर्णनों की प्रचुरता तथा कथावस्तु के प्रति उपेक्षा का अनुभव करने से ज्ञात होता है कि कवि ने जटिल श्लेष वर्णनों से अपने शास्त्रीय ज्ञान का ही परिचय प्रस्तुत किया है। वस्तुतः "वासवदत्ता" की यह लघुकथा श्लेषमय विस्तृत वर्णनों के भार को संभालने में कथमपि समर्थ प्रतीत नहीं होती हैं। चरित-चित्रण की दृष्टि से भी "वासवदत्ता" की रचना स्वीकार नहीं की जा सकती है और रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से "वासवदत्ता" की रचना स्वीकार नहीं की जा सकती है।

कवित्व की दृष्टि से यदि हम सुबन्धु की रचना पर पर्यवेक्षण करें तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सुबन्धु को उत्कृष्ट कहीं नहीं कह सकते हैं, क्योंकि उत्कृष्ट कवि वही हो सकता है, जो भाव और कला दोनों पक्षों का समस्वरूप से चित्रण करें। परन्तु सुबन्धु की रचना में केवल कलापक्ष का ही प्रबल चित्रण प्राप्त होता है भाव पक्ष की शिथिलता स्पष्ट रूप से खटकती है यही कारण है कि भावपक्ष के तीनों भेदों का (१) बुद्धितत्त्व, (२) रागात्मक-तत्त्व और (३) कल्पनातत्त्व का रमणीय स्वरूप नहीं दृष्टिगोचर होता है जो रमणीय स्वरूप बाणभट्ट की रचना में प्राप्त होता है। सुबन्धु ने बुद्धि-तत्त्व को शिल्प शैली से तिरोहित कर दिया है तथा रागात्मकतत्त्व का यथायोग्य परिपाक नहीं हो सका है क्योंकि कवि नायक नायिका की मानसिक भावनाओं को विस्तृत कर शाब्दीक्रीडा और पाण्डित्य प्रदर्शन में अधिक तल्लीन हो गया है। शास्त्रीय ज्ञान के प्रदर्शन के कारण, कल्पना तत्त्व का चमत्कार धूमिल सा दृष्टिगोचर होता है। श्लिष्ट वर्णनों की प्रचुरता के कारण बुद्धि को चमत्कृत करने में ही कवि ने सफलता प्राप्त की है।

परन्तु एक दम सुबन्धु की रचना में भावपक्ष का अभाव है—यह नहीं कह सकते हैं क्योंकि वासवदत्ता में कुछ स्थल ऐसे अवश्य प्राप्त होते हैं जिनमें भावपक्ष का सरस चित्रण दृष्टिगोचर होता है—वासवदत्ता राजकुमार कन्दर्पकेतु को स्वप्न में देखकर कितनी प्रेमाकुल होती है—उसकी इस दशा का सफल चित्रण प्रस्तुत पंक्तियों में देखा जा सकता है—

"हृदये विलिखितमिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, विगलित-मिव, वज्रघटितमिव, अस्थिपञ्जरप्रविष्टमिव, मर्मान्तरस्थितमिव, मज्जारस वलितमिव, प्राणपरीतमिव, अन्तरात्मानमधिष्ठितमिव, रुधिराशये द्रवीभूतमिव-पललमविभक्तमिव, कन्दर्पकेतुं मन्यमाना, उन्मत्तेवअन्धेव वधिरेव मूकेव,

शून्येन, निरस्तेन्द्रियग्रामेव, मूर्च्छागृहीतेव, ग्रहग्रस्तेव······वासवदत्तासखीजनेन-समं संमुमूर्च्छ ।"

प्रस्तुत गद्यांश के माध्यम से वासवदत्ता के हृदय में प्रेमांकुर का स्फुरण बड़ी सजीवता एवं स्वाभाविकता के साथ किया है। परन्तु सुबन्धु यहाँ भी अनौचित्य वर्णन जन्मदोष से अपनी काव्यकला को बचा न सकें; क्योंकि शृङ्गाररस के विपरीत असंगत वर्णनों की योजना करके, औचित्य का निर्वाह करने में सफलता नहीं प्राप्त कर सके यही करण है कि शृङ्गाररस की अभिव्यक्ति मे बाधक "रुधिराशय", "मज्जारस" "कच्चे माँस" का उल्लेख करके शृङ्गाररस के विपरीत वीभत्सरस के अनुकूल सामग्री का वर्णन कर डाला है। सुकुमार, कोमल, वर्णनों के प्रसंग में वीभत्स रस के उपयुक्त सामग्री का वर्णन कथमपि प्रशंसनीय नहीं स्वीकार किया जा सकता है।

बाण की गद्य-शैली—बाणभट्ट की नूतन गद्य-शैली का स्वरूप उनकी कृतियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। हर्षचरित की प्रस्तावना में बाणभट्ट में पूर्ववर्ती कवियों की गद्य-शैली का परिचय देते हुए लिखा है कि—

सन्तिश्वानश्वासंख्या जातिभाजोगृहेगृहे ।
उत्पादका न बह्वः कवयः शरभाः इव ॥

इससे स्पष्ट होता है कि बाण के समय तक वक्रोक्ति रहित रचना को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। यही कारण है कि बाण ने स्वाभावोक्ति पूर्ण वक्रोक्ति रहित रचना करने वाले कलाकारों को असंख्य खानों के समान कहकर उनकी रचना को हेय सिद्ध किया है। बाण ने केवल अलंकारों की चमत्कृति से युक्त रचना को अथवा शब्दाडम्बर मात्र रचना को अपनी कृति में स्थान नहीं दिया है। अपितु बाणभट्ट ने भाव और कला दोनों पक्षों का समन्वयात्मक रूप अपनी गद्य-शैली में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करके एक नवीन गद्य-शैली का आविष्कार किया है—जैसा कि बाण ने स्वयं लिखा है—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटोरसः ।
विकटाक्षरबन्धश्चकृत्स्नमेकत्रदुर्लभम् ॥

अर्थात् नवीन चमत्कार पूर्ण अर्थ सुरुचि पूर्ण स्वाभावोक्ति, सरल श्लेष, स्पष्ट रसाभिव्यक्ति और अक्षरों की दृढ़-प्रबन्धता ये सभी गुण किसी एक कवि में प्राप्त होना अति दुर्लभ है। परन्तु बाण की रचना में उपर्युक्त ये सभी गुण समन्वित रूप में प्राप्त होते है।

वाणभट्ट पाञ्चाली गद्य-रीति के प्रवर्तक माने जाते हैं। वाण की गद्य-रचना शैली विषय के अनुरूप होने के कारण अधिक प्रभावोत्पादिका एवं स्वाभाविकता से परिपूर्ण दृष्टिगोचर होती है।

पम्पासरोवर का वर्णन करते हुए कोमल कान्त पदावली का विषयानुसार प्रयोग किया है कि—

उत्फुल्लकुमुदकुवलयकल्हारम्…… अनेक जलचरपतङ्गशत-संचलन चलित-वाचालवीचिमालम्' ।

इस कोमल कान्त पदावली के अतिरिक्त विन्ध्याटवी, शवरसेनापति, चण्डी का मन्दिर आदि के वर्णनों में विषय के अनुकूल कठोर दीर्घकाय समास युक्त वाक्यावली का प्रयोग करके अद्भुत कल्पना शक्ति एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय दिया है। इसके विपरीत उपदेश के समय समास-रहित अथवा लघुकाय समासयुक्त, प्रसादगुणयुक्त, सरल, स्वाभाविक एवं सरस वाक्यों का प्रयोग किया है। कादम्बरी में शुकनासोपदेश, कपिञ्जल द्वारा प्रदत्त पुण्डरीक के लिए उपदेश, विलासवती रानी के आश्वासन में तारापीड़ के द्वारा कथित वाक्यों में समासरहित, सरस एवं सरल पदावली का प्रयोग वाण की विषया-नुसारिणी गद्यशैली का परिचय प्रस्तुत करती है। श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, अनुप्रास, परिसंख्या, विरोधाभास, सहोक्ति आदि अलंकारों के सफल वर्णनों में धारा की उत्कृष्ट गद्य-शैली का साक्षात्कार किया जा सकता है। रसनोपमा का यह प्रस्तुत स्वाभाविक वर्णन देखिए—क्रमेण चक्रतं मे वपुषि वसन्तइव मधुमासेन मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण मधुकर इव मदेन, नवयौवनेन पदम्" ।

वस्तुतः वाणभट्ट ने अपनी रचना में गद्य की उन सभी विशेषताओं का समावेश किया है जिनकी उत्कृष्ट गद्य के लिये आवश्यक होती है। इसीलिए चन्द्रदेव ने वाण की प्रशंसा करते हुए वाण को आदर्श पञ्चानन मानकर (सिंह) कहा है। परवर्ती गद्यकारों ने कराय की गद्य-रचना को आदर्श मान कर रचनायें की है। परन्तु वाण का अनुकरण करने पर भी वाण के समस्त रचना के गुणों का अनुकरण नहीं कर सके। अतः वाण एक प्रतिभा सम्पन्न-गद्य-सम्राट हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

हर्षचरित की कथावस्तु

हर्षचरित की कथा का वर्णन आठ उच्छ्वासों में किया गया है। इसकी कथा का आरम्भ पौराणिक ढंग से किया गया है। प्रथम उच्छ्वास का प्रारम्भ ब्रह्मलोक में हो रही विद्वद गोष्ठी से होता है। ब्रह्मा की सभा में हो रही विद्वद गोष्ठी में दुर्वासा के विरस सामगान पर सरस्वती को हँसी आ जाती है। स्वभाव से क्रोधी दुर्वासा सरस्वती को क्षमा याचना करने पर भी मृत्युलोक में जन्म ग्रहण करमें का शाप दे देते हैं। विषादग्रस्त सरस्वती ब्रह्मा के आश्वासन पर सावित्री के साथ पुत्र जन्म-पर्यन्त मृत्युलोक में आ जाती है। इसमें वाणभट्ट ने प्रदोष समय का बड़ा ही प्रभावकारी भव्य वर्णन किया है। शोण नदी के किनारे सरस्वती ने अपना आश्रम बनाया जिसके दाहिनी ओर दो कोस पर च्यवन ऋषि का आश्रम था। वहाँ एकदिन प्रातः काल अश्वारोहियों के साथ दधीच नामक १८ वर्षीय युवक आता है और अंग रक्षक के साथ विनीत भाव से सरस्वती और सावित्री के आश्रम में प्रवेश करता है। इस अंगरक्षक ने दधीच का परिचय देते हुए कहा कि ये दधीच सुकन्या और च्यवन के पुत्र हैं। इस परिचय के साथ सरस्वती और दधीच परस्पर आसक्त हो जाते हैं। और फिर दोनों एक साथ उसी आश्रम में रहते हैं। दधीच और सरस्वती के संयोग से सारस्वते नामक पुत्र होता है और सरस्वतो के शाप की अवधि समाप्त हो जाती है। सरस्वती वहाँ से ब्रह्मलोक को चली जाती है। दधीच के भाई की पत्नि अक्षमाला ने सारस्वत का पालन किया। अक्षरमाला के भी एक पुत्र था, जिसका नाम वत्स था। वत्स और सारस्वत दोनों एक साथ विद्या ग्रहण करते हैं; इसी वत्स से वात्स्यायन वंश नामक ब्राह्मण वंश की उत्पत्ति हुई। वात्स्यायन के कुबेर और कुवेर के अच्युत ईशान, हर और पाशुपत नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। पाशुपत के पुत्र अर्थपति हुये। अर्थपति के ११ पुत्र हुए उनमें आठवें पुत्र का नाम चित्रभानु था। चित्रभानु और उनकी पत्नी राजदेवी से बाण का जन्म हुआ। इसके बाद के बाल्य-काल, देशाटन एवं अनुभवों का वर्णन है। अन्त में वह अपने गाँव प्रीतिकूट में लौट आते हैं।

दूसरे उच्छ्वास के आरम्भ में चिरकाल के बाद लौटे हुए बाण का बन्धुओं ने स्वागत किया। एक दिन श्रीहर्ष देव के भाई कृष्णदेव का सन्देश लेकर मेखलक बाण से पास आता है और एक पत्र देता है और कृष्णदेव का मौखिक सन्देश देता है। कृष्णदेव ने आत्मीयता के साथ बाण को हर्ष की सभा में

उपस्थित होने का सन्देश भेजा था। इसके बाद बाण हर्ष से मिलने के लिये प्रस्थान करते हैं, तीन पड़ाव करके हर्ष की छावनी में पहुंचकर हर्ष के द्वारा सम्मान प्राप्त करते हैं।

तीसरे उच्छ्वास में कुछ दिनों बाद बाण हर्ष की सभा से अपने गांव लौट आता है और अपने बन्धुओं के आग्रह पर हर्षचरित का वर्णन करता है। पहले बाण पुष्पभूति की कथा कहता है और बाद में शैवयोगी भरवाचार्य का परिचय देता है; इसके बाद पुष्पभूति को श्रीकण्ठ नाग के दर्शन होते हैं और श्रीकण्ठ नाग के आग्रह से लक्ष्मी जी प्रकटित होकर राजा पुष्पभूति को ऐसे महान् राजवंश की स्थापना का वरदान देती हैं जिसमें हरिश्चन्द्र जैसे महान् श्रीहर्ष नामक राजा का जन्म होगा।

चतुर्थ उच्छ्वास में हर्षचरित की कथा का वास्तविक प्रारम्भ होता है पुष्पभूति के वंश में प्रभाकरवर्धन जिनका दूसरा नाम प्रतापशील था उनका और उनकी रानी यशोवती का वर्णन किया गया है। एक दिन यशोवती ने स्वप्न देखा कि सूर्यमण्डल से दो राजकुमार और एक राजकुमारी मिलकर उसके गर्भ में प्रवेश करते हैं। स्वप्न साकार होता है राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री का जन्म होता है। इसके पश्चात् राज्यश्री के वयस्क होने पर मौखरी राजग्रहवर्मा के साथ राज्यश्री का विवाह हो जाता है।

पंचम् उच्छ्वास में जब राज्यवर्धन युवक हो जाता है तो हूणों को परास्त करने के लिये उत्तरापथ की ओर जाता है। उसके साथ हर्ष भी जाता है कुछ समय तक राज्यवर्धन के साथ रहा एक रात वह दुःस्वप्न पाता है और उसके बाद वह पिता की रुग्णावस्था को सुनकर स्थाण्वीश्वर जाता है उस समय प्रभाकरवर्धन अचेत अवस्था में पड़े हुए थे। प्रभाकरवर्धन हर्षवर्धन को देखकर आशीवांद देकर यश शरीर में अमरता को प्राप्त हो जाता है। हर्षवर्धन पिता का संस्कार करता है। राजमहल का वातावरण भी दुःखमय हो ज़ाता है।

षष्ठोच्छ्वास में राज्यवर्धन हूणों को पराजित करके राजधानी लौट आता है। वह हर्ष को राज्यभार देकर निवृत्ति प्राप्त करना चाहता है कि उसी समय समाचार मिलता है कि—

मालवराज ने ग्रहवर्मा को मारकर राज्यश्री को बन्दी बना लिया है। राज्यवर्धन १० हजार अश्वारोहियों के साथ मालवराज पर आक्रमण करके विजय प्राप्त करता है। परन्तु स्वराजधानी को लौटते हुए राज्यवर्धन को गौड़ देश के राजा ने मार डाला। इस शोक का समाचार पाकर हर्षवर्धन

शोक सन्तप्त होते हुए गौड़ देश के राजा पर आक्रमण करने की घोषणा करता है।

सातवें उच्छ्वास में हर्षवर्धन पूरी तैयारी के साथ सेनासहित प्रस्थान करके विन्ध्यदेश में पहुंचकर मालव नरेश पर आक्रमण करके उसको जीत लेता है। हर्ष का सेनापति भण्डी मालवदेश राज्य को हस्तगत कर लेता है।

आठवें उच्छ्वास में हर्ष एक निषाद की सहायता से राज्यश्री को विन्ध्याटवी में खोजते हुए दिवाकरमित्र नामक ऋषि के आश्रम में जाते हैं। वहाँ एक भिक्षु आकर किसी संकटासन्न स्त्री की सूचना देता है। हर्ष तत्क्षण उसके पास जाकर अग्निपात् से लौटाकर आश्रम में आता है। यह स्त्री राज्यश्री ही है। राज्यश्री हर्ष की इस प्रतिज्ञा पर मानती है कि वह अपनी दिग्विजय के कार्य को पूर्ण करके राज्यश्री के पास कषाय वस्त्र पहनकर शेष जीवन व्यतीत करेगा। राज्यश्री के मान जाने पर वह हर्ष अपनी सेना में लौट आता है। अन्त में सूर्यास्त के वर्णन के साथ ही ग्रन्थ (अपूर्ण दशा में) समाप्त हो जाता है।

बाण का यह हर्षचरित ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें तत्कालीन भारत के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक जीवन का सफल चित्र देखने को प्राप्त होता है। प्रथमोच्छ्वास में वर्णित विद्वद्गोष्ठी, काव्यगोष्ठी, गीतागोष्ठी, नृत्यगोष्ठी वाद्यगोष्ठी और वीणागोष्ठी से किया जा सकता है। इन गोष्ठियों में नृत्य, गीत काव्य, आख्यायिका, वाद्य, चित्र आदि कलाओं पर जमकर परामर्श होता था।

तत्कालीन संभ्रान्त लोग सुसंस्कृत, धृतिमान, क्षमावान, शांतिप्रिय, कर्त्तव्य परायण, विविध-कलाविशारद, शास्त्रार्थप्रिय और काव्यानुरागी होते थे। यद्यपि हर्षचरित अपूर्ण ही प्राप्त होता है तथापि उसमें बाण की कवित्व शक्ति एवं अद्‌भुत प्रतिभा का स्पष्ट परिचय मिलता है कि बाण उद्‌भट विद्वान् एवं सफल महाकवि थे।

हर्षचरित के काव्य-तत्व की समीक्षा—बाणकृत हर्षचरित ऐतिहासिक गद्यकृति है। यद्यपि हर्षचरित में पद्यों का भी निर्माण किया गया है तथापि गद्य की प्रधानता होने के कारण हर्षचरित गद्यकृति की कोटि में ही आता है। गद्यकाव्य के उद्देश्यों पर विमर्श करने पर ज्ञात होता है कि हर्षचरित आख्यायिका है। हर्षचरित की रचना कादम्बरी की ही अलंकृत शैली में हुई है। हर्षचरित बाणभट्ट की प्रथम रचना है। अतः कादम्बरी के समान चरम विकसित गद्यशैली का स्वरूप हर्षचरित से स्पष्ट नहीं कर सके। हर्षचरित में अस्वाभाविक अनुप्रासों का वर्णन होता है। हर्षचरित के श्लेष भी प्रयत्न साध्य

प्रतीत होते हैं हर्षचरित में बाणभट्ट ने कतिपय ऐसे अनपदीय शब्दों का प्रयोग किया है जो आजकल के विद्वानों के लिये अर्थ करने में अड़चन उपस्थित किये बिना नहीं रहते। हर्षचरित में प्राकृतिक वर्णनों की बहुलता प्राप्त होती है। प्रेम एवं सौन्दर्य भावना का वर्णन अत्यन्त मात्रा में प्राप्त होता है। नारी सौन्दर्य की उपेक्षा हर्षचरित में खटकती है। बाण ने अपने आश्रयदाता श्री हर्षवर्धन की यशोगाथा का ऐतिहासिक चित्रण प्रस्तुत किया है। फलतः हर्षचरित एक ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रचना है। सम्राट हर्ष के जीवन-चरित के परिचय के साथ तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक रीति-रिवाजों का भी स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है।

उस समय द्विजातियों के परिवार सुसंस्कृत होते थे और उनका कला के प्रति अतीव अनुराग होता था। इसका परिचय हर्षचरित में वर्णित पदगोष्ठी, काव्यगोष्ठी, जल्पगोष्ठी, गीतगोष्ठी, नृत्यगोष्ठी, वाद्यगोष्ठी और वीणागोष्ठी आदि से मिलता है। इन गोष्ठियों में नृत्य, गीत, वाद्य, संगीत, चित्रकला, काव्य, आख्यान, आख्यायिका, इतिहास, पुराण आदि पर पर्याप्त पर्यालोचन होता है। तत्कालीन पारिवारिक संस्कृति एवं आचार का परिचय हर्षचरित के प्रथमोच्छ्वास में देखा जा सकता है। नागरिकों का धर्म, क्षमा, शान्ति, कर्तव्यपरायणता, कलाप्रेम और शास्त्रप्रेम आदि गुणों के प्रति अनुराग का दर्शन प्राप्त होता है। आचरण की महत्ता का वर्णन करते हुये बाण ने कहा है कि श्रौत-आचारों का उन्होंने आश्रय लिया था। मिथ्या भाषण पाखण्ड दम्भ का नाम नहीं था। आत्महीनता पर निन्दा का सर्वथा अभाव था। स्वभाव से स्थिर, परोपकारी वक्ता, कवि, सरस भाषण से प्रेम करने वाले थे। विद्वत्समाज के समान, परिहास प्रिय, नृत्य, गीत, वाद्य, काव्यकला आदि में अपार प्रेम रखते थे। सत्यता, दया, आस्तिकता आदि गुणों से युक्त द्विजातियों के परिवार थे। जैसाकि निम्नांकित गद्यांश से स्पष्ट प्रतीत होता है:—

"आश्रितश्रोता श्रव्यनालम्बितालोकवक्रकाकव, परिहृतकष्ट कौरुकूची, कचीकृताः, उग्रहीतगह्वराः, न्यक्कृतमिक्तमः प्रसन्न प्रकृतयः, विहत विकृतयः, परपरीवाद पराचीनचेतोवृत्तयः······धीरधिषणा, विधूताध्येषणाः·········
······विदग्धपरिहासवेदिनः परिचयपेशलाः, नृत्यगीतवादित्रेष्वबाह्याः ऐतिह्यस्यानिवितृष्णाः) सानुक्रोशाः सर्वातिशयः, सर्वसाधुसमता······सर्वगुणोपेताः क्षमाभाज आश्रितजनजनाः अनिर्विस्मयाः विद्याधराः अजडाः कलावन्त······ असाधारणः द्विजायत:"।

तत्कालीन कला कौशल का परिचय हर्षचरित के चतुर्थ अंक से प्राप्त होता है। राज्यश्री के परिणयोत्सव पर तैयार किये गये वस्त्रों की सूची विस्तार से वर्णित की है। वे वस्त्र अनेक प्रकार के थे। जैसे क्षौमवस्त्र (अलसी के रेशों से निर्मित वस्त्र), लालातन्तुज (कौशेय वस्त्र) यह अंशुक (चीनांशुक अत्यन्त बारीक रेशमी वस्त्र) रेशमी धागों की साड़ी अथवा धोती स्ववरक सितारे या मोतियों से जटित वस्त्र आदि विभिन्न रगों से रंगे हुये थे और उन पर अनेक भाँति की छपाई का काम हो रहा था। इसके अतिरिक्त सातवें उच्छ्वास में अनेक देशों से युद्धोद्यत सैनिकों के प्रस्थान के समय आये हुये राजाओं की वेशभूषा के वर्णन के प्रसंग से उनके अनेक प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है।

तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों का वर्णन पंचमोच्छ्वास में किया गया है। बाण ने हर्षचरित में दिवाकर मित्र के आश्रम में रहने वाले १९ सम्प्रदायों का वर्णन करते हुये उनके अनुयायियों के १९ नामों का परिगणन निम्न-प्रकार किया है:—

(१) अर्हत (२) मस्करी (३) श्वेतपट (४) पाण्डुरि भिक्षु (५) भागवत (६) वर्णी (७) केशलुंचन (८) कापिल (९) जैन (१०) लोकायतिक (११) कणाद (१२) औपनिषद (१३) ऐश्वर कारकणिक (१४) कारन्धमी (१५) धर्मशास्त्री (१६) पौराणिक (१७) साप्ततन्तव (१८) शाब्द और (१९) पाञ्चरात्रिक।

इन धार्मिक सम्प्रदायों के वर्णनों से तत्कालीन धार्मिक दार्शनिक विचार का स्पष्ट परिचय मिलता है। जो संसार के लिये ऐतिहासिक महत्व रखता है। बाण ने सांख्य, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त एवं बौद्ध दार्शनिकों के भेद का भी उल्लेख किया है।

"हर्षचरित" में तत्कालीन विद्या-केन्द्रों का वर्णन करते हुये बाण ने नालन्दा, काशी, अवन्ती, मथुरा, तक्षशिला आदि विद्या केन्द्रों का प्रतिष्ठित नगरों में वर्णन किया है। तत्कालीन विद्वान तत्व चिन्तन में तल्लीन रहते थे। मौलिक ग्रन्थों को पढ़ाया जाता था और उनके प्रश्नों का समाधान यथावसर किया जाता था। शंकाओं का समाधान करने पर ही शास्त्र में व्युत्पन्न माना जाता था। अन्य शास्त्रों से तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता था। तत्पश्चात् शास्त्रार्थ की अनुमति प्राप्त होती थी।

बाण एक लम्बे समय तक राज दरबार में रहने के कारण राजकीय व्यवहारों, भवनों और उनकी रुचियों आदि से पूर्ण परिचित हो गये थे। इस लिये हर्षचरित के दूसरे उच्छ्वास में राजभवन का विस्तृत एवं मनोहर वर्णन करके अपने प्रगाढ़ ज्ञान का परिचय प्रस्तुत किया है। अर्थशास्त्र प्रणेता चाणक्य के समान वाणभट्ट भी राज्यशासन पद्धति आदि में परिचित थे। दूसरे उच्छ्वास में हर्ष के स्कन्धावार का चित्रण पांचवें उच्छ्वास में राज-द्वार और धवलगृह का वर्णन, छठे उच्छ्वास में सैनिक-प्रयाण वर्णन और अनेक देशों से आये हुये नरेशों का वर्णन आदि का सम्यक् निरीक्षण करने पर बाण का राजनीति सम्बन्धी प्रकाण्ड-पाण्डित और शासन-संचालन के नैपुण्य का परिचय मिल जाता है।

सातवें उच्छ्वास में बाणभट्ट ने वनग्राम के निवासियों का जो चित्रण किया है और विन्ध्याटवी का जो स्वाभाविक चित्रण किया है उससे प्रतीत होता है कि बाण ग्रामीण परिस्थितियों तथा वन-सौन्दर्य की स्थितियों के समीप वर्षों तक रहे हों। वन्य-पशुओं और वृक्षों के जिन नामों का उल्लेख बाण ने किया है उससे उनके वन्य सम्बन्धी परिज्ञान का अनुमान सरलता से किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हर्षचरित बाण की प्रथम रचना है इसलिये हर्षचरित की रचना कादम्बरी के समान सशक्त एवं प्रभावोत्पादक नहीं है। फिर भी अन्य गद्य-कृतियों में हर्षचरित का प्रमुख स्थान माना जाता है। ऐतिहासिक एवं तत्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, एवं राजनैतिक परिस्थितियों का हर्षचरित में सफल चित्रण प्राप्त होता है। जिससे बाण के वैदुष्य का परिचय सहजरूपेण मिल जाता है। अतः "हर्षचरित" का महत्व आख्यायिका के रूप में तो प्रसिद्ध है ही और साथ ही इसका ऐतिहासिक महत्व अतुलनीय एवं परम श्लाघनीय है।

श्रीबाणभट्टविरचितम्

हर्षचरितम्

(प्रथमोच्छ्वासः)

नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥१॥

अन्वयः—तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे नमः ।

अर्थ—ऊँचे मस्तक पर स्थित चन्द्ररूपी चंवर से सुशोभित, तीन लोक रूपी नगर की रचना में मूलाधार एवं स्तम्भ रूप भगवान् शिवजी को मैं (बाणभट्ट) नमस्कार (प्रणाम) करता हूं । इस लोक में तीन लोक रूपी नगर के निर्माण में मूल स्तम्भ का वर्णन करने से विष्णु और ब्रह्मा के प्रति भी महाकवि ने श्लेष के माध्यम से प्रणाम किया है । तीन लोक में नगर का आरोप और शिवजी में स्तम्भ का आरोप किया गया है । अतः इसमें रूपकालङ्कार की छटा दर्शनीय है । विष्णु के पक्ष में तुङ्ग=उच्च अर्थात् द्युलोक-आकाशरूप शिर में स्थित चन्द्र ही चंवर है और उस चंवर से सुशोभित विष्णु, ब्रह्मा के पक्ष में चन्द्ररूप सोने के चंवर के समान (श्वेत) बालों के समूह से अलंकृत ब्रह्मा, यह दोनों विष्णु और ब्रह्मा, समान रूप से संसार के निर्माण में मूलाधार माने जाते हैं । अतः शिव, विष्णु और ब्रह्मा को मैं (बाणभट्ट) प्रणाम करता हूं ।

संस्कृत-व्याख्या—महाकविर्बाणभट्टः हर्षचरितस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं, प्राचीनम्परामनुबध्नन् श्लेषानुप्राणितरूपकालङ्कारस्य माध्यमेन भगवन्तं शिवं प्रणमन्नलिखत्—यत् तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे (शिवस्य पक्षे

तुङ्गम् समुन्नतं, यत शिरः तत् चुम्बति आलिङ्गति, स्पृशति, तच्छील: चन्द्रः निशापतिः शीतरश्मिः विधुः स एव चामरं तेन चारुः मनोहरः यः शिवः तस्मै शिवाय, (विष्णु पक्षे-तुङ्गम् अत्युन्नतं द्युलोकरूपं आकाशं यत् शिर तत् चुम्बितुम् शीलं यस्य सः चन्द्रः) स एवं चामरं तेन चारुः तस्मै विष्णवे ब्रह्मपक्षे चन्द्रः एव स्वर्णं तन्निर्मितं यत् चामरं तद्वत् चामरं केशसमूहः तेन चारुः रमणीयाकृतिः यः ब्रह्मा तस्मै, ब्रह्मणे। त्रैलोक्य-नगरारम्भमूलस्तम्भायत्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी तस्याः भावः त्रैलोक्यं स्वर्गं मर्त्यपाताललोकमिति, तदेव नगरं तस्य त्रैलोक्यरूपनगरस्य आरम्भे रचनारम्भे यः मूलस्तम्भः मूलाधारः आद्यहेतुः तस्मै त्रैलोक्यरचनायां समानरूपेण ब्रह्माविष्णू मूलहेतू स्तः, अतः त्रैलोक्यनगररूपनिर्माणे मूलस्तम्भाय, (विष्णवे ब्रह्मणे च) शिवाय, (अहं बाणभट्टः प्रस्तुतग्रन्थस्य कर्ता) नमः चरणौ स्पृशामि, नमस्करोमीत्यर्थः। अत्रानुष्टुबृच्छन्दः रूपकालङ्कारश्च। बोध्यः।

शब्दार्थ—हर्षचरितम्=हर्ष नामक राजा को लक्ष्य करके लिखा हुआ काव्य 'हर्षचरित एक आख्यायिका' है, अतः हर्षचरित+अण् होने पर 'लुबाख्यायिकाभ्योबहुलम्' सूत्र से अण् का पूर्ण लोप हो जाता है। अण् का लोप होने के कारण आदि वृद्धि नहीं होती है। तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे= उच्च मस्तक को स्पर्श करने वाले चन्द्र रूपी चवर से सुशोभित, त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय=तीन लोक रूपी नगर के निर्माण में मूलस्तम्भ (मूल कारण) त्रिलोकी+ष्यञ्→य=त्रैलोक्यम्।

हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीं नमाम्युमाम्।
कालकूटविषस्पर्शजातमूर्च्छागमामिव ॥२॥

अन्वयः—हरकण्ठग्रहानन्दीमीलिताक्षीं कालकूटविषस्पर्शजातमूर्च्छागमामिव उमां नमामि।

अर्थ—भगवान् शंकर के कण्ठ स्पर्श (आलिंगन) जन्य आनन्द से निमीलित (बन्द की हुई) नेत्रों वाली, और शंकर के गले में स्थित कालकट नामक विष के सान्निध्य से ही मानों मूर्छा को प्राप्त हुई पार्वती को (मैं=वाणभट्ट) नमस्कार करता हूं।

संस्कृत-व्याख्या -- हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीं = हरस्य शङ्करस्य कण्ठः गलप्रदेशः तस्य ग्रहः आलिङ्गनं तेन आनन्दः हर्षातिरेकः तेनः मीलिते मुद्रिते अक्षिणी नयने यस्याः सा ताम् = शिवकण्ठाश्लेषानन्दनिमीलितलोचनां, कालकूटविषस्पर्शजातमूर्च्छागमाम् = कालकूटस्य समुद्रमन्थनादुद्भूतस्य कालकूट-नामकस्य विषस्य गरलस्य स्पर्शः सन्निधिः सम्पर्कः तेन जातः उद्भूतः मूर्च्छायः संज्ञाशून्यायाः आगमः आरम्भः यस्या सा तामिव उमां पार्वती, नमामि नमस्करोमि चरणौ स्पृशामि, अभिवादये इत्यर्थः।

शब्दार्थ – हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीम् = शंकरजी के कण्ठ के आलिङ्गन से उत्पन्न आनन्द से मुंदी हुई नेत्रों वाली, कालकूटविषस्पर्शजातमूर्च्छागमाम् = शंकर जी के गले में स्थित समुद्र-मन्थन से उत्पन्न कालकूट नामक विष के सम्पर्क से ही मूर्च्छित, उमां = माँ के द्वारा तपस्या से रोकी जाने वाली अर्थात् पार्वती। नम् + लट् + मिप + मि = नमामि उत्तम पु०, एक वचन।

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥३॥

अन्वय—यः सरस्वत्या वर्षमिव भारतम् चक्रे तस्मै सर्वविदे कविवेधसे व्यासाय नमः।

अर्थ—चारों वेद एवं सम्पूर्ण विद्याओं (१४ विद्याओं) सम्पूर्ण कलाओं (६४ कलाओं) में पारङ्गत, और कविसम्प्रदाय के स्रष्टा (विधाता ब्रह्मा) सकलविषय वेत्ता अर्थात् सर्वज्ञ व्यास मुनि को नमस्कार (प्रणाम) है अर्थात् मैं (बाणभट्ट) सर्वज्ञ महर्षि व्यास को प्रणाम करता हूं, जिन महर्षि व्यास जी ने अपनी रचना रूपी वाणी से महाभारत नामक महाग्रन्थ को उसी प्रकार पवित्र किया है, जिस प्रकार सरस्वती नामक नदी ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को पवित्र किया है।

संस्कृत-व्याख्या—यः, महर्षिव्यासः, सरस्वत्या एतन्नाम्न्या प्रसिद्धया नद्याः वर्षमिव भारतवर्षमिव, पुण्यं पवित्रं, चक्रे अकरोत्, तस्मै जगत्प्रसिद्धाय सर्वविदे = सर्वं वेत्तीति सर्ववित् तस्मै सर्वज्ञाय, कविवेधसे = कवीनां वेधसे ब्रह्मणे, व्यासाय पराशरात्मजाय महाभारताद्यष्टादशपुराणानां कर्त्रे व्यासाय, नमः प्रणामोऽस्तु।

शब्दार्थ—सरस्वत्याः=सरस्वती नामक नदी की, वर्षमिव=जलधारा के समान, पुण्यं=पवित्र, भारतं=भारतवर्ष, चक्रे=किया, तस्मै=संसार प्रसिद्ध अष्टादश पुराणों के कर्त्ता, सर्वविदे=सर्वज्ञ, कविवेधसे=कवियों के जन्मदाता अर्थात् ब्रह्मा।

प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टयः।
कोकिला इव जायन्ते वाचालः कामचरिणः ॥४॥

अन्वय—प्रायः लोके वाचालाः कामचारिणः रागाधिष्ठितदृष्टयः कुकवयः कोकिला इव जायन्ते।

अर्थ—इस संसार में अधिकतर देखा जाता है कि वाचाल (बहुत बोलने वाले) और स्वेच्छाचारी, राग द्वेष की भावना से ओतप्रोत कुकवि (अधमः अर्थात् निन्दनीय कवि) गण कोयल के समान उत्पन्न हो जाते हैं। (यहांः उपमालङ्कार की छटा दर्शनीय है। कोयल उपमान और कुकवि उपमेय है, इव उपमावाचक शब्द, वाचाल स्वेच्छाचारी आदि शब्द उपमा के साधारण धर्म के बोधक हैं।

संस्कृत-व्याख्या—प्रायः अधिकतर, लोके, मृत्युलोक, वाचालाः=बहुभाषिण कामचारिणः=कामम् स्वेच्छया आचरितुं शील येषां ते स्वच्छन्दावाचरणा रागाधिष्ठितदृष्टयः, रागे अधिष्ठिताः, लग्नाः दृष्टयः बुद्धयः येषां ते एवम्भूताः =रागद्वेषाकृष्टबुद्धयः, कुकवयः निन्दितकवयः, कोकिलाः पिकाः इव, जायन्ते उद्भवन्ति।

शब्दार्थ—रागाधिष्ठितदृष्टयः=रागद्वेष की भावना से व्याप्त, वाचालाः=बहुत बोलने वाले, वाच् आलच्→आल=वाचालाः प्र० बहु०, व० कामचारिणः=स्वेच्छाचरण करने वाले, कुकवयः=निन्दनीय (अधम) कविगण।

सन्ति श्वान इवासङ्ख्या जातिभाजो गृहे गृहे।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव ॥५॥

अन्वय—श्वान इव असङ्ख्याः जातिभाजः गृहे गृहे (कवय) सन्ति, शरभा इव उत्पादकाः बहवः कवयः न (सन्ति)।

अर्थ—जहाँ देखिये वहाँ प्रत्येक स्थान पर घर-घर असंख्य कवि जन्म-धारण करने वाले कुत्तों के समान (प्राप्त होते) हैं, किन्तु शरभों के समान नवीन कार्य आरम्भ करने वाले अर्थात् नवीन प्रवन्धकाव्य लिखने की शक्ति रखने वाले कवि वहुत नहीं हैं अर्थात् समर्थ कवि अत्यल्प ही हैं। यहाँ कुकवियों की उपमा कुत्तों से और नूतनप्रवन्ध काव्य लिखने में समर्थ कवियों की उपमा शरभों से दी है, अतः उपमालङ्कार है।

संस्कृत-व्याख्या—श्वान इव सारमेया इव, कुक्कुरा इव, असंख्याः अनेके, जातिभाजः जातिं भजन्तीति जातिभाजः जन्मधारकाः, गृहे गृहे प्रत्येकस्मिन् स्थाने, सन्ति प्राचुर्येण प्राप्यन्ते, शरभा इव शरभनामकाः पशुविशेषा इव उत्पादकाः नूतनप्रवन्धादिकर्तारः, बहवः असंख्याः कवयः न सन्ति, नूतनप्रबन्धपटवः महाकवयः अत्यल्पा एव सन्तीतिभावः।

शब्दार्थ—श्वान इव=कुत्तों के समान, असंख्याः=अगणित, जातिभाजः =जन्म धारण करने वाले, गृहे गृहे=प्रत्येक स्थान स्थान पर, सन्ति=प्राप्त होते हैं, शरभा इव=शरभ नामक पशु विशेष के समान, (शरभ नामक) पशु सिंह को भी मारने में समर्थ होता है, उत्पादकाः=नवीन प्रवन्धकाव्य निर्माण करने में समर्थ, बहवः=अनेक।

अन्यवर्णपरावृत्या बन्धचिह्ननिगूहनैः।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते ॥६॥

अन्वय—कविः चौरः सतां मध्ये अन्यवर्णपरावृत्या वन्धचिह्ननिगूहनैः अनाख्यातः विभाव्यते।

अर्थ—श्रेष्ठ महाकवियों के मध्य में, अथवा सहृदय श्रेष्ठ काव्य समीक्षकों के मध्य में, कुकवि एवं अधम कवि अन्य कवियों के वर्णों को उलट-पलट अर्थात् कुछ परिवर्तन करके वर्णन करने से, और काव्य निर्माण के लक्षणों को छुपा कर वर्णन करने पर चोर कवि समझा जाता है, क्योंकि जिस प्रकार चोर सज्जन लोगों के मध्य में सहसा मुख की कान्ति मलिन पड़ने आदि के कारण पहचान लिया जाता है उसी प्रकार कुकवि की अयोग्यता आदि उत्तम अर्थात्

श्रेष्ठ कवियों के अथवा सहृदय लोगों के मध्य अन्य कवियों के वर्णों को तोड़-मरोड़ करने से और काव्य के लक्षणों को छुपाने आदि से पहचान लिया जाता है कि यह चोर कवि अर्थात् कुकवि है।

संस्कृत-व्याख्या—कविः काव्यकर्त्ता, चोरः तस्करः, सतां सज्जनानां सहृदयानां, मध्ये सानिध्ये, अन्यवर्णपरावृत्या=अन्येषां कवीनां, यं वर्णाः लघु-गुरुवर्णविन्यासाः तेषाम् स्वरव्यञ्जनानां परावृत्या परिवर्त्तनेन, बन्धचिन्हनिगूहनैः =बन्धानां प्रबन्धादिकाव्यविधान्तर्गतानां गौडीविदर्भ्यादिरीतीनां ध्वनिगुणरसाभिव्यक्तीनां चिह्नानां लक्षणानां, निगूहनैः संगोपनैः, अनाख्यातः अकथितोऽपि सन् विभाव्यते परिचीयते, प्रतीयते।

शब्दार्थ—अन्यवर्णपरावृत्या—अन्य कवियों के वर्णों (स्वर, व्यंजन, लघु, गुरु आदि) को परिवर्तन करके वर्णन करने से, बन्धचिह्ननिगूहनः गौडी, वैदर्भी आदि रीति प्रधान शैली के लक्षणों को छिपाने से, अनाख्यातः=किसी के द्वारा विना कहे हुए ही, विभाव्यते=पहचान लिया जाता है। यहाँ अधम कवियों को चोर कहा गया है, जिस प्रकार चोर व्यक्ति सज्जनों के मध्य में आकृति की मलिनता आदि से पहचान लिया जाता है उसी प्रकार सत्कवियों अथवा श्रेष्ठ समीक्षकों के मध्य में कुकवि अन्य कवियों के वर्णों को परिवर्तन करके वर्णन करने से, तथा काव्य के लक्षणों एवं शैली आदि को छिपाने से, बिना कहे ही पहचान लिया जाता है, यहाँ उपमा की अभिव्यंजना हो रही है।

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः ॥७॥

अन्वय—उदीच्येषु श्लेषप्रायम् प्रतीच्येषु अर्थमात्रकम् दाक्षिणात्येषु उत्प्रेक्षा गौडेषु अक्षरडम्बरः।

अर्थ—इस देश के उत्तरी भाग में रहने वाले कवियों में श्लेष अलंकार के वर्णन की अधिकता, पश्चिमी भाग में रहने वाले कवियों में अर्थ गाम्भीर्य, दक्षिण के कवियों में उत्प्रेक्षा अलंकार की विपुलता, और गौड़ देश में रहने वाले कवियों में अक्षरों का आडम्बर प्राप्त होता है। बाणभट्ट का आशय यह है कि मेरी रचना में उपर्युक्त सभी विशेषताएं एक साथ दृष्टिगोचर हो रही हैं।

संस्कृत-व्याख्या—उदीच्येषु भारतस्य उत्तरदेशनिवासिषु कविषु, श्लेषप्रायं श्लेषालङ्कारयोजनबाहुल्यं, प्रतीच्येषु देशस्य पश्चिमदेशवासिषु कविषु, अर्थमात्रकाः केवलमर्थगाम्भीर्यं, दक्षिणात्येषु दक्षिणदेशवासिषु कविषु उत्प्रेक्षा उत्प्रेक्षालङ्कारस्य बाहुल्यं, गौडेषु गौडदेशनिवासिषु कविषु अक्षरडम्बरः अक्षराणां डम्बर प्राचुर्यं प्राप्यते। परन्तु मम बाणभट्टस्य रचनायां सर्वा अपि उपर्युक्ताः विशेषता युगदेव द्रष्टुं शक्यन्ते। अत्र बाणभट्टस्य अहंकारोऽपि व्यज्यते रचनानैपुण्य च व्यज्यते।

शब्दार्थ—उदीच्येषु=उत्तर के रहने वालों में, श्लेषप्रायं=श्लेष-अलंकार की अधिकता, प्रतीच्येषु=पश्चिमी देश के रहने वालों में, दक्षिणात्येषु=दक्षिण देश के रहने वालों में, अक्षरडम्बरः=अक्षरों के संयोजन की अधिकता।

नवोऽर्थो जातिरग्राम्य श्लेषोऽक्लिष्ट स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥८॥

अन्वय—नवः अर्थं अग्राम्या जातिः अक्लिष्टः श्लेषः स्फुटो रसः विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नम् एकत्र दुष्करम।

अर्थ—नवीन अर्थ की परिकल्पना, ग्राम्यदोष से रहित, स्वाभावोक्ति गुणों से युक्त, सरल एवं बोधगम्य श्लेष अलंकारों से युक्त, सरलता से प्रतीयमान, रसों से युक्त, ओजगुण के अनुरूप ओजस्विनी भाषा में निबद्ध रचनाओं में उपर्युक्त ये सभी गुणों का किसी एक स्थान पर प्राप्त होना दुर्लभ है। परन्तु मेरी (बाणभट्ट की) रचना में सभी गुण एक साथ एक स्थान में प्राप्त हो सकते हैं'

संस्कृत-व्याख्या—नवः अर्थः अभिनवकल्पनाप्रसूतोऽर्थ अग्राम्या-ग्राम्यादोषशून्या, जातिः स्वभावोक्ति, अक्लिष्टः क्लिष्टदोषशून्यः सरलः इत्यर्थः श्लेष-अलंकारयुक्तः स्फुटः सरलतया बोधयोग्यः, रसः शृङ्गारादिः, विकटः उदारतायुक्तः अक्षराणां वर्णानां लघुगुरूणां स्वरव्यञ्जनानां बन्धः संयोजनं कृत्स्नं सम्पूर्णम्, एकत्र एकस्मिन्स्थाने अर्थात् एकत्ररचनानां दुष्करं कठिनं दुर्गमम् दुष्प्राप्यम् एवास्तीति भावः।

शब्दार्थ—नवः अर्थः=नूतन कल्पना से उत्पन्न नूतन अर्थ, अग्राम्या=ग्राम्यदोष से शून्य, जाति=स्वभावोक्ति अलंकार से युक्त, अक्लिष्टः=क्लिष्ट दोषरहित, सरल, स्फुटः, रसः=स्पष्टतया प्रतीयमान शृङ्ग आदि रस, विकटाक्षरबन्धश्च=प्रभावकारी शब्दों की योजना, कृत्स्नम्=सम्पूर्ण, एकत्र=किसी एक कवि की एक रचना में प्राप्त होना, दुष्करं=कठिन है।

किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम् ॥९॥

अन्वय—तस्य कवेः काव्येन किम् यस्य भारती सर्ववृत्तान्तगामिनी कथा इव जगत्त्रयम् न व्याप्नोति।

अर्थ—सम्पूर्ण सत्पुरुषों के वृतान्तों (चरित्रों) से युक्त महाभारत नामक पुराण की कथा के समान जिस कवि का जो काव्य तीनों लोकों में व्याप्त नहीं है, वह काव्व निष्फल है अर्थात काव्य वही है जो तीनों लोक में यश से प्रसिद्ध है। अन्यथा वह काव्य निष्प्रोजन है।

संस्कृत-व्याख्या—तस्य कवेः काव्येन कवितारूपरचनया किं, किं प्रयोजनं न किमपीत्यर्थः, यस्य कवेः, भारती वाणी, सर्ववृत्ता तगामिनी=सर्वेषां वृत्तान्तानां व्यवहारादीनां चरितस्य गामिनी बोधकर्वी, कथा इव महाभारतस्य कथेव जगत्त्रयं=लोकत्रयं न व्याप्नोती न ख्यातिमधिगच्छति। व्यर्थमेव भवतीति।

शब्दार्थ—भारती=वाणी, सर्ववृत्तान्तगामिनी=सभी सज्जन पुरुषों के चरित्र आदि गुणों से युक्त, भारती=वाणी, जगत्त्रयं=तीनों लोक में, न व्याप्नोति=प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता है।

उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ॥१०॥

अन्वय—उच्छ्वासान्तेऽपि अखिन्नाः (ये) येषां वक्त्रे सरस्वती, ते आख्यायिकाराः कवीश्वराः कथं न वन्द्याः।

अर्थ—जो कवि उच्छ्वास (अध्याय) लिखने के पश्चात् भी थकान का अनुभव नहीं करते हैं अर्थात् कथा का एक अंश रूप उच्छ्वास पूरा करने के बाद भी दूसरे उच्छ्वास को लिखने के लिये उद्यत कवि, जिन कवियों के मुख में सरस्वती सदा निवास करती है वे आख्यायिका लिखने वाले महाकवि क्यों नहीं वन्दनीय हैं अर्थात् वे कवि प्रवर सदा अभिवादन के योग्य होते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—उच्छ्वासान्तेऽपि=उच्छ्वासस्य कथैकांशस्य अवसानेऽपि समाप्तावपि, अखिन्नाः खेदशून्याः उत्साहयुक्ताः, येषां कवीनां, वक्त्रे मुखे, सरस्वती वाग्देवी (सदा निवसति) ते महाकवयः आख्यायिकाकारा आख्यायिकालेखकाः कवीश्वराः कवीनाम् ईश्वरा, श्रेष्ठाः कवयः कथं न, वन्द्याः प्रणामयोग्याः, अभिवादनीयाः अवश्यं ते कवीश्वराः वन्दनीया इत्यर्थः।

शब्दार्थ उच्छ्वासान्तेऽपि—कथा के भाग रूप उच्छ्वास अध्याय) के समाप्त होने के बाद भी, अखिन्नाः=थकान का अनुभव न करने वाले अर्थात् एक उच्छ्वास की रचना करने के बाद भी न थकने वाले और दूसरे उच्छ्वास की रचना करने के लिये उद्यत रहने वाले, आख्यायिकाकाराः=आख्यायिका की रचना करने वाले, कवीश्वराः=कवियों में श्रेष्ठ कवि, कथ=क्यों नहीं, वन्द्याः—प्रणाम के योग्य हैं।

कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।। ११।।

अन्वय—नूनं कर्णगोचरम् गतया शक्त्या पाण्डुपुत्राणां दर्प इव वासवदत्तया कवीनां दर्पः अगलत्।

अर्थ—निश्चय ही कवियों का काव्य रचना का अभिमान सुबन्धु द्वारा विरचित वासवदत्ता नामक कथा के श्रवण से उसी प्रकार चूर-चूर हो गया, जिस प्रकार इन्द्र के द्वारा प्रदत्त शक्ति (अस्त्र विशेष) को देखकर पाण्डवों के पुत्रों का अभिमान नष्ट हो गया था। यहाँ श्लेष अनुप्राणित उपमा अलंकार के चमत्कार से बाण की श्लिष्टोपमा की प्रियता अभिव्यक्त हो रही है।

संस्कृत-व्याख्या—नूनं निश्चयेन, कर्णगोचरं=कर्णयोः गोचरं श्रुति-विषयं (कर्णपक्षे कुन्तीपुत्रस्य राधेयस्य समीपं) गतया प्राप्तया, शक्त्या इन्द्र प्रदत्त-शक्तिनामकास्त्रविशेषेण, पाण्डुपुत्राणां=पाण्डूनां पुत्राणां युधिष्ठरादीनां, दर्प इव अहंकार वासवदत्तया वासवदत्तानामककथया (कर्णपक्षे वासवेन देवराजेन दत्तया समर्पितया शक्त्या) कवीनां काव्यविधायकानां दर्पोऽहङ्कारः, अगलत् नष्टोऽभवदित्यर्थः । अत्रोपमालंकारः ।

शब्दार्थ—कर्णगोचरगतया=कानों में प्राप्त हुई, कर्णपक्ष में कुन्ती के पुत्र 'कर्ण' के पास प्हुंची हुई, शक्त्या=इन्द्र के द्वारा प्रदत्त शक्ति नामक अस्त्र विशेष से, वासवदत्तया – सुबन्धु के द्वारा लिखित वासवदत्ता नामक कथा से (पक्ष में) इन्द्र के द्वारा प्रदत्त शक्ति नामक अस्त्र विशेष से, दर्पः=अहङ्कार, अगलत्=समाप्त हो गया । महाभारत में इन्द्र के द्वारा कर्ण को शक्ति (अस्त्र विशेष) की देने की कथा का वर्णन मिलता है, जिस शक्ति का प्रभाव यह था कि वह शक्ति जिस पर चलाई जायेगी, उसकी उससे अवश्य मृत्यु हो जायेगी, यह सुनकर पाण्डु कें पुत्र युधिष्ठिर आदि सभी डर गये थे, उसी प्रकार सुबन्धु विरचित वासवदत्ता नामक कथा को सुनकर कवियों के गर्व नष्ट हो गये ।

पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः ।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ।। १२ ।।

अन्वय—पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्य-बन्धो नृपायते ।

अर्थ—योग्य एवं ललित पदों की योजना के चमत्कार परिपूर्ण मनोहर एवं आकर्षक तथा क्रम से आलङ्कारिका शैली के अनुरूप माधुर्य आदि ओज-गुण के अनुकूल वर्णों से युक्त भट्टारक हरिचन्द्र महाकवि की गद्यरचना राजा के समान श्रेष्ठ हैं । जिस प्रकार राजा सभी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ होता है वह राजा हारादि आभूषणों से सुशोभित, राज्य के नियमों की स्थिरता से यशस्वी, वर्णाश्रम आदि की क्रम से व्यवस्था करने वाला होता है, उसी प्रकार भट्टा-रक हरिश्चन्द्र की गद्य-रचना अन्य कवियों में सर्वश्रेष्ठ है ।

संस्कृत-व्याख्या—पदबन्धोज्ज्वलः पदानां सुप्तिङन्तानां बन्धः रचना, तेन उज्ज्वलः दीप्तिकारक, हारी आकर्षकः मनोहरः, कृतवर्णक्रमस्थितिः=कृता वर्णानाम् अक्षराणाम् स्वरव्यञ्जनानां, क्रमेण क्रमशः साहित्यिकपरम्परया स्थितिः संयोजनं, यस्मिन् तथाभूतः रमणीयः प्रभावोत्पादकः, भट्टारकहरिचन्द्रस्य एतन्नाम्नः महाकवेः गद्यबन्धः गद्यरचना नृपायते नृप इव आचारतीति राजायते। नृपपक्षे नृपस्तु हारी हारम् अस्य अस्तीति हारी मुक्ताहारेण—अलंकृतः, पदबन्धोज्ज्वलः स्वराज्यनियमानां दृढीकरणेन यशसा प्रसिद्धः, कृतवर्णक्रमस्थितिः=कृता विहिता वर्णानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रादीनां क्रमेण स्थितिः येन सः तादृशः वर्णाश्रमादीनां व्यवस्थापकः भवतीति। तथायं भट्टारकहरिचन्द्रः गद्यकवीनां मध्ये नृपवदास्ते। अत्रोपमालङ्कारोऽस्ति।

शब्दार्थ—पदबन्धोज्ज्वलः—कर्ता, कर्म, क्रिया आदि पदों की संयोजना के चमत्कार से युक्त, हारी=मनोहर एवं चित्त को आकृष्ट करने वाला, कृतवर्णक्रमस्थितिः=क्रम से साहित्यिक विद्याओं के अनुकूल वर्णों स्वर व्यंजनों की सम्यक् योजना से युक्त, भट्टार=आदरवाचक शब्द, गद्यबन्धः=गद्य रचना, नृपायते=राजा के समान अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है। (राजा के पक्ष में) हारी=मुक्ताहार धारण करने वाला, पदबन्धोज्ज्वल=राज्य के नियमों की सुदृढ़ स्थिति से यश प्राप्त करने वाला, कृतवर्णक्रमस्थिति=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि चारों वर्णों की क्रम से नियमानुसार धर्म एवं न्याय के अनुरूप व्यवस्था करने वाला।

अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः ।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः ॥१३॥

अन्वय—सातवाहनः अविनाशिनम् अग्राम्यम् विशुद्धजातिभिः सुभाषितैः रत्नैः इव कोशम् अकरोत्।

अर्थ—सातवाहन नामक राजा ने (जिस प्रकार) कभी नष्ट न होने वाले मनोहर विशुद्ध अर्थात् दोषरहित अलंकारों से युक्त एवं सुभाषित सूक्तियों एवं श्लोकों से युक्त 'कोश-काव्य' की रचना की अर्थात् कोश=श्लोकों के समूह

वाचक अर्थात् गाथा सप्तशती नामक काव्य का प्रणयन किया, जो रत्नों से युक्त खजाने के समान अक्षय अर्थात् अमर है, यहाँ श्लेष अनुप्राणित उपमा अलंकार है।

संस्कृत-व्याख्या—सातवाहनः एतन्नामकः नृप कविश्च, अविनाशिनम् अनश्वरम् अग्राम्यं ग्राम्यदोषरहितं, मनोहरं विद्वज्जनमनोहारकं, विशुद्धजातिभिः शोभनालङ्कारसमन्वितैः, सुभाषितैः सुललितसूक्तिश्लोकैः, रत्नैरिव माणिक्या-दिमणिभिरिव, श्लोकानां समूहः कोशः इतिहेतोः कोशं कोशकाव्यम् अकरोत् अरचयत् (रत्नपक्षे तु कोशं कोशागार, अविनाशिनम् क्षयरहितम्, अग्राम्यं नगरस्थितं नागरिकं, विशुद्धजातिभिः श्रेष्ठरत्नजातिभि) अत्रोपमा-लङ्कारोऽस्ति।

शब्दार्थ—अविनाशिनम्=कभी नाश न होने वाला, अग्राम्यं=ग्राम्यदोष शून्य, मनोहर, नागरिक=नगरस्थित, विशुद्धजातिभिः=शुद्ध अलङ्कारों से (शब्दार्थालङ्कारों एवं उभायलंकारों से युक्त), सुभाषितैः=सुभाषितश्लोकों से, कोशं=श्लोकों का समूह अर्थात् कोश काव्य, कोशम्=कोशालय, खजाना, वैंक, विशुद्धजातिभिः=शुद्ध एवं श्रेष्ठ रत्नों से युद्ध, यहाँ कोश और विशुद्ध-जातिभिः शब्द दो-दो अर्थों के बोधक हैं।

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनैव सेतुना ॥१४॥

अन्वय—प्रवरसेनस्य कुमुदोज्ज्वला कीर्तिः सेतुना कपिसेना इव सागरस्य परं पारं प्रयाता।

अर्थ—वन्दरों की सेना के समान सेतुवन्ध अर्थात् सेतुवन्ध के द्वारा जिस प्रकार कुमुद नामक वानर से उज्ज्वल वानरों की सेना समुद्र को पार कर गई थी, उसी प्रकार सेतुबन्ध नामक काव्य के द्वारा कुमुद पुष्प के समान निर्मल राजा प्रवरसेन की कीर्ति समुद्र पार कर गई अर्थात् प्रवरसेन का श्वेत यश, सेतुवन्ध नामक काव्य से समुद्र के पार पहुंच गया। इसमें उपमा अलङ्कार है। यहाँ उपमेय राजा प्रवरसेन की कीर्ति और उपमान वानरों की सेना है, समुद्र पार करना ही साधारण धर्म और इव उपमावाचक शब्द है।

संस्कृत व्याख्या—प्रवरसेनस्य एतन्नामकस्य नृपतेः (वानरसेनापक्षे) प्रवरा श्रेष्ठा सेना यस्य सः प्रवरसेनः तस्य सुग्रीवस्य कुमुदोज्ज्वला=कुमुदसुमनिव उज्ज्वला निर्मला, शुभ्रा, कीर्तिः यशः यस्य सः सेनापक्षे तु कुमुदनामक वानरेणा उज्ज्वला अलंकृता, कीर्त्तिः यशः सेतुना सेतुबन्धनामकेन काव्येन सेनापक्षे तु, प्रस्तरखण्डनिर्मितेन सेतुना सागरसेतुना कपिसेनां कपीनां वानराणां सेना इव वाहिनीव, सागरस्य जलनिधेः परंपारम् अपरतटं प्रयाता प्राप्ताऽभूत। अत्रोपमालङ्कारः।

शब्दार्थ— कुमुदोज्ज्वला=कुमुद नामक पुष्प के समान सफेद, सेना के पक्ष में—कुमुद नामक वानर से सुशोभित, सेतुना=सेतुबन्ध नामक काव्य से, पक्ष में वानरों के द्वारा पत्थर के टुकड़ों से निर्मित समुद्र का सेतु (पुल), प्रवरसेनस्य=प्रवरसेन नामक राजा की, कीर्तिः=यश, पक्ष में श्रेष्ठ सेना से युक्त सुग्रीव की।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।।१५।।

अन्वय—सूत्रधारकृतारम्भैः बहुभूमिकैः सपताकैः नाटकैः देवकुलैः इव भासो यशः लेभे।

अर्थ—नाटककार भास कवि ने देवालयों के समान अपने नाटकों से ससार में यश प्राप्त किया है, जिन नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार (नाटक का एक मुख्य अभिनय संयोजक पात्र) के द्वारा किया जाता है। देव मन्दिर के पक्ष में सूत्रधार (शिल्पी) राजगीर के द्वारा मन्दिरों के निर्माण का आरम्भ किया जाता है, जिन नाटकों में पात्रों की अनेक भूमिकाओं (अवस्थाओं) का चित्रण होता है, और मुख्य कथा की सहायक कथायें पताका के नाम से चित्रित रहती हैं, मन्दिर के पक्ष में बहुत विशालभूमि से युक्त, और पताकाओं (ध्वजाओं) से सुशोभित देवमन्दिर होते हैं। अतः जिस प्रकार लोग बहुत विस्तृत भूमि में सूत्रधार (राज, शिल्पी) के द्वारा बहुत ध्वजाओं से युक्त देवमन्दिरों का निर्माण कराकर संसार में यश अर्जित करते हैं, उसी-प्रकार भास ने सूत्रधार, पताकाओं (सहायक कथाओं से) युक्त नाटकों का

प्रणयन करके संसार में अपूर्व यश लाभ किया। इसमें श्लेष अनुप्राणित उपमा अलंकार है।

संस्कृत-व्याख्या—सूत्रधारकृतारम्भैः= सूत्रधारेण नाटकाधिकारिणा प्रमुखपात्रेण, कृतः विहितः आरम्भः येषां तैः, सूत्रधारेण कृतारम्भनाटकैः, देवमन्दिरपक्षे सूत्रधारेण शिल्पिना कृतः आरम्भः निर्माणारम्भः येषां तैः शिल्पिभिः इष्टिकादिभिः निर्मितैः देवमन्दिरैः, बहुभूमिकैः=बह्व्यो भूमिकाः पात्राणि येषु तानि तथाभूतैः नाटकैः अनेकावस्थानुकृतियुक्तैः देवमन्दिरपक्षे बह्व्या भूमिकाः विस्तृतभूमय ताभिः युक्तैः विशालभूमियुक्तैरित्यर्थः सपताकैः मुख्यकथायाः सहायिका कथा पताका कथ्यतेऽनः सहामककथायुक्तैः मन्दिरपक्षे पताकैः पताकाभिः ध्वजाभिः सहितैः युक्तैः ध्वजालंकृतैः देवमन्दिरैरित्यर्थः, नाटकै देवकुलैः देवालयैरिव भास एतन्नामा प्रख्यातनाटककारः यशः ख्याति प्रतिष्ठां कीर्ति लेभे प्राप्तवान्। अत्र श्लिष्टोपमालङ्कारोऽस्ति।

शब्दार्थ - सूत्रधारकृतारम्भैः=सूत्रधार (नाटक के अभिनेता पात्रों का अधिकारी प्रमुख पात्र) के द्वारा नाटकों का आरम्भ किया जाता है। देव-मन्दिर के पक्ष में सूत्रधार=शिल्पी के द्वारा प्रारम्भ किया जाता है, बहुभूमिकैः =नाटक बहुत पात्रों के अभिनय से युक्त होते हैं और मन्दिर बहुत विशाल भूमि में बनाये जाते हैं अतः विशाल भूमि से युक्त (मन्दिर), सपताकैः=नाटक, मुख्य कथा की सहायक कथाओं से युक्त होते हैं, मन्दिर=पताकाओं, ध्वजाओं से युक्त होते हैं। लेभे=प्राप्त किया।

> निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
> प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥१६॥

अन्वय—मधुरसान्द्रासु कालिदासस्य सूक्तिषु निर्गतासु मञ्जरीषु इव कस्य प्रीतिः न जायते।

अर्थ—माधुर्य आदि गुणों से युक्त, मधुर एवं सरस (आनन्द परिपूर्ण) कालिदास की सूक्तियों में केवल उच्चारण करने से ही (अर्ध विकसित) कुसुम मञ्जरी के समान किसको आनन्द नहीं प्राप्त होता है, अर्थात् कालिदास की रचना मंजरी में सभी आनन्द मग्न हो जाते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—मधुरसान्द्रासु माधुर्यादिगुणपूर्णाः, सान्द्राः रससिक्ताः तासु, कालिदासस्य अभिज्ञानशाकुन्तलादीनां प्रणेतुः कविकुलगुरोः, सूक्तिषु सुभाषितेषु, निर्गतासु उच्चरितासु एव मञ्जरीष्विव कुसुममञ्जरीषु इव, कस्य सहृदयस्य हृदये प्रीतिः आनन्दः न जायते नोद्भवति। अपितु सर्वेषामेव हृदये आनन्दातिरेकः सद्य एव उत्पद्यते।

शब्दार्थ—मधुरसान्द्रासु=माधुर्य आदि गुणों से युक्त होने के कारण मधुर और सरस, सूक्तिषु=सूक्तियों में, निर्गतासु=उच्चारण करने के समय में ही, कस्य=किस सहृदय को, प्रीतिः=आनन्द, न जायते=नहीं प्राप्त होता है अथवा किसके हृदय में आनन्द नहीं उत्पन्न होता है, अपितु सबके हृदय में आनन्द की उद्भूति सद्यः हो जाती है।

समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा।।१७।।

अन्वय—समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना हरलीला इव बृहत्कथा कस्य विस्मयाय नो भवति।

अर्थ—जिस प्रकार कामदेव को जलाकर भस्म कर देने वाली और पार्वती का शृङ्गार करने वाली, विरोधी व्यवहार करने वाली शंकर जी की लीला किस व्यक्ति को आश्चर्य चकित नहीं करती, अपितु सभी हृदयों को आश्चर्य चकित करती है, उसी प्रकार काम विकारों को उद्दीप्त (बढ़ाने) वाली, और पार्वती की आराधना से युक्त गुणाढ्यकृत बृहत्कथा किसको आश्चर्य चकित नहीं करती है अपितु सभी सहृदय पाठकों एवं श्रोताओं को आश्चर्य चकित करती है। इसमें शंकर की लीला उपमान, बृहत्कथा उपमेय हैं, श्लेष के आश्रय से उपमा की प्रतीति हो रही है अतः श्लेष अनुप्राणित उपमा अलंकार है।

संस्कृत-व्याख्या—समुद्दीपितकन्दर्पा समुद्दीपितः भस्मीकृतः कन्दर्पः कामदेवः यया सा भस्मीकृतमन्मथा, बृहत्कथा पक्षे समुद्दीपितः वृद्धि नीतः कन्दर्पः कामविकारः यया सा उद्दीपितकामविकारा, कृतगौरीप्रसाधना=

कृतं गौर्याः पार्वत्याः प्रसाधनं यस्यां सा, हरलीला=हरस्य भगवतः शङ्करस्य लीला इव, बृहत्कथा गुणाढ्यकृतबृहत्कथानामकोऽयं ग्रन्थः, कस्य श्रोतुः पाटकस्व वा, विस्मयाय आश्चर्यकरणाय नो नहि अस्ति, अपितु, सर्वेषामपि पाठाकानां श्रोतॄणामपि मनसुः आश्चर्यम् प्रकरोति। अत्रोपमालङ्कारोऽस्ति।

शब्दार्थ— समुद्दीपितकन्दर्पा— कामदेव को भस्म करने वाली, बृहत्कथा के पक्ष में काम-विकार को बढ़ाने वाली, कृतगौरीप्रसाधना=पार्वती का शृंगार करने वाली, बृहत्कथा के पक्ष में पार्वती की आराधना से युक्त, विस्मयाय=आश्चर्य के लिये, नो=नहीं। गुणाढ्य कवि के द्वारा रचित बृहत्कथा नामक एक विशाल ग्रन्थ है. इसकी रचना पैशाची प्राकृत में की गई है। इसमें एक लाख श्लोक हैं परन्तु आजकल यह उपलब्ध नहीं है।

आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि।
जिह्वान्तःकृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्त्तते ॥१८॥

अन्वय—आढयराजकृतोत्साहैः हृदयस्थैः स्मृतैः अपि अन्तः कृष्यमाणा इव जिह्वा कवित्वे न प्रवर्त्तते।

अर्थ—आढयराज नामक कवि के द्वारा निर्मित "उत्साह" नामक नृत्यकला से सम्बन्धित ग्रन्थ को हृदयस्थ करके, तथा स्मरण करने पर मानो मेरी (बाणभट्ट की) जिह्वा मुख के अन्दर ही प्रविष्ट (धंस) है जाती और कविता करने में प्रवृत्त नहीं होती है अर्थात् प्रयत्न करने पर भी आढयराज की रचना के समक्ष मैं (बाणभट्ट) कविता करने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूं। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संस्कृत-व्याख्या—आढयराजकृतोत्साहैः आढयराजेन आढयराजेतिप्रसिद्ध न महाकविना कृतैः निर्मितैः, उत्साहैः उत्साहनामकनृत्य ग्रन्थैः, हृदयस्थैः हृदये वर्तमानां, स्मृतैरपि, स्मर्यमाणैरपि अन्तः कृष्यमाणा आभ्यन्तरप्रविष्टेव, जिह्वा रसना, कवित्वे काव्यं कर्तुं न प्रवर्त्तते नोत्साहते न सामर्था भवतीति तात्पर्यम्।

शब्दार्थ—हृदयस्थैः=हृदय में स्थित, हृदय√स्था+क=अ (आ का लोप) हृदयस्थैः तृ० ब० व०, स्मृतैः=स्मरण करने से√स्मृ+क्त=त=स्मृतैः तृ० ब० व० । आढ्यराजकृतोत्साहैः=आढ्यराज नामक कवि के द्वारा निर्मित 'उत्साह' नामक नृत्य, ताल, आदि का ग्रन्थ, जिह्वा=जीभ, अन्तः कृष्यमाणेव=अन्तर प्रविष्ट हुई सी, न=नहीं, कवित्वे=कविता करने में, प्रवर्त्तते=प्रवृत्त (उत्साहित अथवा समर्थ) होती है ।

तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहरणाकुलः ।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ।।१९।।

अन्वय—तथापि नृपतेः भक्त्या अभीतः निर्वहणाकुलः आख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् करोमि ।

अर्थ—फिर भी मैं (बाणभट्ट) राजा हर्ष की भक्ति से प्रेरित एवं उत्साहित होकर भी अन्त तक लिखने में सन्देह युक्त होते हुए, आख्यायिका रूपी सागर को अपनी जिह्वा (वाणी रूपी नौका) के द्वारा पार करने की चञ्चलता कर रहा हूं । इसका आशय यह है कि सुन्दरतम एवं उत्कृष्ट प्राचीन काव्यों के होने पर भी मैं (बाणभट्ट) श्री राजा हर्षवर्धन की भक्ति से प्रेरित होकर इस आख्यायिका के लिखने का दुःसाहस कर रहा हूं मुझे सन्देह है कि इस आख्यायिका की पूर्ण रचना करने में मैं सफल भी हो सकूंगा, या नहीं ।

संस्कृत-व्याख्या - तथापि लब्धप्रतिष्ठप्राचीनकविप्रवराणाम् अनेकासु परमोच्चरचनासु विद्यमानास्वपि, नृपतेः राज्ञः श्री हर्षस्य, भक्त्या अनुरागेण, अभीतः प्रेरितः अभि+इ+क्त=त=अभीतः) सन् निर्वहणाकुलाः=निर्वणे आख्यायिकायाः अस्याः समाप्तौ, आकुलः=व्याकुलमतिः सन्दिग्धहृदयोऽस्मि, यतोहिआख्यायिकाम्भोधौ=आख्यायिका एव अम्भोधिः सागरः तस्मिन्, जिह्वायाः रसनायाः प्लवनमेव परिचालनमेव चापलं चञ्चलतां करोमि, चपलतयैव प्रवृत्तो भवामीत्यर्थः ।

शब्दार्थ—तथापि=अनेक प्राचीन कवियों की श्रेष्ठतम रचनाओं के होते हुए भी, निर्वहणाकुलः=कथा की समाप्ति तक लिखने में व्याकुल बुद्धि वाला अथवा संदिग्ध हृदय वाला, अभीत, अभीतः=प्रेरित, अभि+इ+क्त=अभीतः, आख्यायिकाम्भोधौ=आख्यायिका रूपी सागर में, जिह्वाप्लवनचापलम्=जीभ को ही आगे करने की चञ्चलता करना ।

सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वला ।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः ॥२०॥

अन्वय—सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वला प्रतिपादकैः शब्दैः आख्यायिका शय्या इव भाति ।

अर्थ—किसी परिश्रम के बिना सरलता के सुख पूर्वक समझ में आ जाने के कारण सुन्दर एवं मनोहर अक्षरों की योजना में आकर्षक रचना वाले अभीष्ट (मन पसन्द, रुचिकर) अर्थ को प्रतिपादित करने वाले शब्दों से युक्त आख्यायिका उस शय्या के समान शोभा को प्राप्त होती है, जिस शय्या पर सुखपूर्वक (सोकर) नींद तोड़ी जाती है, अर्थात् जिस शय्या पर यथेष्ट नींद प्राप्त करके जागरण होता है और शय्या चारों पावों में सोने से जड़ी होने के कारण शोभा को प्राप्त होती है । इनमें उपमा अलंकार है ।

संस्कृत-व्याख्या—सुखप्रबोधललिता—सुखेन परिश्रमं विनैव आनायासेन यः प्रबोधः ज्ञानं तेन ज्ञानेन ललिता मनोहरा, (शय्यापक्षे सुखेन अनायासेन मत्कुणादीनां दशनं विनैव प्रबोधः निद्राक्षयः तेन ललिता हृद्या, प्रिया) सुवर्णघटनोज्ज्वला=सुष्ठु वर्णानाम् स्वरव्यञ्जनानां घटना योजना यस्यां सा, शोभनाक्षरयोजनालङ्कृता, (शय्यापक्षे सुवर्णस्य, हेम्नः, स्वर्णस्य, घटनं) योजनं यस्यां सा स्वर्णपादघटिता) प्रतिपादकैः अभीष्टार्थप्रतिपादकैः शब्दैः पदैः सुप्तिङन्तैः, (शय्या पक्षे चतुर्भिः पादैः) आख्यायिका कथा, शय्या इव पर्यङ्क इव भाति राजते । अत्रोपमालङ्कारः अस्ति ।

शब्दार्थ—सुखप्रबोधललिता=किसी परिश्रम के बिना समझ में आने के कारण सुन्दर, (शय्या के पक्ष में सुखपूर्वक नींद तोड़ने के कारण सुन्दर), सुवर्णघटनोज्ज्वला=शोभन एवं समर्थ तथा आकर्षक वर्णों की योजना से युक्त, (शय्या के पक्ष में—सोने के बने हुए पावों के जोड़ों से सुन्दर), प्रतिपादकैः शब्दैः=अभीष्ट एवं प्रिय तथा रुचिकर अर्थ देने वाले शब्दों से, (शय्या पक्ष में पलंग के चार पावों से) भाति=सुशोभित होती है ।

जयति ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रक्षः ।
सकलप्रणयिमनोरथसिद्धिश्रीपर्वतो हर्षः ॥२१॥

अन्वय—ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रक्षः सकलप्रणयिजनमनोरथ-सिद्धिश्रीपर्वतो हर्षः जयति ।

अर्थ—जलती हुई प्रतापरूपी अग्नि के प्राकार से (सीमा की दीवार) संसार की रक्षा करने वाले, और समस्त प्रेमी जनों के मन की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए सम्पत्ति के पर्वत रूप राजा हर्ष की जय हो। इसमें रूपक अलंकार की छटा दर्शनीय है।

संस्कृत-व्याख्या—ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रक्ष=ज्वलन् प्रतापः एवतेजसमूहः एव ज्वलनः अनलः स एव प्राकारः सीमाभित्ति तेन कृता विहिता जगतः संसारस्य रक्षा संरक्षणं येन सः एवम्भूतः, नृपः सकलप्रणयिजनमनोरथ-सिद्धिश्रीपर्वतः सकलाः निखिलाः ये प्रणयिनः प्रेमिणः तेषां प्रणयिनां मनोरथानाम् सिद्धये पूर्तिकरणाय श्रीपर्वतः श्रियां सम्पत्तीनां पर्वतः अचलः, हर्षः महाराजः हर्ष नामा नृपः जयति सर्वोत्कृष्टपदम् अलङ्कुर्यात् ।

शब्दार्थ—ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रक्षः=चलते हुए प्रताप रूपी अग्नि के प्रकार से संसार की रक्षा करने वाले, सकलप्रणयिजनमनोरथ-सिद्धिश्रीपर्वतः=समस्त प्रेमी जनों के मनोरथ को पूर्ण करने के लिये सम्पत्ति के पर्वत रूप, प्राकार=सीमा की रक्षा के लिये बनी दीवार।

एवमनुश्रूयते—पुरा किल भगवान् स्वलोकमधितिष्ठिन् परमेष्ठी विकासिनि पद्मविष्टरे समुपविष्टः सुनासीरप्रमुखै-र्गीर्वाणैः परिवृतो ब्रह्मोद्याः कथाः कुर्वन्नन्याश्च निरवद्या विद्यागोष्ठीर्भावयन् कदाचिदासांचक्रे। तथासीन च तं त्रिभुवनप्रतीक्ष्यं मनुदक्षचाक्षुष-प्रभृतयः प्रजापतयः सर्वे च सप्तर्षिपुरःसरा महर्षयः सिषेवरे। केचिदृचः स्तुतिचतुराः समुदाचारयन्। केचिदपचितिभांजि यजूंष्यपठन्। केचित्प्र-शंसासामानि जगुः। अपरे विवृतक्रतुक्रियातन्त्रान्मन्त्रान्व्या-चक्षिरे विद्याविसंवादकृताश्च तत्र तेषांमन्योऽन्यस्य विवादाः प्रादुरभवन्।

अर्थ—(लोगों के द्वारा) ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन काल में भगवान् ब्रह्मा जी स्वर्ग लोक का शासन कर रहे थे, उसी अपनी शासन काल में कभी खिले हुए कमलों के आसन पर बैठे हुए इन्द्र आदि प्रमुख देवताओं से घिरे हुये वह ब्रह्मा जी ब्रह्म सम्बन्धिनी कथा को करते हुए (कहते हुये) और दोष सहित अर्थात् प्रशंसनीय विद्यागोष्ठियों को कर रहे थे। उस प्रकार विकसित कमलासन पर विराजमान तीनों लोक में पूज्य एवं श्रेष्ठ उन ब्रह्मा जी की की मनु, दक्ष, चाक्षुष आदि प्रजापति और सप्तर्षियों के सहित सभी महर्षिगण सेवा कर रहे थे। कुछ तो स्तुति करने में निपुण अथवा स्तुति-प्रधान ऋचाओं (वेदमन्त्रों) को उच्चारण कर रहे थे। कुछ पूजा से सम्बन्धित यजुर्वेद के मन्त्रों का पाठ कर रहे थे। कुछ प्रशंसावाचक अर्थात् स्तुतिपरक सामवेद के मन्त्रों को गा रहे थे। अन्य कुछ लोग यज्ञ सम्बन्धित एवं यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों की व्याख्या कर रहे थे। उस गोष्ठी में शास्त्रों के अर्थ में मतभेद होने के कारण उनमें विद्या सम्बन्धी विवाद प्रारम्भ हो गया अर्थात् ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से विभिन्न मतों पर विवाद प्रारम्भ हो गया, परन्तु किसी ईर्ष्या एवं द्वेषवश विवाद नहीं प्रारम्भ हुआ।

संस्कृत-व्याख्या—एवम् अनेन प्रकारेण, अनुश्रूयते कर्णपरम्परया जनैः आकर्ण्यते, यत पुरा प्राचीन काले, स्वर्लोकं स्वर्गलोकम् अधितिष्ठन् अनुशासन, परमेष्ठी विधाता, ब्रह्मा, विकासिनि विकसिते, पद्मविष्टरे, समुपविष्टः समासीनः आसीत्, सुनासीरप्रमुखैः सुनासीर, प्रमुखः येषाँ ते तैः=सुनासीरप्रमुखैः इन्द्रप्रधानैः गोर्वाणै देवैः, परिवृतः परिवेष्टितः, ब्रह्मोद्याः=ब्रह्मवदन्तीति =ब्रह्मोद्याः ब्रह्मसम्बन्धिन्यः कथाः कुर्वन् कथयन् अन्याश्च अपराश्च, निरवद्याः दोषशून्याः प्रशंसनीयाः उत्तमाश्च, विद्या-गोष्ठीः विद्यासम्बन्धिनीः गोष्ठीः (सभा) भावयन् कर्वाणः, आसांचक्रे अध्यतिष्ठत्। तथासीन कमलासनस्थं, त्रिभुवनप्रतीक्ष्यं=त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं तस्य प्रतीक्ष्यः इति त्रिभुवनप्रतीक्ष्यः तं=त्रिभुदनप्रतीक्ष्यं त्रैलोक्यपूजार्हम्, तं ब्राह्मणं, मनुदक्षचाक्षुष प्रभृतयः मनुदक्षचाक्षुषादयः, प्रजापतयः, सर्वे च, सप्तर्षिपुरः सराः सप्तर्षिमुख्याः, सर्वे महर्षयः सिषेविरे असेवन्त। केचित् तु महर्षयः स्तुतिचतुराः प्रशंसाप्रधानाः ऋचः वेदमन्त्रान्, समुदाचारयन् सस्वरम् अगायन्। केचित्त, प्रशंसासामानि प्रशंसा (स्तुति) पुरान सामवेदमन्त्रान् जगुः

अगायन्। केचित्तु, अपचितिभञ्जि पूजासम्बन्धीनि, यजूंषि यजुर्वेदमन्त्रान् अपठन् पेठुः। अपरेतु, पविवृतक्रतुक्रियातन्त्रान्=विवृताः सरलीकृताः क्रतूनां यज्ञानां क्रियाः यैः तेषां तन्त्रान् यज्ञसम्बन्धिनः मन्त्रान् व्याचक्षिरे व्याख्याताः। तत्र तद्गोष्ठ्यां येषां महर्षीणाम् अन्योन्यस्य मिथः विद्याविसंवादकृताः= विद्यानां ब्रह्मसम्बन्धिसिद्धान्तप्रतिपादकानां दर्शनादीनां, विसंवादेन मतभेदेन कृताः संजाता, विवादाः शास्त्रार्थरूपतर्का, प्रादुरभवन् समुत्पन्ना. परस्परं जिज्ञासुभावनया विवादमुत्पाद्य तत्वं ज्ञातुं प्रयतमाना आसन् इति भावः।

शब्दार्थ—एवम्=इस प्रकार, अनुश्रूयते=सुना जाता है, अधि+स्था (तिष्ठ्+शतृ=अत्=अन्=अधितिष्ठन्=शासन करते हुए, परमेष्ठी= ब्रह्मा, विकासिनी=खिले हुए, पद्मविष्टरे=कमलासन पर, समुपविष्टः = बैठे हुए, सुनासीरप्रमुखैः=इन्द्र हैं प्रधान जिनमें उन, गोर्वाणै=देवताओं से, परिवृतः=घिरे हुए परिवृ+क्त=त=परिवृतः, ब्रह्मोद्याः=ब्रह्मसम्बन्धिनी, निरवद्याः=दोषशून्य, विद्यागोष्ठीः=ब्रह्म सत्ता को प्रतिपादित करने वाली तथा दर्शनशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाली विद्याओं (ज्ञान की) गोष्ठियों को, भावयन्=करते हुए, आसांचक्रे=रहते थे, तथासीन =उस पर कमलासन पर बैठे हुए, त्रिभुवनप्रतीक्ष्यं=तीनों लोकों में पूज्य, मनुदक्षचाक्षुषप्रभृतयः=मनु दक्ष और चाक्षुष आदि प्रजापति (ये प्रजापति के) नाम हैं) सप्तर्षिपुरस्सरा=सप्तर्षि नामक सात ऋषियों सहित, सिषेविरे= सेवा कर रहे थे, स्तुतिचतुराः=स्तुति प्रधान, ऋचः=वेद के मन्त्र; समुदाचारयन्=उच्चारण कर रहे थे अपचितिभाञ्जि=पूजा (कर्मकाण्ड) सम्बन्धी, यजूंषि=यजुर्वेद के मन्त्रों को, सामानि=सामवेद के मन्त्रों को, जगुः=गा रहे थे। (गै+लिट् प्र० पु० बहु व०), विवृतक्रतु क्रियातंत्रान्=यज्ञ क्रिया में उपयोगी यन्त्रों की, व्याचक्षिर=व्याख्या कर रहे थे, विद्याविसंवाद-कृताः=शास्त्रों से सिद्धान्त प्रतिपादन में विभिन्न मतों से उत्पन्न, अन्यान्यस्य =परस्पर एक दूसरे का, विवाद=तर्क।

अथातिरोषणः प्रकृत्या महातपा मुनिरत्रेस्तनयस्तारापते-र्भ्राता नाम्ना दुर्वासा द्वितीयेनोपमन्युनाम्ना मुनिना सह कलहायमानः साम गायन्क्रोधान्धो विस्वरमकरोत्। सर्वेषु

च तेषु शापभयप्रतिपन्नमौनेषु मुनिष्वन्यालापलीलया चावधीरयति कमलसंभवे भगवती कुमारी किंचिदुन्मुक्तबालभावे भूषितनवयौवने वयसि वर्तमाना, गृहीतचामरप्रचलद्भुजलता पितामहमुपवीजयन्ती, निर्भर्त्सनताडनजातरागाभ्यामिव स्वभावारुणाभ्यां पादपल्लवाभ्यां समुद्भासमाना, शिष्यद्वयेनेव पदक्रममुखरेण नूपुरयुगलेन वाचालितचरणयुगला, धर्मनगरतोरणस्त भविभ्रमं बिभ्राणा जंघाद्वितयम्, सलीलमुत्कलहंसकुलकलालाप्रलापिनि मेखलादाम्नि विन्यस्तवामहस्तकिसलया।

अर्थ—इसी विवाद के अवसर में ही स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी, महा तपस्वी, अत्रि के पुत्र, तारापति (चन्द्र) के भाई दुर्वासा नामक मुनि ने उपमन्यु नामक मुनि के साथ शास्त्रार्थ (तर्क) करते. हुए, सामवेद के मन्त्र का गान करते हुए, क्रोध से अन्धे होते हुए (उच्चारण) स्वर नियम का अतिक्रमण कर गये अर्थात् स्वरभंग कर दिया। उन महाक्रोधी दुर्वासा के शाप के भय से उन सभी मुनियों के मौन (चुप) रहने पर, और अन्य मुनियों के साथ बातचीत करने के ब्याज से ब्रह्मा के द्वारा उपेक्षा किया जाने पर, (गोष्ठी में उपस्थित) कुमारी सरस्वती देवी (दुर्वासा के स्वरभंग पर हंसी न रोक सकी अर्थात् हंस पड़ी। वह सरस्वती जी कुछ बालभाव को छोड़ती हुई नवीन युवावस्था से युक्त आयु को प्राप्त कर चुकी थी, वह चंवर धारण किये हुए बाहुलता को हिलाती हुई ब्रह्मा जी पर पंखा कर रही थी। वह स्वभाव से लाल कोंपल पत्ते के समान अपने पैरों से सुशोभित हो रही थी, जो पैर मानो दुर्वासा के प्रति क्रोध व्यक्त करने के कारण पृथिवी पर पटकने से और लाल हो गये थे। सरस्वती जी के पैरों में धारण किये हुए नूपुर ऐसे मुखरित हो रहे थे मानो दो शिष्य पदपाठ और क्रमपाठ से (सतत) अभ्यास करते हुये चरण (वेद की शाखा) का स्वाध्याय कर रहे हों। उनके दोनों जघन स्थल धर्मरूपी नगर के तोरण (मुख्य द्वार) के स्तम्भ के समान सुंदर प्रतीत हो रहे थे। उत्कण्ठित हंस के समान शब्द करती हुई अपनी करधनी (कटिसूत्र) पर

अपना नवीन कोंपल पत्ते सदृश (कोमल) बायाँ हाथ विलासपूर्वक रखे हुए खड़ी थी।

संस्कृत-व्याख्या—अर्थ—विवादारम्भानन्तरम्, गोष्ठया सभायां प्रकृत्या स्वभावेन, अतिक्रोधनः महाक्रोधो, अत्रेः एतन्नामकस्य मुनेः, तनयः आत्मजः, तारापतेः चन्द्रस्य, भ्राता, महातपाः महातपस्वी, नाम्ना-अभिधेयेन दुर्वासाः एतन्नामा, मुनिः, उपमन्यु नाम्ना ऐतन्नामकेन द्वितीयेन मुनिना, सह साकं, कलहायमानः शास्त्रार्थं कुर्वन्, साम सामवेदस्य मन्त्रं गायन, क्रोधान्धः कोप-विमूढः, विस्वर स्वर-नियमातिक्रमणं, स्वरभंगम् अकरोत्। सर्वेषु च तेषु मुनिषु, शापभयप्रतिपन्नमौनेषु=शापस्य भयात् प्रतिपन्नं स्वीकृतं, मौनं तूष्णीत्व यैः तेषु शापभयात् मौनं धारयत्सु सत्सु, अन्यालाप-लीलया, अन्यैः सह अपरैः साकम् आलापः वार्तालापः, तस्य लोलया व्याजेन, अवधीरयति उपेक्षां दर्शयति सति कमलसंभवे विधातरि, ब्रह्मणि, भगवती कुमारी सरस्वती देवी, (जहास इति दूरेऽन्वयः सर्वाणीमनि विशेषणानि सरस्वत्याः एव सन्ति) किञ्चिदुन्मुक्त-बालभावे=किञ्चित् अल्पमात्रम् उन्मुक्तः परित्यक्तः बालभावः शैशवं येन तथाभूते, भूषितयौवने=भूषितम् सुशोभितं नवयौवनं नूतनतारूण्य केन तथाभूते वयसि अवस्थायां, वर्तमाना विराजमाना, गृहीतः चामरः प्रचलद्भुजलता= गृहीतः यः चामर तेन गृहीतचामरेणहस्तस्थितवालव्यजनेन, भुजा एव लता भुजलता प्रचलन्ती च साभुजलता प्रचलद् भुजलता प्रकम्पमानबाहुवल्लरी पितामहं विधातारं, उपवीजयन्ती वालव्यजनेन वायुं कुर्वाणा, निर्भर्त्सनाता-डनजातरागाभ्यामिव निर्भर्त्सनेन यत ताडन क्रोधात् भूताडनं तेन जातरागाभ्यां लोहितवर्णभूताभ्यां, स्वभावरुणाभ्यां प्रकृत्या रक्तवर्णाभ्यां, पादपल्लवाभ्यां चरणपल्लवाभ्यां, समुद्भासमाना देदीप्यमाना, शिष्यद्वयेनेव छात्रद्वयेनेव, पठक्रम मुखरेण पदक्रमेणपादप्रक्षेपेण (शिष्य पक्षे पदक्रमाभ्यां, पदपाठ क्रमपाठाभ्यां) मुखरेण शब्दयुक्तेन, नूपुरयुगलेन पादाभूषणाभ्यां, वाचालितचरणयुगला शब्दायमानचरणद्वया, धर्मनगरं तोरणस्तम्भविभ्रम=धर्मनगरस्य तोरण बहिर्द्वारम् तस्य स्तम्भः तस्य विभ्रम-विलासः इव विलासः यस्य तादृश, जङ्घाद्वितय जघनद्वयं विभ्राणा दधाना सलीलं सविलासम्, उत्कलहंसकुल-कलालापप्रलापिनी उत्कः उत्कण्ठितः कलहंसाः श्रेष्ठहंसाः तेषां कुल समुदायः तस्य कलालापः मधुरालापः अव्यक्तकुजनध्वनिः, तद्वत् प्रलापिनि

शब्द कुर्वति मेखलादाम्नि कटिसूत्रे, विन्यस्तवामहस्तकिसलया= विन्यस्तः धृतः वामहस्तकिसलयः वामपाणिपल्लव यया सा एवम्भूता सरस्वती।

शब्दार्थ—**अतिरोषणः**=महाक्रोधी, **प्रकृत्या**=स्वभाव से, **कलहायमानः** =कलह अर्थात् विवाद करता हुआ, **साम्गायन्**=सामवेद के मन्त्र का गान करता हुआ, **क्रोधान्धः**=क्रोध से अन्धा अर्थात् विचार शून्य होकर, **विस्वरम्**=स्वरनियम का अतिक्रमण अर्थात् स्वरभंग, **शापभयप्रतिपन्नमौनेषु**=दुर्वासा के शाप के भय से सभी मुनियों के मौन धारण करने पर, **आलापलीलया**=वार्तालाप के व्याज से, **कमलसंभवे**=ब्रह्मा के, **अवधीरयति** =उपेक्षा किये जाने पर, **किञ्चिदुन्मुक्तबालभावे**=कुछ लड़कपन को छोड़कर, **भूषितनवयौवने**=नवीन युवावस्था से सुशोभित, **गृहीतचामरप्रचलद्भुजलता** =चंवर को धारण किये हुये बाहुलता को हिलाती हुई, **उपवीजयन्ती**= पंखा करती हुई, **निर्भर्त्सनाताडनजातरागाभ्यां**=क्रोध से भूमि पर पैर पटकने से लाल हुये पैरों से, **स्वभावारूणाभ्यां**=स्वभाव से लाल पैरों से, **समुद्भासमाना**=सुशोभित होती हुई, (सम्+उत्+भास्+शानच्→आन→मान +टाप्→आ=समुद्भासमाना प्र० ए० व०) **पदक्रममुखरेण**=पैर रखने से शब्दायमान, **वाचालितचरणयुगला**=नूपुरों के बजने से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सरस्वती के दोनों चरण बोल रहे थे, **धर्मनगरतोरणस्तम्भविभ्रमः**= धर्मनगर के बहिर्द्वार के खम्भ के समान सुन्दर, **बिभ्राणा**=धारण करती हुई, **सलीलमुत्ककलहंसकुलकलालापप्रलापिनि**=उत्कण्ठित सुन्दर हंसों के समूह के समान सुन्दर शब्द करती हुई, **मेखलादाम्नि**=कटिसूत्र करधनी, **विन्यस्तवामहस्तकिसलया**=नवीन कोंपल पत्ते के समान बायें हाथ को विलासपूर्वक अपनी करधनी पर रखे हुई।

विद्वन्मानसनिवासलग्नेन गुणकलापेनेवांसावलम्बिना जंहास ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकाया, भास्वन्मध्यनायकमनेकमुक्तानुयातमपवर्गमार्गमिव हारमुद्वहन्ती वदनप्रविष्टसर्वविद्यालक्तकरसेनेव पाटलेन स्फूरता दशनच्छदेन विराजमाना, संक्रान्तकमलासनासनकृष्णाजिनप्रतिमां मधुरगीताकर्णनावतीर्णशशिहरिणामिव कपोलस्थलीं दधाना तिर्यक्सावज्ञमुन्नमित-

कभ्रूलता, श्रोत्रमेक विस्वरश्रवणकलुषितं प्रक्षालयन्तीवापाङ्गनिर्गतेन लोचनाश्रुजलप्रवाहेणेतरश्रवणेन च विकसित सितसिन्धुवारमञ्जरीजुषा हसतेव प्रकटितविद्यामदा, श्रुतिप्रणयिभिः प्रणवैरिव कर्णावतंसकुसुममधुकरकुलैरुपास्यमाना, सूक्ष्मविमलेन प्रज्ञाप्रतानेनेवांशुकेनाच्छादितशरीरा, वाङ्मयमिव निर्मलं दिक्षु दशनज्योत्स्नालोकं विकिरन्ती देवी सरस्वती श्रुत्व जहास।

अर्थ—विद्वानों के मन मन्दिर में निवास करने के कारण (विद्वानों के) हृदय स्थित गुण समूह से ही मानों कन्धे पर लटकने वाले ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) से सरस्वती का शरीर पवित्र हो रहा था। वह देदीप्यमान मध्यमणि से सुशोभित और बहुत से मोतियों के गुंथे हुए मुक्ताहार को धारण किये हुए थी, जो मुक्ताहार मोक्ष मार्ग के समान प्रतीत हो रहा था, मुख में स्थित समस्त विद्याओं के चरण के आलते (लालरंग) से मानो (क्रोधवश) फड़कते हुए ओठों से वह सुशोभित हो रही थी। सरस्वती के कपोल स्थल पर ब्रह्माजी के कृष्ण मृग चर्म का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, वह मृग चर्म ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सरस्वती के मधुर गीत को श्रवण करने के लिये चन्द्रमण्डल में स्थित हिरण हो कपोल स्थल पर उतर कर आ गया हो, सरस्वती की भौंह तिरस्कार की भावना को धारण करने के कारण तिरछी और ऊपर को उठ गई थी, नेत्र के कोने से बहते हुए आँसू की धार से वह मानों स्वरभंग के कारण अशुद्ध पाठ के श्रवण से अपवित्र हुए अपने एक कान को धो रही हो, उनके दूसरे कान में, धारण की हुई विकसित सिन्धुवार की मंजरी हंस रही थी, जिससे उनका विद्या सम्बन्धी मद प्रकटित हो रहा था, उनके कान में धारण किए हुए कान के कुण्डल पर भौंरे चक्कर लगा रहे थे, जो भौंरे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो वे भौंरे वेद मन्त्रों से प्रेम करने वाले अनेक ओंकार के अक्षरों से सेवित हो रहे थे, प्रज्ञा (बुद्धि) रूपी तने के समान अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) धागों से निर्मित श्वेत वस्त्र सरस्वती के शरीर को ढके हुए था, साहित्य विद्या के समान निर्मल एवं स्वच्छ दाँतों की कान्ति दर्शा

दिशाओं में बिखेर रही थी, उपर्युक्त विशेषणों एवं गुणों से युक्त सरस्वती देवी दुर्वासा के मुख से निःसृत स्वरभंग पाठ को श्रवण कर हँस पड़ी। (इस गद्यांश में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों छटा दर्शनीय है।)

संस्कृत-व्याख्या—विद्वन्मानसनिवासलग्नेन विदुषां मनीषिणाम् मानसे हृदये निवासः स्थितिः तत्र लग्नेन गुणानां समूहेन इव, अंसावलम्बिना स्कन्धस्थितेन, ब्रह्मसूत्रेण यज्ञोपवीतेन, पवित्रीकृतकाया पवित्रीकृतः कायः शरीरं यस्याः सा पावनीकृत शरीरा, भास्वन्मध्यनायकं भास्वन् देदीप्यामानः मध्यः मणिः यस्मिन् सः तम् हारम्, बहुमौक्तिकविद्धम्, बहुभिः अनेकैः मस्तिकैः विद्धम् प्रनुष्यूतम् अपवर्गभित मोक्षपन्थानमिव हारं मुक्ताहारम्, उद्वहन्ती दधाना, वदनप्रविष्टसर्वविद्यालक्तकरसेनेव=वदने आनने, प्रविष्टानां सर्वासां विद्यानाम् अलक्तकरसः यावकरागः तेन इव पाटलेन शोणितवर्णेन स्फुरता दीप्यमानेन दशनच्छदेन ओष्ठेन विराजमाना अलङ्कृता, सक्रान्तकमलासनकृष्णजिनप्रतिमां=संक्रान्ता प्रतिविम्बिता कमलस्य आसनं यस्य सः तस्य ब्रह्मणः, कृष्णजिनस्य कृष्णजातिविशेषमृगचर्मणः प्रतिमा कान्तिः, यस्याः सा तां: मधुरगीताकर्णनावतीर्णशशिहरिणामिव=मधुरं यत् गीत तस्य आकर्णनार्थं श्रोतुम् अवतीर्णः समायतः शशिहरिणः, चन्द्रमण्डलस्थितमृगः यस्यां तथा भूतां कपोलस्थलीं दधाना, तिर्यक् कुटिलं सावज्ञं सापमानम् उन्नमितैकभ्रूलता उन्नमिता एका भ्रूलता यया सा, विस्वरश्रवणकलुषितं=विस्वरस्य स्वरभङ्गयुक्तस्य श्रवणेन समाकर्णनेन, कलुषितं दूषितम् एकं, श्रोत्रं कर्णम्, अपाङ्गनिर्गतेन अपाङ्गात् नेत्रकोणात्, निगतेन निपतितेन, लोचनाश्रुजलप्रवाहेण लोचनयो, अश्रूणां जलं तस्य प्रवाहेण नेत्रजलधारया, प्रक्षालयन्तीव, इतरश्रवणेन अपकरणेन च. विकसितसितसिन्धुवारमञ्जरीजुषा=विकसिता, सिताशुभ्रा सिन्धुवारस्य निर्गुण्डीवृक्षस्य या मञ्जरी तां जुषतीति सेवते इति तेन हसतेव हास्यं कुर्वाणेन इव, प्रकटितविद्यामदा=प्रकटितः स्पष्टीकृतः विद्यानां मदः अहङ्कारः यया सा, श्रुतिप्रणायिभिः वेदानुरागिभिः प्रणवैः ओङ्काराक्षरैरिव, कर्णावतंस कुसुममधुकरकुलैः=कर्णावतंसयोः कर्णभूषणयोः कुसुमेषु, पुष्पेषु व्याप्तैः मधुकराणां भ्रमराणां कुलानि, तैः भ्रमरसमुदायः, उपास्यमाना अर्च्यमाना सूक्ष्मविमलन =सूक्ष्मेण, निर्मलेन च प्रज्ञाप्रतानेन प्रज्ञायाः बुद्धेः प्रतानेन विस्तारेण इव अंशुकेन

वस्त्रेण, आच्छादितशरीरा=आच्छादितं शरीरं देहः यया सा, एवम्भूता,

वाङ्मयमिव साहित्यविद्यामिव शब्दविस्तारमिव वा, निर्मलं, विमलं, दशन ज्योत्स्नालोकं=दशनानां दन्तानाम् ज्योत्स्ना कान्तिः तस्या आलोकः चमत्कृतिः तद्वद्दिक्षु दिशास, विकिरन्ती विस्तारयन्ती, देवी सरस्वती वाग्देवी, श्रुत्वा दर्वाससः स्वरभङ्गम आकर्ण्य जहास अहसत् ।

शब्दार्थ—विद्वान्मानसनिवासलग्नेन=विद्वानों के चित्त में निवास करने से लगे हुए, गुणकलापेनेव=गुणसमूह के समान, असावलम्बिना=कन्धे पर लटकने वाले, ब्रह्मसूत्रेण=जनेऊ से, यज्ञोपवीत में, पवित्रीकृतकाया=पवित्र हो गया है शरीर जिसका वह सरस्वती, भास्वन्मध्यमनायकम्=चमकते हुए मध्यमणि (रत्न) से युक्त, अनेक मुक्तानुयातम्=बहुत से मोतियों स युक्त, अपवर्गमार्गमिव=मुक्तिमार्ग के समान, उद्वहन्ती=धारण किये हुए, वदनप्रविष्टसर्वविद्यालक्तकरसेन इव=मुख में प्रविष्ठ समस्त विद्याओं के चरणों के आलते (लालरंग के समान) पाटलेन=लाल, स्फुरता=चमकते हुए दशनच्छदेन=ओठों से, विराजमाना=सुशोभित, संक्रान्तकमलासनकृष्णा-जिनप्रतिम–प्रतिबिम्बित ब्रह्मा के मृगचर्म की कान्ति से युक्त मधुरगीताकर्णना-वतीर्णशशिहरिणाम्, इव=मधुर गाने को सुनने के लिये आये हुए चन्द्रमृग युक्त, दधानां=धारण करने वाली, तिर्यक्=तिरछे, सावज्ञम्=तिरस्कार के साथ, उन्नमितैकभ्रूलता=ऊपर उठी हुई एक भौंहरूपी लता वाली, श्रोत्रं=कान, विस्वरश्रवणकलुषितं=स्वरभङ्ग के सुनने से कलुषित (दूषित) अपाङ्गनिर्गतेन=आंख के कोने से निकले हुए, इतरश्रवणेन=दूसरे कान से, विकसितसितसिन्धवारमञ्जरीजुषा=खिले हुए सफेद सिन्धुवार की मंजरी से सेवित, श्रुतिप्रणयिभिः=वेदयन्त्रों से प्रेम करने वाले प्रणवैरिव=ओंकार के समान, कर्णावतंसकुसुममधुकरकुलै=कान के कुण्डल के पुष्पों पर बैठे हुए भौरों के समूह के द्वारा सेवित, प्रज्ञाप्रतानेनेव=बुद्धि के विस्तार के समान, अंशुकेन=वस्त्र से, वाङ्मयमिव=शब्दसमूह के समान अथवा साहित्य विद्या के समान, दिक्षु=सभी दिशाओं में, दशनज्योत्स्नालोक—दाँतों की चमक की कान्ति को, विकिरन्ती=फैलाती हुई, श्रुत्वा=सुनकर (दुर्वासा के अशुद्ध स्वरभङ्ग युक्त वेदमन्त्र को सुनकर, सरस्वती देवी, जहास=हंस पड़ी ।

दृष्टवा च तां यथा हसन्तीं स मुनिः 'आः पापकारिणि,

दुर्गृहीतविद्यालवावलेपदुर्विदग्धे, मामुपपहसि' इत्युक्त्वा

शिरकम्पशीर्यमाणबन्धविशरारोरुन्मिषत्पिङ्गलिम्नो जटाकलापस्य रोचिषा सिचन्निव रोषदहनद्रवेण दश दिशः, कृतकालसंनिधानामिवान्धकारितललाटपट्टाष्टापदामंतकांतः पुरमंडनपत्रभङ्गमकरिकां भृकुटिमाबध्नन्, अतिलोहितेन चक्षुषाऽमर्षदेवतायै स्वरुधिरोपहारमिव प्रयच्छन् निर्दयदष्टदर्शनच्छदभयपलायमानामिव वाचं रुन्धन्दन्तांशुच्छलेन, अंसावस्रंसिनः शापशासनपट्टस्येव ग्रथनन्ग्रन्थिमन्यथा कृष्णजिनस्य, स्वेदकणप्रतिबिम्बितैः शापशङ्काशरणागतैरिव सुरासुरमुनिभिः प्रतिपन्नसर्वावयवैः, कोपकम्पतग्लिताङ्गुलिना करेण प्रसादनलग्नामक्षरमालामिवाक्षमालामाक्षिप्य कामण्डलवेन वारिणा समुपस्पृश्य शापजलं जग्राह ।

अर्थ—उस प्रकार हंसती सरस्वती देवी को देखकर वह दुर्वासा मुनि बोले, अरे ? पापकर्म करने वाली, अल्प विद्या को जानने के कारण अहंकार करने वाली महामूर्ख तू मेरी हंसी कर रही है, यह कहकर सिर के कांपने से बन्धन के शिथिल हो जाने पर इधर-उधर बिखरे हुए पीली कान्ति से युक्त अपने जटाओं के तेज से अपने क्रोधानल रूपी जल से सभी दिशाओं को सींचने लगे, कुटिलता को प्राप्त हुई दुर्वासा की भौंहें ऐसी प्रतीत होने लगीं मानों भौंहों ने यमराज का सामीप्य प्राप्त कर लिया हो, (विशाल) मस्तक रूपी शतरंज नामक खेल के पट्ट को मानों उनकी भौंहें अपने कालेपन से मलिन कर रही हों, वे भौंहें यमराज के रविनास की रमणियों के लिए पत्र रचना की मछली के आकार के समान थीं । अतीव लाल आँखों से ऐसा प्रतीत होता था मानों दुर्वासा क्रोध देवता को अपने रक्त का उपहार प्रदान कर रहे हों, अत्यन्त क्रूरता से ओठ कटने के डर से भागने को तत्पर अपनी वाणी को मानों वे दुर्वासा जी अपने दाँतों की कान्ति के व्याज से रोकने का प्रयत्न कर रहे हों, शापरूपी शासन पट्ट की तरह कन्धे से गिरते हुए कृष्ण मृगचर्म की गाँठ को एक दूसरे प्रकार से ही बाँधने लगे, शाप भय से शरण में आये हुए

के समान देव, दानव और मुनि, दुर्वासा के पसीने की बूंदों से परिपूर्ण सारे शरीर में प्रतिबिम्बित हो रहे थे, क्रोधवश उत्पन्न कम्पन के कारण चंचल-अंगुलि वाले हाथ से दुर्वासा ने मानों उसको प्रसन्न करने के लिए अक्षरपंक्ति के समान रुद्राक्ष की माला को फेंक दिया और कमण्डलु के जल से आचमन करके शाप देने के लिये जल ग्रहण किया।

संस्कृत-व्याख्या—तां त्रैलोक्यप्रसिद्धां सरस्वतीं देवीं हसन्तीं दृष्ट्वा स मुनिः महाक्रोधी दुर्वासा मुनिः प्राह, आः पापकारिणि ? रे पापकर्मनि ते ? दुर्गृहीतविद्यालवावलेपदुर्विदग्धे दुर्गृहीतः विद्यालयस्य विद्यांशस्य यः अवलेपः अहङ्कार तेन दुर्विदग्धे ? बुद्धिरहिते, ज्ञानशून्ये, मूर्खे ? माम् मुनिम् उपहससि इति उक्त्वा इत्थमभिधाय शिरः कम्पशीर्यमाणबन्धविशरारोः शिरः कम्पनेन विशीर्यमाणः शिथिलीभवन् यो बन्धः तेन विशरारोः पतनोन्मुखस्य, उन्मिषत्पिङ्गलिम्नः=उन्मिषन् निपतन् पिङ्गलिमा पीतिमा यस्य यथाभूतस्य, जटाकलापस्य जटासमुदायस्य रोचिषा प्रभया, रोषदहनद्रवेण=रोष एव दहन तस्य द्रवेण क्रोधानलजलेन, दशदिशः आशाः, सिञ्चन्निव आर्द्रीकुर्वन्निव, कृतकालसन्निधानामिव=कृतं कालस्य, सान्निध्य यया सा तामिव—प्राप्तान्तकसामीप्यामिव, अन्धकारितललाटपट्टाष्टाप-दाम्-अन्धकारितंमलिनकृतं ललाटपट्टमेव मस्तकमेव अष्टापदं शारिफलं यया सा ताम्, अन्तकान्तःपुरमंडन-पत्रभङ्गमकरिकाम्=अन्तकस्य यमराजस्य, अन्तपुरं तस्य मण्डनाय अन्तःपुर-स्थतरमणीनाम् अलङ्करणाय, यः पत्रभंगः पत्ररचना, तस्मिन् मकरिकां मत्स्यां मीनचिह्नांकितां भृकुटि भ्रूलताम् आबध्नन् अलङ्कुर्वन् अतिलोहितेन अत्यन्तरक्तवर्णेन, चक्षुषा नयनेन, अमर्षदेवतायै क्रोधदेवतायै, स्वरुधिरोपहारमिव निजशोणितोपहारमिव, प्रयच्छन्, समर्पयन् निर्दयदष्ट दशनच्छदभयपलाय-मानामिव—निर्दयं दयारहितं यथास्या दष्टः यः दशनच्छदः ओष्ठः तस्य भयेन पलायमानाम् अपरन्तीमिव, वाचं वाणीं, रुन्धन् न्यवारयन्, दन्तांशुच्छलेन =दन्तांशूनां छलेन व्याजेन, असावस्रंसिनः अंसात् स्कन्धात् अवस्रंसते इति अवस्रंसी तस्य अवस्रंसिनः निपतितस्य कृष्णाजिनस्य कृष्णमृगचर्मणः, ग्रन्थिं, शापशरणपट्टस्येव शापस्य यत् शासनपट्टम् आदेशफलकं तस्येव अन्यथा एवमेव

अप्राकृतिकरीत्या ग्रथ्नन् अनुबध्नन् स्वेदकणप्रतिबिम्बतैः स्वेदकणेषु स्वेदबिन्दुषु, प्रतिबिम्बितैः, शापशङ्काशरणागतैः,=शापस्य शङ्कयाभीत्या, शरणागतैः शरणं प्राप्तैः, सुरासुरमुनिभिः प्रतिपन्नसर्वावयवः व्याप्तसकलशरीराङ्गः, कोपकम्पतरलिताङ्गुलिना=कोपेन रोषेण यः कम्पः तेन तरलिताः चंचलिताः अङ्गुलयः यस्य तथाभूतेन करेण हस्तेन, प्रसादलग्नाम् प्रसादे प्रसादयितुं लग्नांव्यापृताम्, अक्षरमालाम् अक्षरपंक्तिम् इव, अक्षमालां रूद्राक्षस्रजम्, आक्षिप्य प्रक्षेपणं कृत्वा, कामण्डलवेन कमण्डलुगतेन वारिणा सलिलेन समुपस्पृश्य आचमन कृत्वा शापजलं शापोत्सर्गजल, जग्राह अग्रहीत् ।

शब्दार्थ—हसन्तीं=हंसती हुई, हस्+शतृ→अत्→नुम् का आगम न शेष=हसन्तीं स्त्रीलिंग द्वितीया एक व० । दृश्+क्त्वा त्वा=दृष्ट्वा= देखकर, दर्गृहीतविद्यालवावलेपदुर्विदग्धे=बड़ी कठिनता से प्राप्त विद्या के लव से अहंकार करने वाली मूर्ख, शिरकम्पशीर्षमाणबन्धशिथिलशिरोः=शिर के कंपाने से बन्धन के शिथिल हो जाने से बिखरी हुई, उन्मिषत्पिङ्गलिम्नः= निकलती हुई पीली कान्ति से, रोचिषा=कान्ति से, रोषद्रवेण=क्रोधानलरूपी जल से, कृतकालसंनिधानामिव—मानों यमराज का सामीप्य प्राप्त किया हो। अन्धकारितललाटपट्टाष्ठापदाम्=मस्तक रूपी शतरज के खेल का पट्टा मानो मलिन कर दिया हो। अन्तकान्तःपुरमण्डनपत्रभङ्गमकरिकाम्=यमराज के रनिवास की रमणियों के लिये पत्र रचना (आभूषण) की मछली रूप भौंह को, आबध्नन्=ऊपर को तिरछा चढ़ता हुआ, अतिलोहितेन=अत्यन्त लाल, चक्षुषा—आँख से, अमर्षदेवतायै=क्रोधरूपी देवता के लिये, स्वरुधिरोपहारम्—अपने रक्तरूपी भेंट को, प्रयच्छन्—देते हुये से, निर्दयदष्टदशनच्छदभयपलायमानमिव—निर्दयता से ओठों के कटने के भय से भागती, वाचं—वाणी को, रुन्धन् रोकते हुए, दन्तांशुच्छलेन—दाँतों की कान्ति के व्याज से, अंशावस्रंसिनः—कन्धे से गिरने वाले, शापशासनपट्टस्येव—शाप के आज्ञा फलक के समान, ग्रहयन् -बाँधते हुए, अन्यथा- अप्राकृतिक ढंग से, कृष्णाजिनस्य— कृष्ण जाति विशेष के मृग के चर्म की, स्वेदकणप्रतिबिम्बितैः—पसीने की बूँदों से व्याप्त शरीर में प्रतिबिम्बित होने वाले, शापशङ्काशरणगतैरिव—शाप के

भय से शरण में आये हुए के समान, सुरासुरमुनिभिः— देव राक्षस, मुनि, प्रतिपन्नसर्वावयवः—समस्त शरीर में व्याप्त, कोपकम्पतरलिताङ्गुलिनः - क्रोध के कारण काँपने से चँचल अंगुलि वाले, अक्षमालां—रुद्राक्ष की माला को, आक्षिप्य—फेंक कर, प्रसादनलग्नां—प्रसन्न करने में लगी हुई, अक्षरमालामिव —अक्षरों की माला (पंक्ति) के समान, कामण्डलवेन कमण्डलोः इदं कामण्डलवं तेन—कामण्डलवेन—कमण्डलु के जल से, समुपस्पृश्य—आचमन करके, जग्राह — ग्रहण किया।

अत्रान्तरे स्वयंभुवोऽभ्याशे समुपविष्टा देवी मूर्तिमती पीयूषफेनपटलपाण्डुरं कल्पद्रुमदुकूलं वसाना बिसतन्तुमयेनांशुकेनोन्नत स्तनमध्यबद्धगात्रिकाग्रन्थिः, तपोबलनिर्जितत्रिभुवनजयपताकाभिरिव तिसृभिर्भस्मपुण्ड्रकराजिभिर्विराजितललाटाजिरा, स्कन्धावलम्बिना सुधाफेनधवलेन तपःप्रभावकुण्डलीकृतेन गङ्गास्रोतसेव योगपट्टकेन विरचितवैकक्ष्यका, सव्येन ब्रह्मोत्पत्तिपुण्डरीकमुकुलमिव स्फटिककमंडलुं करेण कलयन्ती, दक्षिणपक्षमालालङ्कृतपरिक्षेपं कम्बुनिर्मितोर्मिकादन्तुरितं तर्जनतरङ्गिततर्जनीकमुत्क्षिपन्ती करम्।

अर्थ—इसी बीच में ब्रह्मा जी के समीप सदेह में बैठी हुई सावित्री देवी (उठ खड़ी हुई) वह सावित्री देवी के अमृत के फेनसमूह की तरह सफेद, कल्पवृक्ष से प्राप्त उत्तरीयांचल (दुपट्टे) के समान वल्कलवस्त्र धारण किये हुये, अपने उन्नत स्तनों के मध्य भाग को कमल तन्तु निर्मित वस्त्र की स्वस्तिक आकार के समान गांठ से बाँधे हुए उनका मस्तक तपस्या के बल से जीते तीन लोक की विजय पताका के समान भस्म में लगे हुए तीन तिलकों से सुशोभित था, स्कन्ध भाग पर लुढ़कते हुए अमृत के भाग, के समान श्वेत वर्ण और तपोबल के प्रभाव से गोलाकार बने हुए गंगा के सोते के समान योग पट्टिका को वक्षःस्थल पर डाल कर वैकक्ष्यक बना रखा था ब्रह्मा के उत्पत्ति स्थान

कमल की कलिका के समान स्फटिक मणि से निर्मित कमण्डलु को बायें हाथ में धारण किये हुए थी। दाहिने हाथ को ऊपर उठाये हुए, जिस हाथ में रुद्राक्ष की माला तथा शंख से बनी हुई अँगूठी पहने हुए थी जिनके कारण ऊँचे नीचे, हाथ की तर्जनी अंगुली (दुर्वासा को) भयभीत करने के लिये चंचल हो रही थी। इस प्रकार के हाथ से युक्त थी।

संस्कृत-व्याख्या—अत्रान्तरे अस्मिन्नेव अवसरे, स्वयंभुव—ब्रह्मणः अभ्याशे पार्श्वे, समुपविष्टा वर्तमाना, मूर्तिमती सशरीरा, देवी सावित्री, (समुत्तस्थौ) पीयूषफेनपटलपाण्डुरं—पीयूषस्य सुधायाः फेनस्य पटलः, समूहः तद्वत् पाण्डुरं शुभ्रवर्णं, कल्पद्रुमदुकूलवल्कलं—कल्पद्रुमस्य कल्पवृक्षस्य दुकूलस्य इव वल्कलं वसानाधारयन्ती, विसतन्तुमयेन कमलतन्तु निर्मितेन अंशुकेन वस्त्रेण, उन्नतस्तनमध्यबद्धगात्रिकाग्रन्थिः—उन्नतयोः स्तनयोः मध्ये मध्यभागेबद्धः गात्रिकाग्रन्थिः स्वस्तिकाकारग्रन्थिविशेषः यस्याः सा, तपोबलनिर्जितत्रिभुवजयपताकाभिः—तपोबलेन निर्जित पराजितं त्रिभुवनं तस्य जयपताकाभिः विजयकेतुभिः तिसृभिः भस्मत्रिपुण्ड्रकराजिभिः —भस्मनः पुण्ड्रकं तिलकं तस्य राजिभिः रेखाभिः पङ्क्तिभिः, विराजितलला-टाजिरा—विराजितं सुशोभितं ललाट एव अजिरम् अङ्गणप्रदेशः यस्याः सा, स्कन्धावलम्बिना स्कन्धोपरि निपतितेन, सुधाफेनधवलेन—सुधायाः अमृतस्य फेनस्य इव धवलेन शुभ्रेण, तपः प्रभावकुण्डलीकृतेन—तपसः प्रभावेण कुण्डली-कृतेन कुण्डलाकारधारितेन, गङ्गा स्रोतसेव गङ्गा धारयेव, योगपट्टेन योगपट्टिका-वस्त्रेण, विरचितवैकक्ष्यका विरचितं कृतं वैकक्ष्यकं वक्षः स्थले तिर्यक् धारितं यया सा, सव्येन करेण वामेन पाणिना, ब्रह्मोत्पत्तिपुण्डरीकमुकुलमिव—ब्रह्मोत्प-त्तिकमल मुकुलमिव ब्रह्मणः विधातुः उत्पत्तिः जन्मः यस्मात् तथाभूतं पुण्डरीकं कमलं तस्य मुकुल कलिका, तद्वत् स्फटिककमण्डलुं—स्फटिकमणिनिर्मित-कमण्डलुं जलपात्रं, कलवन्ती धारयन्ती, दक्षिणं करं हस्तम् अक्षमालाकृतपरिक्षेपं परिवेष्टितं, कम्बुनिर्मितोर्मिकादन्तुरं—कम्बुःशंखः तेन निर्मिताः रचिता, ऊर्मिका मुद्रिका तया दन्तुरम् उच्चावचं, तर्जनतरङ्गितनर्जतीकं तर्जनाय निर्भत्सितुं तर-ङ्गिता चञ्चला तर्जनी यस्य करस्य तथाभूत हस्तम् उत्क्षिप्य ऊर्ध्वं कुर्वाणा।

शब्दार्थ—स्वयंभुवः—ब्रह्मा के, अभ्याशे—समीप में, समुपविष्टा—बैठी हुई सम्+उप+विश्+क्त—त—समुपविष्टा, पीयूषफेनपटलपाण्डुरं—अमृत के फेन के समान सफेद, कल्पदुकूलवल्कलं—कल्पवृक्ष से, प्राप्त दुकूलवस्त्र के समान वल्कल वस्त्र को, वसाना—धारण किए हुई, बिसतन्तुमयेन—कमल के तन्तुओं से निर्मित, अंशुकेन—वस्त्र से, उन्नतस्तनमध्यबद्धगात्रिकाग्रन्थिः—उच्चस्तनों के मध्यभाग में स्वस्ति के आकार की गाँठ से युक्त, तपोबलनिर्जितत्रिभुवनजयपताकाभिः—तपस्या के बल से जीते हुए तीन लोक की विजयपताकाओं के समान, तिसृभिः=तीन, भस्मत्रिपुण्ड्रकराजिभिः=विभूति के तिलक की तीन रेखाओं से, विराजितललाटाजिरा—मस्तक रूपी आँगन पर धारण किए हुए, स्कन्धावलम्बिना—कन्धे पर लटकने वाले, सुधाफेनधवलेन—अमृतफेन के समान सफेद, तपःप्रभावकुण्डलीकृतेन—तपस्या के प्रभाव से कुण्डलाकार गंगा की धार के समान, योगपट्टकेन=योगपट्टिकावस्त्र विशेष से, विरचितवैकक्ष्यका=वक्षस्थल पर तिरछे लटकाकर वैकक्ष्यक बना रखा था, सव्येन—बायें, ब्रह्मोत्पत्तिपुण्डरीकमुकुलमिव—ब्रह्मा के उत्पत्तिस्थानभूत कमल की कलिका के समान, स्फटिककमण्डलुं—स्फटिक मणि के बने हुए कमण्डलु को, कलयन्ती—धारण किए हुये, दक्षिणं—दाहिने, अक्षमालाकृतपरिक्षेपं—रुद्राक्ष की माला से युक्त, कम्बुनिर्मितोर्मिकादन्तुरं—शंख की बनी हुई अंगूठी के धारण करने से ऊंचे नीचे, तर्जनतरङ्गिततर्जनीकम्=डाटने के लिये चंचल तर्जनी वाले, करम्=हाथ को, उत्क्षिपन्ती=उठाती हुई उत्+क्षिप्+शतृ—अत् स्त्रीलिंग प्रथमा एक वचन।

'आः पाप, क्रोधोपहत, दुरात्मन्, अज्ञ, अनात्मज्ञ, ब्रह्मबन्धो, मुनिखेट; अपसद, निराकृत, कथमात्मस्खलितविलक्षः सुरासुरमुनिमनुजवृन्दवन्दनीयां त्रिभुवनमातरं भगवतीं सरस्वतीं शप्तुमभिलषसि' इत्यभिदधाना, रोषविमुक्तवेत्रासनैरोङ्कारमुखरितमुखैरुत्क्षेपदोलायमानजटाभारभरितदिग्भिः परिकरबन्धभ्रमितकृष्णाजिनाटोपच्छायाश्यामायमानदिवसैरमर्षनिःश्वासदोलाप्रेङ्खोलितब्रह्मलोकैः सोमरसमिव स्वेदविसरव्याजेन स्रवद्भिरग्निहोत्रपवित्रभस्मस्मैरललाटैः कुश-

तन्तुचारुचामरचीरचीवरिभिराषाढिभिः प्रहरणीकृतकमण्डलुमण्डलैर्मूर्तैश्चतुर्भिर्वेदैः सह वृषीमपहाय सावित्री समुत्तस्थौ।

अर्थ—अरे ? पापी क्रोध का शिकार, दुष्टात्मा, मूर्ख अपने आप को न जानने वाला ब्राह्मणों में नीच, मुनियों में अधम, नीच, स्वाध्याय को छोड़ने वाला, अपनी भूल (अपराध) से लज्जित तू; देवता, मुनि, राक्षस, मनुष्यों से पूजित तीन लोक की माता सरस्वती को शाप देने की इच्छा करता है, ऐसा कहती हुई सावित्री देवी शरीरधारी चारों वेदों के साथ कुश का आसन छोड़कर उठ खड़ी हुई, क्रोध से उन चारों वेदों ने भी अपना-अपना बेंत का बना हुआ आसन छोड़ दिया, उनके मुखों से ओंकार की ध्वनि निकल रही थी, तेजी से ऊपर की ओर फेंका हुआ उनका चंचल जटा समूह मानों चारों ओर फैलने लगा, कटिभाग में लपेट कर बंधे हुए कृष्ण मृगचर्म की घनी छाया से मानो दिन में अन्धकार व्याप्त होने लगा हो, और क्रोध से उत्पन्न श्वासों से समस्त ब्रह्मलोक को कम्पित करने लगे, पसीनों की बूंदों के व्याज से वेदों के शरीर से सोमरस निकल रहा था, अग्नि की पवित्र विभूति से वेगों के मस्तक देदीप्यमान हो रहे थे, वे चारों वेद कुश के बने हुए चंवर और वस्त्र खण्ड कौपीन आदि से युक्त थे, पलाश दण्ड को धारण किए हुए थे, वेदों ने अपने कमण्डलुओं को ही अस्त्र बना रखा था। अर्थात् वेद कमण्डलुओं से प्रहार करने को उद्यत थे।

संस्कृत-व्याख्या—आः पाप ? रे पापात्मन् ? क्रोधोपहत कोपनष्ट, दुरात्मान् दुष्टात्मन्, अज्ञ मूर्ख, अनात्मज्ञ आत्मज्ञानशून्य, ब्रह्मबन्धो विप्राधम, मुनिखेट मुनिषु निन्द्य, अपसद अधमाधम, निराकृत स्वाध्यायशून्य कथम्, आत्मस्खलितविलक्षः=आत्मनः स्वस्य, स्खलितेन बुद्धिविनाशेन, विलक्षः संजातलज्जः सन् सुरासुरमुनिमनुजवृन्दवन्दनीयां—सुराणां देवानां असुराणां राक्षसानां मनुजानां मनुष्याणां वृन्दैः समूहैः, वन्दनीयाम् अर्चनीयां त्रिभुवनमातरं त्रैलोक्यमातरं, भगवतीं सरस्वतीं वाग्देवीं शप्तुं शापदानाय, अभिलषसि वाञ्छसि इति अभिदधाना कथयन्ती, रोषविमुक्तवैत्रासनैः—रोषेण कोपेन, विमुक्तं परित्यक्तं वेत्रासनं वेत्रनिर्मितमासनं यैः तैः, ओङ्कारमुखरितमुखैः—ओङ्कारेण प्रणवशब्देन, मुखरितं ध्वनिपूर्णं मुखंवदनं येषां तैः, उत्क्षेप-

दोलायमानजटाभारभरितदिग्भिः—उत्क्षेपेण आसनपरित्यागेन, दोलायमानाः कम्पमानाः, ये जटाकाराः जटासमूहाः तैः भरिताः व्याप्ताः, दिशः दशदिशः, यैः तथाभूतैः परिकरबन्धभ्रमितकृष्णाजिनाटोपच्छायाश्यामायमानदिवसैः—परिकरबन्धेन कटिबन्धेन, भ्रमितानि परिवेष्टितानि यानि कृष्णाजिनानि कृष्ण-मृगचर्माणि, तेषाम् आटोपः आडम्बरः तस्य छायया श्यामायमानः दिवसः यैः तैः, अमर्षनिःश्वास दोलाप्रेङ्खोलितब्रह्मलोकैः—अमर्षेण कोपेन यो निःश्वासः स एव दोला तया प्रेंखोलितः चालितः ब्रह्मलोकः यैः तैःस्वेदविसरव्याजेन—स्वेदस्य परिश्रमस्य विन्दोः विसरः निपतनं तस्य व्याजेन सोमरसं स्रवद्भिः निपतद्भिः, अग्निहोत्रपवित्रभस्मस्मेरललाटैः अग्निहोत्रेण, पवित्रं यद् भस्म तेन स्मेरः देदीप्यमानः ललाटः मस्तकः, येषां तैः कुशतन्तुचारुचामर-चीवरिभिः--कुशानां तन्तव सूत्राणि, त एव चारूणि सुन्दराणि चामराणि चीराः वस्त्रखण्डानि, चीवराणि कोपीनानि येषां तैः आषाढिभिः पलाशदण्ड-धारिभिः प्रहरणीकृतकमण्डलुमण्डलैः—प्रहरणीकृतम् अस्त्रीकृतं, कमण्डलूनां मण्डलं यैः तैः, मूर्तैः सदेहैः, चतुर्भिः चतुसंख्याकैः, वेदैः ऋग्वेदयजुर्वेदादिभिः, सह सार्धं, वृषीं वेत्रासनम्, अपहाय परित्यज्य, सावित्री, समुत्तस्थौ उदतिष्ठत् ।

शब्दार्थ--क्रोधोपहत=क्रोध का शिकार, अज्ञ—मूर्ख, अनात्मज्ञ—स्वयं को न पहचानने वाला, ब्रह्मबन्धो—नीचब्राह्मण, मुनिखेटापसद—मुनियों में नीच से नीच, निराकृत—स्वाध्याय से विरक्त, आत्मस्खलितविलक्ष—अपने अशुद्ध उच्चारण से लज्जित, रोषविमुक्तवेत्रासनैः—क्रोध से वेंत के आसन को छोड़ने वाले, ओङ्कारमुखरितमुखैः—ओंकार के शब्द से शब्दायमान मुखों वाले, उत्क्षेपदोलायमानजटाभारभरितदिग्भिः—ऊपर को फेंके गये जटाभार से व्याप्त, परिकरबन्धभ्रमितकृष्णाजिनाटोपच्छायाश्यामामायनदिवसैः--कमर में लपेट कर बंधे हुए घने कृष्णमृग चर्म की छाया की कालिमा से दिन में अन्धकार छा रहा था, अमर्षनिःश्वासदोलायप्रेंखोलितब्रह्मलोकैः—क्रोध से उत्पन्न कम्पित करने वाले, श्वासों के झूले के द्वारा ब्रह्मलोक को कम्पायमान करने वाले स्वेदविसरव्याजेन—पसीने के समूह के बहाने से, अग्निहोत्रपवित्र-भस्मस्मेरललाटैः अग्निहोत्र की पवित्र विभूति से सुशोभित मस्तक वाले, कुश-तन्तुचारुचामरचीरचीवरिभिः—कुश के धागे से बने हुए चँवर और कोपीन

आदि से सुशोभित, आषाढिभिः—फलाश दण्ड को धारण किए हुए, प्रहरणीकृत-कमण्डलुमण्डलैः—प्रहार के लिए कमण्डलु का ही अस्त्र धारण करने वाले, वृषीं—बेंत का बना हुआ आसन, अपहाय—छोड़कर, अप+हा+ल्यप्—य—अपहाय। समुत्तस्थौ—उठ खड़ी हुई। सम् पूर्वक √स्था+लिट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन।

ततो मर्षय भगवन्, 'अभूमिरेषा शापस्य' इत्युनुनाथ्यमानोऽपि विबुधैः, 'उपाध्याय, स्खलितमेकं क्षमस्य' इति बद्धाञ्जलिपुटैः प्रसाद्यमानोऽपि स्वशिष्यैः, 'पुत्र मा कृथास्तपसः प्रत्यूहम्' इति निवार्यमाणोऽपि अत्रिणा, रोषावेशविवशो दुर्वासाः दुर्विनीते, व्यपनयामि ते विद्याजनितामुन्नतिमिमाम्। अधस्ताद् गच्छ मर्त्यलोकम्' इत्युक्त्वा तच्छापोदकं विससर्ज। प्रतिशापदानोद्यतां सावित्रीम्' 'सखि संहर रोषम्। असंस्कृतमतयोऽपि जात्यैव द्विजन्मानो माननीयाः' इत्यभिदधाना सरस्वत्येव न्यवारयत्।

अर्थ—इसके अनन्तर हे भगवन्? क्षमा कीजिये, यह शाप देने योग्य नहीं हैं ऐसा देवताओं के कहे जाते हुए भी हे गुरुदेव, एक अपराध को क्षमा कीजिये। इस प्रकार हाथ जोड़े हुए अपने शिष्यों के द्वारा प्रार्थना किये जाते हुए भी, हे पुत्र तपस्या के कार्य में विघ्न मत करो, इस प्रकार अत्रिमुनि के द्वारा रोके जाते हुए भी क्रोधावेग से विवश दुर्वासा ने (कहा कि) अरे दुष्ट सरस्वति विद्या से उत्पन्न तेरे इस अहङ्कार को अभी दूर करता हूँ तू मृत्युलोक में जा, ऐसा कहकर उस शाप के जल को छोड़ दिया। दुर्वासा के इस शापदान क्रोधयुक्त शाप का बदला शाप से लेने के लिये उद्यत सावित्री को सरस्वती ने भी यह कहते हुए रोका कि हे सखि? क्रोध को रोको, संस्कारशून्य बुद्धि वाले क्रोधी ब्राह्मण केवल जाति से ही पूज्य होते हैं।

सस्कृत-व्याख्या—ततः सवित्रयाः उत्थानान्तरं, भगवन् मर्षय क्षमां कुरु, एषा सरस्वती, शापस्य अभूमिः अयोग्या अस्ति, एवम् विबुधैः देवैः, अनुनाथ्यमानोऽपि निवेद्यमानोऽपि उपाध्याय हे गुरो, एकं स्खलितम् अपराधं, क्षमस्व क्षमां कुरु, इति बद्धाञ्जलिपुटैः बद्धकराञ्जलिभिः, स्वशिष्यैः स्वान्तेवासिभिः प्रसाद्यमानोऽपि प्रसादीक्रियमाणोऽपि, पुत्र? वत्स? तपसः तपस्यायाः, प्रत्यूहं विघ्नं माकृथाः न कुरु, इति अत्रिणा, निवार्यमाणोऽपि, रोषावेशविवशः—रोषस्य क्रोधस्य आवेशेन विवशः पराधीनः

सन्, दुर्विनीते ! अविनयशालिनि ? ते तव विद्याजनितां विद्योत्पन्नाम् इमाम् उन्नतिम् मिथ्याहङ्कारं व्यपनयामि दूरीकरोमि। अधस्तात् अधः स्थितं, मर्त्यलोकं मनुष्यलोकं गच्छ व्रज, इति उक्त्वा कथयित्वा, तच्छापोदकं तत् शापसलिलं, विससर्ज अत्याक्षीत्। प्रतिशापदानोद्यतां प्रतिशापस्य दाने उद्यतां तत्परां सावित्रीं सखि ? रोषं कोपं संहर परित्यज असंस्कृतमतयोऽपि संस्कारशून्यमनीषिणोऽपि, द्विजन्मानः विप्राः जात्या एव माननीयाः अर्चनीयाः आदरणीयाः, भवन्तीति अभिदधाना कथयन्ती सरस्वती एव वाग्देव्येव, न्यवारयत् पर्यवर्जयत्।

शब्दार्थ—मर्षय—क्षमा करो, शापस्य—शाप की, अभूमिः—अस्थान, अयोग्य, इति—यह, विबुधैः देवताओं के द्वारा, अनुनाथ्यमान—प्रार्थना किये जाते हुए भी, स्खलति—अपराध को, प्रसाद्यमानः—प्रसन्न किये जाते हुए भी, मा कृथाः—मत करो, प्रत्यूहं – विघ्न को, व्यपनयामि—दूर करता हूँ, विससर्ज छोड़ दिया, प्रतिशापदानोद्यताम्—शाप का बदला शाप से लेने के लिये तैयार, संहर—रोको, असंस्कृतमतयोऽपि—संस्कार शून्य बुद्धि वाले भी, द्विजन्मानः—ब्राह्मण, जात्या—जातिमात्र से।

अथ तां तथा शप्तां सरस्वतीं दृष्ट्वा पितामहो भगवान्कमलोत्पत्तिलग्नमृणालसूत्रामिव धवलयज्ञोपवीतिनीं तनुमुद्वहन् उद्गच्छदच्छांगुलीयमरकतमयूखलताकलापेन त्रिभुवनोपप्लवप्रशमकुशापीडधारिणेव दक्षिणेन करेण निवार्यशापकलकलमतिविमलदीर्घैर्भाविकृतयुगारम्भसूत्रपातमिव दिक्षु पातयन् दशनकिरणैः सरस्वतीप्रस्थानमङ्गलपटहेनेव पूरयन्नाशाः स्वरेण सुधीरमुवाच।

अर्थ—इसके बाद अर्थात् दुर्वासा के द्वारा सरस्वती को शाप देने के बाद, उस प्रकार सरस्वती को दुर्वासा के द्वारा शाप दी हुई देखकर, कमल से उत्पन्न होने के कारण लगे हुए कमल तन्तु के समान श्वेत यज्ञोपवीत को धारण करने वाले, नीलमणि की अँगूठी को, तीन लोकों के विघ्नों की शान्ति के लिये कुश धारण करने वाले दाहिने हाथ से दुर्वासा द्वारा प्रदत्त शाप के कोलाहल को शान्त करके, अत्यन्त स्वच्छ विशाल दाँतों की किरणों से भावी सतयुग का प्रारम्भ करते हुए, सरस्वती के मृत्युलोक को प्रस्थान के समय पर बजने वाले

मङ्गल बाजों की तरह अपनी आवाज से दशों दिशाओं को भरते हुए ब्रह्मा जी बोले।

संस्कृत-व्याख्या—अथ शापदानानन्तरं, तथा तेन प्रकारेण, शप्तां शापग्रसितां, तां त्रिभुवनप्रसिद्धाम्, सरवस्तीं शारदां, देवीं, दृष्ट्वा विलोक्य, कमलोत्पत्तिलग्नमृणालसूत्रामिव—कमलात् या उत्पत्तिः तया लग्नानि मृणालसूत्राणि कमलतन्तवः, यस्यां तां, धवलयज्ञोपवीतिनीं—श्वेतयज्ञोपवीतपरिधानां, तनुं वपुः, उद्वहन् दधानः उद्‌गच्छदच्छांगुलीयमरकतमयूखलताकलापेन उद्‌गच्छन् प्रसरन् अच्छः अतिनिर्मलः, अंगुलीयस्य मरकतस्य मरकतमणेः मयूखः किरण एव लताकलापः यस्मिन् सः तथाभूतेन, त्रिभुवनोपप्लवप्रशमकुशापीडधारिणा—त्रिभुवने त्रैलोक्ये, उपप्लवः तस्य प्रशमार्थं शान्तये, कुशापीडं कुशसमूह धारयतीति तेन, दक्षिणेन, करेण पाणिना, शापकलकलं शापकोलाहलं, अतिविमलदीर्घैः अतिनिर्मलायतैः, दशनकिरणैः दन्तरश्मिभिः, भाविकृतयुगारम्भसूत्रपातमिव—भाविनः—आगामिनः, कृतयुगस्य सत्ययुगस्य, आरम्भस्य सूत्रपातमिव, दिक्षु दशसु दिशासु, पातयन्, सरस्वतीप्रस्थानमङ्गलपटहेनेव—सरस्वत्याः शारदायाः प्रस्थाने मङ्गलपटहः तेन इव स्वरेण ध्वनिना, आशाः दिशः, पूरयन् भगवान ऐश्वर्यशाली, पितामहः विधाता, सुधीरं गम्भीरं उवाच प्राह।

शब्दार्थ—**शप्ताम्**—शाप दी गई, शप्+क्त—त—शप्तां—द्वितिया ए० व० स्त्रीलिङ्ग। **कमलोत्पत्तिलग्नमृणालसूत्रामिव**—कमलोत्पत्ति से लगे हुए सूत्र के समान, **धवलयज्ञोपवीतिनीं**—सफेद यज्ञोपवीत को धारण करने वाले, **तनुं**—शरीर को, **उद्‌गच्छदच्छांगुलीयमरकतमयूखलताकलापेन**—अत्यन्त स्वच्छ मरकत मणि को अँगूठी से किरणे निकल रही थी, **त्रिभुवनोपप्लवप्रशमकुशापीडधारिणेव**—तीनों लोकों के विघ्न को शान्त करने के लिये कुश समूह को धारण करने वाले, **अतिविमलदीर्घः**—अत्यन्त साफ और विशाल **दशनकिरणैः**—दाँतों की किरणों से, **भाविकृतयुगारम्भसूत्रपातं**—आने वाले सत्ययुग के आरम्भ के सूत्रपात के समान, **सरस्वतीप्रस्थानमङ्गलपटहेनेव**—सरस्वती के प्रस्थान के समय बजने वाले मङ्गल बाजे के समान, **स्वरेण**—आवाज से, **आशाः**—दिशाओं को, **पूरयन्**—भरते हुए, **सुधीरं**—गम्भीरता के साथ, **उवाच**—बोले।

ब्रह्मन् न खलु साधुसेवितोऽयं पन्थाः येनासि प्रवृत्तः। निहंत्येष परस्तात्। उद्दामप्रसृतेन्द्रियाश्व समुत्थापितं हि रजः कलुषयति दृष्टिमनक्षजिताम्। कियद्दूरं वा चक्षुरीक्षते। विशुद्धया हि धिया पश्यन्ति कृतबुद्धयः सर्वानर्थानसतः सतो वा। निसर्गविरोधिनी चेयं पयः पावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः। आलोकमपहाय कथं तमसि निमज्जसि। क्षमा हि मूलं तपसाम्। परदोषदर्शनदक्षा दृष्टिरिव कुपिता बुद्धिर्न ते आत्मदोषं पश्यति। क्व महातपोभारवैवधिकता। क्व पुरोभागित्वम्।

अर्थ—हे ब्राह्मण तुमने जिस मार्ग को स्वीकार किया है वह सज्जनों के द्वारा स्वीकृत एवं आदृत नहीं हैं। यह भविष्य में नाश करने वाला होता है, इन्द्रियों के पराधीन पुरुषों की दृष्टि को सांसारिक विषयों में आसक्त इन्द्रिय रूपी अश्वों से उड़ाई हुई धूलि (रजोगुण) मलिन कर देती है और ये बाह्य नेत्र कहाँ तक अर्थात् कितनी दूर तक देखने में समर्थ हो सकते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति अपने शुद्ध प्रज्ञा रूपी नेत्रों से संसार की सम्पूर्ण अच्छाई व बुराई को देखने में समर्थ होते हैं। जिस प्रकार आग और पानी स्वभाव से एक स्थान पर नहीं रह सकते हैं उसी प्रकार धर्म और क्रोध दोनों का एक स्थान पर रहना स्वभाव से ही विपरीत हैं। प्रकाश को (ज्ञान को) छोड़कर अन्धकार। (अज्ञान) में क्यों डूब रहे हो, क्योंकि क्षमा ही तपस्या की जड़ है, दूसरे की बुराइयों (अवगुणों) को देखने में चतुर दृष्टि के समान कोप के वशीभूत तुम्हारी दृष्टि अपने दोषों को देख नहीं पा रही है। कहाँ तो उत्कृष्ट तपस्या के भार को वहन (अर्जन) करने की सामर्थ्य और कहाँ दूसरे के दोषों का अवलोकन करना, अर्थात् तपस्या अर्जन करना और पर दोषान्वेषी होना दोनों में पर्याप्त अन्तर है।

संस्कृत-व्याख्या—ब्रह्मन्, हे विप्र ? अयं पन्था एष मार्गः येन मार्गेण प्रवृत्तः असि चलितुं प्रवृत्तोऽसि, साधुसेवितः—साधुभिः सज्जनैः सेवितः आचरितः, न खलु नैव वर्त्तते, एषः मार्गः, परस्तात् अग्रे, भाविनी काले निहन्ति नितरां नाशं प्रापयति, हि यत, उद्दामं प्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं-उद्दामं अतिवेगेन यथःस्यात्तथा, प्रसृतानि सांसारिकविषयकलषितानि इन्द्रियाण्येव अश्वाः वाजिनः,

तैः अश्वैः समुत्थापितं रजः धूलिकणः, (रजोगुणः,) अनक्षजितां चञ्चलेन्द्रिया-णां, दृष्टिं कलुषयति कलङ्कितां प्रापयति, चक्षु, लोचनं कियद्दूरम्; ईक्षते द्रष्टुम् प्रभवति, कृतबुद्धयः शुद्धबुद्धयः विशुद्धया दोषशून्यया, धिया मत्या, सर्वान् असतः दोषपूर्णान् सतः दोषशून्यान् गुणान् वा पदार्थान् पश्यन्ति, पयः, पाव-कयोः इव जलानलयोरिव, धर्मक्रोधयोः धर्मकोपयोः, एकत्र एकस्मिन् स्थाने, वृत्ति, स्थितिः, निसर्गविरोधिनी स्वभावेन प्रतिकूलिनी, आलोक प्रकाशं (ज्ञानं) अपहाय परित्यज्य, तमसि अज्ञानान्धकारे कथं कस्मात् निमज्जसि निमग्नो-भवसि, तपसाम् तपश्चर्यावतां हि निश्चयेन, मूलं क्षमा अस्ति। परदोषदर्शनदक्षा परेषाम् अन्येषां, दोषाः अवगुणाः, तेषां दर्शने दक्षा समर्था, निपुणा, दृष्टि-रिव, कुपिता रोषग्रसिता, ते तव, बुद्धिः मनीषा, मतिः, आत्मदोषम् आत्मनः स्वस्य, दोषम् अपराधं, न पश्यति, क्व कुत्र, महातपोभारवैवधिकता —महातपसः भारः तस्य वैवधिकता धारणत्वं क्व पुरोभागत्वम् परदोषदर्शिता।

शब्दार्थ—**साधुसेवितः**—सज्जनों के द्वारा आचरण किये जाने वाला, **परस्तात्**—आगे, **उद्दामप्रसूतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं**, उद्दण्ड इन्द्रिय रूपी घोड़ों से उठाई गई धूल (रजोगुण की ओर प्रवृत्ति), **अनक्षजिताम्**—चञ्चल इन्द्रियों वाले लोगों की दृष्टि को, **कृतबुद्धय**—शुद्ध एवं अकलुषितबुद्धि वाले; **निसर्गविरोधिनी**—स्वभाव से विरुद्ध आचरण करने वाली, **धर्मक्रोधयो-रेकत्रवृत्ति**—धर्म और रोष का एक स्थान पर रहना, **अपहाय**—छोड़ कर, **तमसि**—अज्ञान तथा अन्धकार में, **परदोषदर्शनदक्षा**—दूसरों के दोष देखने में निपुण, **आत्मदोषं**—अपने दोष को, **महातपोभारवैवधि-कता**—महातप के भार को वहन करना, **पुरोभागित्वं**—दूसरों के दोषों को देखना।

अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः। न हि कोपकलुषिता विमृशति मतिः कर्तव्यमकर्त्तव्यं वा। कुपितस्य प्रथममन्धका-रीभवति विद्या, ततो भृकुटी। आदाविन्द्रयाणि रागः समा-स्कन्दति, चरमं चक्षुः। आरम्भे तपो गलति पश्चात्स्वेदस-लिलम्। पूर्वमयशः स्फुरति, अनन्तरमधरः कथं लोकविना-शाय ते विषपादपस्येव जटावल्कलानि जातानि। अनुचिता

खल्वस्य मुनिवेषस्य हारयष्टिरिव वृत्तमुक्ता चित्तवृत्तिः । शैलूष इव वृथा वहसि कृत्रिममुपशमशून्येन चेतसा तापसाकल्पम् । अल्पमपि न ते पश्यामि कुशलजातम् । अनेनातिलघिम्नाद्याप्युपर्येव प्लवसे ज्ञानोदन्वतः । न खल्वनेडमूकाः एडा जडा वा सर्वे एते महर्षयः । रोषदोषनिषद्ये स्वहृदये निग्राह्ये किमर्थमसि निगृहीतवाननागसं सरस्वतीं । एतानि तान्यात्मप्रमादस्खलितवैलक्ष्याणि यैर्याप्यतां यात्यविदग्धो जनः । इत्युक्त्वा पुनराह ।

अर्थ—अत्यन्त क्रोधी स्वभाव वाला व्यक्ति आँख होते हुए भी अन्धा होता है अर्थात् कर्त्तव्याकर्त्तव्य को नहीं देख (जान) पाता है, क्योंकि क्रोध से कलुषित बुद्धि वाला कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विचार नहीं कर पाता है; क्रोधी स्वभाव वाले व्यक्ति की बुद्धि पहले अन्धकार में डूबती है फिर मोह में । सर्वप्रथम विषयासक्ति इन्द्रियों को प्रभावित करता है, फिर आँखों में रोग (लालिमा) उत्पन्न होती है, प्रथम तपस्या नष्ट होती है फिर स्वेदबिन्दु निकलते हैं, पहले निन्दा फैलती है, बाद में होठ स्फुरण होता है, विष वृक्ष के जटा वल्कल के समान तुम्हारे जटा वल्कल संसार के विनाश के लिये कैसे हो रहे हैं, सदाचरण हीन तुम्हारी यह चित्तवृत्ति मुनिवेप के लिये मुक्ताहार के समान उचित नहीं है अर्थात् तुम्हारा यह क्रोध व्यापार मुनिवेष के सर्वथा प्रतिकूल है । अशान्त हृदय वाले तुम नट के समान व्यर्थ ही इस बनावटी मुनिवेप को धारण किये हुए हो, इससे तुम्हारा किञ्चित भी कल्याण (होगा ऐसा मैं) नहीं देख रहा हूँ, इसी क्रोध की तुच्छता के कारण ज्ञान रूपी समुद्र के ऊपर ही ऊपर तैर रहे हो, ये सब (इस सभा में उपस्थित) महात्मागण कान से बहरे, आँख से अन्धे और मूर्ख नहीं हैं, क्रोध और बुराइयों से परिपूर्ण अपने हृदय को वश में न करके अपराध रहित सरस्वती को तुमने शाप कैसे दे दिया ? अपने आलस्य एवं अपराध को भूलने से लज्जा को प्राप्त होने का यही स्थान है, जिनसे मूर्ख व्यक्ति निन्दा को प्राप्त होते हैं (ब्रह्माजी दुर्वासा से इस प्रकार) कहकर फिर कहने लगे ।

संस्कृत-व्याख्या—अतिरोषेणः अतिक्रोधस्वभावः जनः पुरुषः, चक्षुष्मान्

सनयनः सम्भवि अन्ध एव लोचनरहित एव, भवति । कोपकलुषिता—कोपेन रोषेण कलुषिता दूषिता, मतिः मनीषा, बुद्धिः, कर्तव्यं कर्तुं योग्यं अकर्तव्यम् अकरणीयं, वा, नहि नैव, मिमृशति विचारयति, कुपितस्य रोषयुक्तस्य, प्रथमं पूर्वं, विद्या ज्ञानम् अन्धकारीभवति मोहपूर्णा भूत्वा नश्यतीतिः भावः, ततः तदनन्तरं भृकुटी विकृतिं प्राप्नोति आदौ पूर्वं, रागः विलासितानुरागः, इन्द्रियाणि दशेन्द्रियाणि, समास्कन्दति अभूय विषयेषु, समाकर्षति, चरम तदनन्तरं, चक्षुः लोचनं व्याप्नोति, पश्चात् ततः, स्वेदसलिलं घर्मजलं क्षरति, पूर्वम्, अयशः निन्दा, स्फुरति प्रसरति, पश्चात् अधरः ओष्ठः, स्फुरति, कथं कस्मात्, लोकविनाशाय—लोकस्य जगतः, विनाशाय नाशयितुं, विषपादपस्येव, ते विषवृक्षस्येव तव जटावल्कलानि जटा एव वल्कलानि, जातानि समुद्भूतानि ? अस्य मुनिवेषस्य ऋषिवेषस्य, अनुचिता उचितानास्ति, हारयष्टिरिव मुक्ताहार इव, वृत्तमुक्ता—वृत्तेन सदाचारेण, मुक्ता रहिता, चित्तवृत्तिः मनोव्यापारः । शैलूष इव नट इव, उपशमशून्येन अशान्तियुक्तेन, चेतसा हृदयेन, कृत्रिमम् अप्राकृतिकं, तापसाकल्पं महर्षिवेषं, वृथा व्यर्थं निष्फलं वहसि परिदधासि, ते दुर्वासमः, अल्पमपि किञ्चिदपि, कुशलजातं कल्याणं, न पश्यामि नावलोकयामि । अनेन, अतिलाघवेन, हृदयव्यवहारेण, अद्यापि अधुनाऽपि, ज्ञानोदन्वतः ज्ञान· सागरस्य, उपरि एव प्लवसे वर्तसे, एते सर्वे महर्षयः, न खलु नैव, अनेडमूकाः श्रोतुं वक्तुं च अशक्ताः, एडाः वधिराः, जडाः बुद्धिविहिताः, वा सन्ति । रोषदोषनिषद्ये—रोषः क्रोधः एव दोषः अवगुणः, तस्य निषद्या पूर्णरूपेण-स्थितिः, यस्मिन् तथाभूते, स्वहृदये स्वचित्ते, नियन्त्रणयोग्ये अनुशासितुं योग्येऽपि, किमर्थम्, अनागसम् । अपराधरहितां, सरस्वतीं विद्याधिष्ठात्रीं देवीं, निगृहीतवान् शापं दत्तवान् असि ? एतानि तानि आत्मप्रमादस्खलितवैलक्ष्याणि आत्मनः स्वस्य प्रमादस्य, स्खलितानि अपराधाः तेषां वैलक्ष्याणि लज्जितानि, यैः अविदग्धः मूढः जनः याप्यतां निन्दाम्, याति प्राप्नोति इत्युक्त्वा इत्यभिधाय (ब्रह्मा दुर्वासम्) पुनः भूयः, आह, उवाच ।

शब्दार्थ—अतिरोषेणः—अत्यन्त क्रोधी, चक्षुष्मान्—आँखों वाला, नहि—नहीं, कोपकलुषिता—क्रोध से दूषित, कुपितस्य—क्रोधयुक्त की, विद्या—ज्ञान, अन्धकारीभवति—नष्ट हो जाती है, ततो—उसके बाद, भृकुटी—भौंह में विकार । रागः—विषयासक्तिः, समास्कन्दति—आक्रान्त करता है,

तपोगलति—तपस्या नष्ट हो जाती है, अयशः स्फुरति—निन्दा फैलती है, विषपादपस्येव—विष वृक्ष के समान, मुनिवेषस्य—साधुवेश के लिए, वृत्तमुक्ता—सदाचार से रहित, हारयष्टिरिव—मुक्ताहार के समान, शैलूष इव—नट के समान, वहसि—धारण किए हुए हो, उपशमशून्येन—शान्तिरहित, चेतसा—हृदय से, तापसाकल्प—मुनि के वेष को धारण किए हुए हो, कृत्रिमं—बनावटी, अतिलघिम्ना—अत्यन्त तुच्छ स्वभाव से, अद्यापि—आज भी अब भी, ज्ञानोदन्वतः—ज्ञानरूपी सागर के, उपर्येव—ऊपर ही ऊपर, प्लवसे—तैर रहे हो, अनेमूडकाः—सुनने तथा कहने में असमर्थ, एडाः—बहरे, जडाः—मूर्ख, रोषदोषनिषण्णे—क्रोध रूपी दोष से ग्रसित, निग्राहये—रोकने योग्य, अनागसं—अपराध रहित, निगृहीतवान्—शाप दिया है, आत्मस्खलितवैलक्ष्याणि—अपने अपराध जन्य लज्जा के कार्य हैं, अविदग्धः—मूर्ख, याप्यतां—निन्दा को, याति—प्राप्त होता है।

'वत्से सरस्वती विषादं मा गाः। एषा त्वामनुयास्यति सावित्री। विनोदयिष्यति चास्मद्विरहदुःखिताम्। आत्मजमुखकमलावलोकनावधिश्च ते शापोऽयं भविष्यति इति। एतावदभिधाय विसर्जितसुरासुरमुनिमनुजमण्डलः ससम्भ्रमोपगतनारदस्कन्धविन्यस्तहस्तः समुचितान्हिककरणायोदतिष्ठत्। सरस्वत्यपि शप्ता किंचिदधोमुखी धवलकृष्णशारां कृष्णाजिनलेखामिव दृष्टिमुरसि पातयन्ती सुरभिनिश्वासपरिमललग्नैर्मूर्तैः शापाक्षरैरिव षटचरणचक्रैराकृष्यमाणा शापशोकशिथिलितहस्ताधोमुखीभूतेनोपदिश्यमानमर्त्यलोकावतरणमार्गेव नखमयूखजलाकेन नूपुरव्याहाराहूतैर्भवनकलहंसकलैर्ब्रह्मलोक निवासहृदयैरिवानुगम्यमाना समं सावित्र्या गृहमगात्।

अर्थ—बेटी सरस्वती दुःख मत करो, यह सावित्री भी तुम्हारे साथ (मर्त्यलोक) जायेगी और हमारे विरह से दुःखिनी तुम्हारा मनोरंजन करेगी, यह शाप पुत्र-मुख के देखने के समय तक ही रहेगा फिर यह तुम्हारा शाप नष्ट हो जायेगा। ऐसा कहकर देवता, राक्षस, मुनि, और मनुष्यों के मण्डल को विसर्जित करके सहसा प्रविष्ट हुए नारद के कन्धे पर हाथ रखे हुए (ब्रह्मा जी) दिन के उचित सन्ध्या वन्दन आदि (दैनिक) कार्य करने के लिये उठ खड़े हुए। शाप ग्रसित सरस्वती ने कुछ नीचे को मुख झुकाए हुए सावित्री के साथ

घर को प्रस्थान किया। उस समय सरस्वती की दशा का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है। कृष्ण चर्म की रेखा के समान, निर्मल और काली अपनी आँखों को अपने वक्षःस्थल पर डाले हुए थी, शरीरधारी शाप के वर्णों के समान भौंरे सरस्वती की सुगन्धित श्वास के साथ लगे हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानों उसे रोक रहे थे, शाप के शोक से सरस्वती के हाथ शिथिल (ढीले) पड़ गये थे, सरस्वती के पैरों के नाखून से निकलने वाली कान्ति नीचे की ओर फैलती हुई ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों उनको मृत्युलोक में अवतरित होने का रास्ता बता रही हो, ब्रह्मलोक में रहने वाले व्यक्तियों के हृदय में समान, सदनों के अन्दर रहने वाले अर्थात् पालतू हंस मानों सरस्वती के नूपुरों की ध्वनि से आमन्त्रित हुए उनका अनुगमन कर रहे हों।

संस्कृत-व्याख्या—वत्से ? पुत्रि ? सरस्वती शारदे ? विषादं दैन्यं, दुःखं मा गाः न लभस्व, एषा इयं सावित्री, त्वाम् अनुयास्यति अनुगमिस्यति, अस्मद् विरहदुःखिताम्—अस्माकं विरहेण वियोगेन दुःखितां त्वाम् विनोदयिष्यति शोकापनोदं करिष्यति च। ते तव अयं, शापः, आत्मजमुखकमलावलोकनावधिः-आत्मजस्य पुत्रस्य, मुखकमलं मुखसरोजं, तस्य अवलोकनं दर्शनमेव अवधिः यस्य सः अर्थात् दुर्वाससा दत्तोऽयं शापः पुत्र-मुखदर्शनसमय एव समाप्तिमेष्यति ॥ एतावत् इदम् अभिधाय उक्त्वा, विसर्जितसुरासुरमुनिमनुजमण्डलः–विसर्जितं प्रेषितं, सुराणां, देवानाम्, असुराणां, दैत्यानां, मुनिनां, मनुजानां, पुरुषाणां मण्डलं समूहः येन सः ससंभ्रमोपगतनारदस्कन्धविन्यस्तहस्तः—ससंभ्रमं यथा स्यात्तथा, उपगतः प्राप्तः, नारदः, तस्य स्कन्धे अंशे, विन्यस्तः स्थापितः हस्तः करः येनः स समुचिताह्निककरणाय समुचितं यत् आह्निकं दैनिकं स्नानसन्ध्या-वन्दनादिकम्, तस्य करणाय सम्पादनाय, उदतिष्ठत् आसनं विहाय गन्तुमुद्यतः अभवत्। सरस्वत्यपि शारदा अपि, शप्ता दुर्वाससा शापग्रसिता सती, किञ्चिद् अल्पम्, अधोमुखी, अवनतमुखी, कृष्णाजिनलेखामिव— कृष्णस्य कृष्णमृगविशेष-स्य यत् अजिनं मृगचर्म तस्य रेखा तामिव, धवलकृष्णधारां—धवलः श्वेतः कृष्णः श्यामवर्णः च तेन शारां शवलां, दृष्टिम्, उरसि स्ववक्षस्थलोपरि, पातयन्ती अक्षिपन्ती, सुरभिनिः=श्वासपरिमललग्नैः—सुरभिः सुगन्धिः य निःश्वासः तस्य परिमलेन सुरभिणा लग्नैः, मूर्तैः सदेहैः, शापपाक्षरैरिव शापवर्णैरिव षट्चरणचक्रैः षट्चरणानां भ्रमराणां, चक्रैः समूहैः आकृष्यमाणा प्रलोभ्यमाना,

शापशोकशिथिलितहस्ताधोमुखी = शापस्य शोकेन शिथिलितौ यौ हस्तौ पाणीं ताभ्यां अधोमुखीभूतेन अवनतमुखेन, नखमयूखजालेन = नखानां, मयूखानां किरणानां, जालकेन समूहेन, उपदिश्यमानमर्त्यलोकावतरणमार्गा इव, उपदिश्यमाः निर्वेद्यमानः मर्त्यलोके भूलोके, अवतरणस्य गमनस्य, मार्गः पन्थां, यस्याः सा तथाभूतेव, नूपुरव्याहाराहुतै = नूपुराणां पादाभूषणविशेषाणां, व्याहारैः, ध्वनिभिः, आहूतैः, आकृष्टैः भवनकलहंसकूलैः = भवनस्य सदनस्य, ये, कलहंसाः, राजहंसाः, तेषांसमूहैः पङ्क्तिभिः, ब्रह्मालोकनिवासिहृदयैरिव = ब्रह्मलोके निवासिनां प्राणिनां हृदयैरिव चित्तैरिव, अनुगम्यमाना सविश्रा समं सार्धंगृहम् अगात् अगमत् ।

शब्दार्थ — त्वामनुयास्यति = तुम्हारे साथ (मर्त्यलोक में) जायेगी । विनोदयिष्यति = मनोरञ्जन करेगी, आत्मजमुखकमलावलोकनावधिः = पुत्र-मुख के देखने के समय तक ही (तुम्हारे शाप की) अवधि होगी अर्थात् पुत्र-मुख देखते ही शाप समाप्त हो जायेगा और तुम पुनः देवलोक में आकर रहोगी । एतावत् = ऐसा, अभिधाय = कहकर, विसर्जितसुरासुरमुनिमनुज-मण्डलः = देवता, राक्षस, मुनि और मनुष्य के समूह को विदा करके, ससंभ्र-मोपगतनारदस्कन्धविनयस्तहस्तः = अत्यन्त तेजी से सहसा आये हुये नारद के कन्धे पर हाथ रखे हुये, समुचिताह्निककरणाय = यथायोग्य दैनिक संध्यावन्दन आदि कार्य करने के लिए, उदतिष्ठत् = उठ खड़े हुए । अधोमुखी = नीचे की ओर मुख किए हुए, धवलकृष्णशारां = निर्मल और कृष्ण वर्ण अतः चितकबरी, कृष्णाजिनलेखामिव = काले मृगचर्म की रेखा के समान, उरसि पातयन्ती = वक्षः स्थलपर डालती हुई, सुरभिनिःश्वासपरिमललग्नैः = सुगन्धित श्वास की सुगन्धि के साथ लगे हुए, मूर्तैः = शरीरधारी, शापाक्षरैरिव = शाप के अक्षरों के समान, षट्चरणचक्रैः = भौंरों के समूह से आकृष्यमाणा = पीछा की जाती हुई, शापशोकशिथिलितहस्ताधोमुखीभूतेन = शाप के दुःख से शिथिल हो रहे हैं हाथ जिसके ऐसी वह नीचे की ओर जाने वाले, नखयूय-खजालकेन = नाखूनों की किरणों के समूह से, उपदिश्यमानमर्त्यलोकावतरण-मार्गा = भूलोक में जाने के लिए रास्ते का उपदेश प्राप्त—करती हुई, नूपुर-व्याहाराहूतैः = पायजेब नामक पैर के आभूषण के शब्द से आमन्त्रित भवन,

कलहंसकुलैः—पालतू राजहंसों के समूह से, **ब्रह्मलोकनिवासिहृदयैरिव**—ब्रह्मलोक में निवास करने वाले प्राणियों के हृदयों के समान।

अत्रान्तरे सरस्वत्यवतरणवार्तामिव कथयितुं मध्यम लोकमवततारांशुमाली। क्रमेण च मन्दायमाने मुकलितबिसिनीविसरव्यसनविषण्णसरसि वासरे मधुमदमुदितकामिनीकोपकुटिलकटाक्षक्षिप्यमाण इव क्षेपीयः क्षितिधरशिखरमवतरति तरुणतरकपिलपनलोहिते लोकेकचक्षुषि भगवती, प्रस्नुतमुखामहेयीयूथक्षरत्क्षीरधाराधवलितेष्वासन्नचन्द्रोदयोद्दामक्षीरोदलहरीक्षालितेष्विव दिव्याश्रमोपशल्येष्वपराहप्रचारचलिते चामरिणि चामीकरतटलाडनरणिनरदने रदति सुरस्रवन्तीरोधांसि स्वैरपारावते प्रसृतानेकविद्याधराभिसारिका सहस्रचरणालक्तकरसानुलिप्त इव प्रकटयति च तारापथे पाटलताम्।

अर्थ—इसी मध्य में मानों सरस्वती देवी के भूलोक में अवतरण करने की बात को कहने के लिये सूर्य मध्यलोक (मर्त्यलोक) में उतरे अर्थात् सूर्योदय हो गया। (इधर भूलोक में सूर्योदय होने से ब्रह्मलोक में अन्धकार छा जाने से अर्थात् सायंकाल उपस्थित हो गया उसी का वर्णन निम्न प्रकार किया है। धीरे-धीरे कमलिनियों के संकुचित (बन्द) होने के दुःख से (ब्रह्मलोकस्थ) जलाशय दुःखित हो गये, और दिन का प्रकाश मन्द पड़ गया, मदिरा के मद से मस्त अर्थात् मदिरा से मतवाली रमणियों के कोप से तीक्ष्ण कटाक्षों के द्वारा मानों धकेले जाने पर अत्यन्त शीघ्रता से जवान बन्दर के मुख के समान लाल रंग वाले संसार के केवल (एकमात्र) नयन रूप भगवान् सूर्यदेव अस्ताचल की चोटी पर उतरने लगे। देवर्षियों के आश्रम के समीपवर्ती स्थान बहते हुये दूध के कारण गीले स्तनों वाली गायों के समूह से बहती हुई दूध की धाराओं से श्वेत हो रहे थे। मानों थोड़ी ही देर में निकलने वाले चन्द्र के कारण उमड़ते हुए क्षीर सागर की लहरों से धुल रहे हों। सायंकाल के समय घूमने के लिये निकला हुआ, चामर को लगाए हुए देवराज इन्द्र का ऐरावत हाथी सोने के किनारों पर अपने दांतों के ताडन से शब्द करता हुआ, स्वतन्त्र आचरण करता हुआ, मन्दाकिनी के तटों को खोदने लगा। इधर-

उधर भ्रमण करने वाले हजारों विद्याधरों की अभिसारिकाओं के पैरों में लगे हुए आलता के रंग से ही व्याप्त आकाश मानों सफेद और लाल रंग का होने लगा हो।

संस्कृत-व्याख्या—अत्रान्तरे अस्मिन्नेव अवसरे, सरस्वत्यवतरणवातमिव—सरस्वत्याः शारदायाः, अवतरणस्य भूलोकगमनस्य, वार्ता समाचारं कथयितुमिव, अंशुमाली रविः, मध्यमं लोकं मर्त्यलोकम् अवततार अवातरत्। क्रमेण च क्रमशः शनैः शनैः मुकुलितविसनीविसिरव्यसनविषण्णसरसि—मुकुलितानां मुद्रितानां विसीनीनां कमलिनीनां, बिसरस्य समुदागस्य, व्यसनेन दुःखेन, विषण्णं मलिनं, सरः जलाशयः, यस्मिन् सः तस्मिन् वासरे दिने, मन्दायमाने कान्तिरहिते सति, मधुमदमुदितकामिनीकोपकुटिलकटाक्षक्षिप्यमाण इव—मधुमदेन मदिरामदेन मुदिताः आनन्दपूर्णाः, या कामिन्यः रमण्य, तासां कोपेन रोषेण, कुटिलाः, कटाक्षाः तैः क्षिप्यमाणः इव निपात्यमान इव, क्षेपीयः वेगवान् क्षितिधरशिखरं क्षितिं धरन्तीति क्षितिधराः पर्वताः तेषां शिखरम् अस्ताचलशिखिरमित्यर्थः अवतरति प्राप्ते सति, तरुणतरकपिलपनलोहिते—तरुणतराः ये कपयः वानराः तेषां, लपनानि आननानि, तद्वत् लोहिते शोणितवर्णे, भगवती एश्वर्यशालिनि, लोकैकचक्षुषि—लोकानां सकलप्राणिनाम्, एकं केवलं, चक्षुः नयनम् एवम्भूते रवौ, प्रस्नुतमुखमाहेयीयूथक्षरत्क्षीरधाराबलितेषु—प्रस्नुतम् आर्द्रीभूतं मुखम् यस्याः सा, तथाभूता, या माहेयी धेनुः, तासां धेनूनां, यूथेभ्यः समूहेभ्यः, क्षरन्ती निपतन्ती या क्षीरधारा, तया धवलितेषु श्वेतवर्णेषु, आसन्नचन्द्रोदयोद्दामक्षीरोदलहरीक्षालितेषु—आसन्नः समीपवर्ती, यः चन्द्रोदयः, तेन, उद्दामः वृद्धि प्राप्तः यः, क्षीरोदः दुग्धसागरः, तस्य क्षीरसागरस्य, लहरीभिः तरङ्गैः क्षालितेषु, इव, दिव्याश्रमोपशल्येषु—दिव्यानाम् देवानाम्, आश्रमाणाम्, उपशल्येषु समीपस्थप्रदेशेषु, अपराह्णप्रचारचलिते—अपराह्णे सायंकाले यः, प्रचारः भ्रमण, तस्मै, भ्रमितुम्, चलिते प्रस्थिते सति, चामरिणि चामरधारिणि, चामीकरतटताडानरणितरदने—चामीकरतटेषु हेतमयतटेषु, ताडनेन, रणिताः ध्वनिताः, रदनाः दन्ताः, यस्य तथाभूते स्वरं स्वच्छन्दं यथास्यात्तथा सुरस्रवन्तीरोधांसि—सुरस्रवन्त्याः देवगङ्गायाः, रोधांसि तटानि, रदति खनति सति, ऐरावते इभराजे, [illegible] करसा-

नुलिप्त इव—प्रसृताः प्रस्थिताः, अनेकाः वह्वयः, विद्याधराभिसारिकाः—विद्याधराणाम् अभिसारिकाः तासाम् अभिसारिकाणाम् सहस्रं तस्य चरणालक्तकरसेन—चरणानाम् यः आलक्तरसः तेन आलक्तवर्णेन, अनुलिप्त इव अनुरञ्जित इव, तारापथे आकाशे, पाटलतां श्वेतरक्तवर्णं, प्रकटयति सति।

शब्दार्थ—अत्रान्तरे—इसी मध्य, सरस्वत्यवतरणवार्ता—सरस्वती के भूलोक में जाने के समाचार को, कथयितुं—कहने के लिये, अवततार—उतर गया, अंशुमाली—सूर्य, मन्दायमाने—कान्ति रहित होने पर, मुकुलितबिसिनीबिसरव्यसनविषाणसरसि—बन्द हुई कमलिनियों के समूह के दु;ख से तालाब के दुःखी होने पर, (बिसिनी—कमलिनी), बिसर—समूह, व्यसन—दुःख, विषाणा—दुखी मधुमद—मदिरा के नशे से, मुदित—प्रसन्न, कामिनीकोपकुटिलकटाक्षक्षिप्यमाण इव—रमणियों के क्रोध से कुटिल कटाक्षों से गिराये हुये मानों, क्षेपीयः—जल्दी से, क्षितिधरम्—अस्ताचल की चोटी पर, अवतरति—उतरने पर, तरुणतर—जवान, कपि—वानर, लपन—मुख के समान, लोहिते—लाल होने पर, भगवति—ऐश्वर्यशाली, लोकैकचक्षुषि—समस्त संसार का एकमात्र नेत्र, प्रस्नुतमुख—प्रसन्नमुख, माहेयी—गायों के, यूथ—समूह से, क्षरत्—वहते हुये, क्षीरधारा—दूध की धार से, धवलितेषु—श्वेत वर्ण होने पर, आसन्न—समीपवर्ती, चन्द्रोदय—चन्द्रमा के निकलने से, उद्दाम—वढ़े हुये, क्षीरोद—क्षीरसागर की, लहरीक्षालितेषु—लहरों से ही मानों धुला हुआ, दिव्याश्रमोपशल्येषु—दिव्य आश्रमों के समीपस्थ प्रदेशों में, अपराह्णप्रचारचलिते—सायंकाल के समय भ्रमण करने के लिये निकलने पर, चामरिणि—चँवर से सुशोभित, चामीकरतटनाडनरणितरदने—स्वर्णनिर्मित किनारों पर ताडन से उत्पन्न शब्द से पूर्ण दाँतों वाले, स्वैरं—स्वच्छ, सुरस्रवन्तीरोधांसि—देवगंगा के किनारों को, रदति—खोदने पर, प्रसृतानेकविद्याधराभिसारिकासहस्रचरणालक्तकरसानुलिप्त इव—इधर-उधर भ्रमण करने वाले विद्याधर जाति विशेष के देवताओं की हजारों अभिसारिकाओं के पैरों में लगे हुये आलता के रंग के लिप्त हो जाने पर, पाटलतां—लालपन, को त रापते—आकाश के, प्रकटयति—प्रकटति करने पर।

तारापथप्रस्थितसिद्धदत्तदिनकरास्तसमयार्घ्यावर्जिते रंजितककुभि कुसुम्भभासि स्रवति पिनाकिप्रणतिमुदितसन्ध्यास्वेदसलिल इव रक्तचन्दनद्रवे, वन्दारुमुनिवृन्दारकवृन्दबध्यमानसंध्यांजलिवने, ब्रह्मोत्पत्तिकमलसेवागतसकलकमलाकर इव राजति ब्रह्मलोके, समुच्चारिततृतीयसवनब्रह्मणि ब्रह्मणि, ज्वलितवैतानज्वलनज्वालाजटालाजिरेष्वारब्धधर्मसाधनशिविरनीराजनेष्विव सप्तर्षिमन्दिरेष्वघमर्षणमुषितकिल्विषविषगदोल्लाघलघुषु यतिषु सध्योपासनासीनतपस्विपंक्तिपूतपुलिने प्लवमाननलिनयोनिमानहंसहासदन्तुरितोर्मिणि मन्दाकिनीजले, जलदेवतातपत्रे पत्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे निजमधुरामोदिनि कृतमधुपमुदि मुमुदितमाणे कुमुदवने दिवसावसानताम्यत्तामरसमधुरमधुपीतिप्रीते सुषुप्सति प्रीते सुषुप्सति मृदुमृणालकाण्डकण्डूयनकुण्डलितकन्धरे धुतपक्षराजिवीजितराजीवसरसि राजहंसयूथे तटलताकुसुमधूलधूसरिसरिति सिद्धपुरन्ध्रिधम्मिल्लमल्लिकागन्धग्राहिणि सायन्तने तनीयसि निशानिश्वासनिभे नभस्वति।

अर्थ—आकाश मार्ग में प्रस्थान करने वाले सिद्ध पुरुषों के द्वारा दिये गये, सूर्यास्त के समय के अर्घ्य (लाल चन्दन मिश्रित जल से) व्याप्त दिशाएं रक्त वर्ण हो गईं। कुसुम्भ नामक फूल के समान लाल कान्ति वाला लाल चन्दन शंकर जी के द्वारा की हुई प्रणतियों से प्रसन्न संध्या के स्वेद बिन्दुओं के समान टपकने लगा। नमन क्रिया में कुशल मुनि और देवगण अञ्जलि बांधे हुए पूजा कर रहे थे, जिससे ब्रह्मलोक ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों जिस कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए थे उस कमल की उपासना करने के लिए बहुत से कमल आये हों, ब्रह्मा जी सायंकाल के समय किए जाने वाले हवन के मन्त्रों को उच्चारण करने लगे। धर्म के साधन शिविरों (डेरों) में नीराजन (आरती) के समान सप्तर्षियों के भवनों में यज्ञ सम्बन्धी अग्नि की ज्वालाएं

प्रज्वलित हो उठीं। अघमर्षण नामक मन्त्र विशेष के जप करने से पापरूपी रोगों को नष्ट हो जाने से मुनियों की अन्तरात्माएं स्वच्छ अर्थात् हल्की होने लगीं। सन्ध्या वन्दन करने के लिये बैठे हुए मुनियों के समूह से गंगा जी का किनारा पवित्र हो गया, और ब्रह्मा जी की सवारी के हंसों के जल में तैरने से गंगा जी का जल सुशोभित होने लगा। जल के देवता अर्थात् वरुण का छत्र-रूप, पक्षियों और उनकी स्त्रियों के अन्तःपुर का प्रासाद तथा अपने पुष्प पराग से सुरभित और भौरों को प्रसन्न करने वाला कुमुद के फूलों का वन खिलने लगा। दिन के समाप्त होने के कारण बंद हुए कमलों के सुन्दर पुष्प पराग के पान से प्रफुल्लित (प्रसन्न) कोमल नाल से शरीर के अंगों का घर्षण करने के लिये बगले के समान गर्दन वाले और काँपते हुए पंखों के द्वारा जलाशयों के कमल समूह को कँपाने वाले हंस आवास स्थान की ओर जाने की इच्छा करने लगे। किनारे पर लगी हुई लताओं के फूलों की पराग से (धूलि से) नदी को मलिन बनाने वाली और सिद्ध रमणियों के केशपाश में लगे हुए फूलों की सुगन्धि को ग्रहण करने वाली रात्री के श्वास के समान सायंकाल में धीरे-धीरे वायु चलने लगी।

संस्कृत-व्याख्या—तारापथप्रस्थितसिद्धदत्तदिनकरास्तसमयार्घ्यावर्जिते= तारापथे नभसि, प्रस्थिता, ये, सिद्धाः तैः, दत्तानि, दिनकराय सूर्याय, अस्तसमये, अर्घ्याणि जलानि, तैः, आवर्जिते व्याप्ते रञ्जितककुभि रक्तवर्णी-कृताशायाम, कुसुम्भभासि कुसुम्भपुष्पमिव कान्तिमति, रक्तचन्दनद्रवे, पिनाकि-प्रणतिमुदितसन्ध्यास्वेदसलिल इव=पिनाकिनः शिवस्य या प्रणतिः प्रणामः, तथा मुदिता प्रसन्ना, या सन्ध्या सायंकालः, तस्याः, स्वेदसलिल इव श्रमजल इव, स्रवति प्रवहति, वन्दारुमुनिवृन्दारकवृन्दवध्यमानसन्ध्याञ्जलिवने= वन्दारवः प्रणतस्वभावाः, ये मुनयः महात्मानः, वृन्दारकाः सुराः, तेषां, वृन्दैः समूहैः, वध्यमानं, सन्ध्याञ्जलिवनं=संध्यायाम् अञ्जलीनां हस्ताञ्जलीनां वनम् समूहः यस्मिन् तस्मिन्, राजति शोभामादधति, ब्रह्मलोके, समुच्चारित-तृतीयसवनब्रह्मणि=समुच्चारितम् उच्चस्वरेणाधीतं, तृतीयसवने सायंकाल भाविनि यज्ञे, ब्रह्म वेदमन्त्रः येन सः तस्मिन् ब्रह्मणि विरञ्चौ, विधातरि, ज्वलितवैतानज्वलनज्वालाजटालाजिरेषु ज्वलितः प्रज्वलितः यो वैतानस्य यज्ञसम्बन्धिनः ज्वलनः अनलः, तस्य ज्वालया जटालानि जटाभारयुक्तानि, अजिराणि, अङ्गणानि येषु, तेषु आरब्धधर्मसाधनशिबिरतीरजनेषु=

प्रारब्धानि, धर्मस्य, साधनानि, यानि, शिविराणि पटमण्डपानि पटसदानि, तेषु यानि, नीराजनानि नीराजनेति प्रसिद्धशान्तिकर्माणि, येषु तथाभूतेषु इव, सप्तर्षिमन्दिरेषु = सप्तर्षीणां, मन्दिरेषु भवनेषु, अघमर्षणमुषित किल्विष-विषगदोल्लाघलघुषु — अघमर्षणेन इत्याख्यप्रसिद्धेन मन्त्रेण, मुषितं नाशितं, किल्विषमेव पापमेव, विषगदः विषजन्यरोगः, तेन उल्लाघः आरोग्यहेतुः, तेन, लघुषु निर्मलहृदयेषु, यतिषु मुनिषु, सन्ध्योपासनासीनतपस्विपङ्क्तिपूतपुलिने — सन्ध्योपासनार्थं सन्ध्यावन्दनार्थम्, आसीनाः उपदिष्टा, या तपस्विपङ्क्तिः मुनि-पङ्क्ति तया, पूतं पावनं पुलिन तटं, यस्मिन् तस्मिन्। प्लवमाननलिनयोनि-यानहंस हास दन्तुरितोर्मिण = प्लवमानंतरन्तः, नलिनं कमलं, योनिः उत्पत्ति स्थानं, यस्य सः तस्य विधातुः, यानानि वाहनानि हंसाः, तेषां हंसानां, हासेन, दन्तुरिता, उच्चावचा, ऊर्मयः तरङ्गा, यस्य सः तस्मिन्, मन्दाकिनीजले = मन्दाकिन्याः गंगायाः, जले सलिले, जलदेवतातपत्रे = जलदेवतायाः वरुणस्य, आतपत्रे छत्रभूते, पत्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे = पत्ररथानां खगानां, कुलकल-त्राणां कुलङ्गनानाम्, अन्तःपुरस्य सौधे प्रासादे, निजमधुरामोदिनि = निजः, मधुरामोदः मधुरगन्धः, तद्वत् आमोदिनी, कृतमधुरामुदि = कृता रचिता मधु-पानां भ्रमराणां, मुद् अनुरागः, यस्मात् तथाभूते, कुमुदवने कुमुदाख्यपुष्पसमूहे, मुमुदिषमाणे प्रफुल्लिते, दिवसावसानताम्यत्तामरसमधुरमधुसपीतिप्रीते = दिवसस्य दिनस्य, अवसाने समाप्तौ, सायंकाले, ताम्यन्ति मलिनानि यानि, तामरसानि पङ्कजानि तेषां कमलानां, मधुरस्य, मनोहरस्य, मधुनः परागस्य, मदिरायाश्च, सपीतिः सहपानं, तेन सहपानेन प्रीते प्रमुदिते, मृदुमृणालकाण्डूयन-कण्डलितकन्धरे = मृदुना कोमलेन मृणालकाण्डेन बिसतन्तुना, कण्डूयनं खजंन, तेन, कुण्डलिता मण्डलीकृता, कन्धरा ग्रीवा, यस्य तथाभूते, धुतपक्षराजिवीजित-राजीवसरसि धुता वेपिता या पक्षराजिः पक्षपङ्क्तिः, तया वीजित राजीवानां पङ्कजानां, सरो, येन, तादृशे सरसि जलाशये, राजहंसयूथे राजहंससमुदाये सुषप्सति निद्रामभिलषति, तटलताकुसुमधूलिधूसरितसरिति = तटलतानां तटस्थितवल्लरीणां, कुसुमानां प्रसूनाना, धूलिभिः मकरन्दैः, धूसरिता मलिनीकृता सरित् नदी, येन सः तस्मिन्, सिद्धपुरन्ध्रिधम्मिल्लमल्लिकागन्ध-ग्राहिणि = सिद्धपुरन्ध्रीणां सिद्धाङ्गनानां, धम्मिल्लेषु केशपाशेषु, मल्लिकाः मालतीकुसुमानि, तासां, गन्धः गृह्णातीति तथाभूते, सायतने सायंकाले,

तनीयसि मन्दं मन्दं, निशानिःश्वासनिभे = निशायारात्रेः, निःश्वासस्य मुखश्वासस्य, निभे तुल्ये, नभस्वति पवने (प्रवहति सति) ।

शब्दार्थ – तारापथ = गगनमार्ग में, प्रस्थित = प्रस्थान करने वाले, सिद्धदत्तदिनकरास्तसमयार्घ्यावर्जित = सिद्धपुरुषों के द्वारा दिये हुए सूर्य छिपने के समय के अर्घ्य से युक्त, रञ्जितककुभि = दिशाओं के रक्तवर्ण हो जाने पर, कुसुम्भभासि = कुसुम्भ के कुसुम के रंग के समान चमकने वाले, पिनाकिप्रणतिमुदितसन्ध्यास्वेदसलिल इव = शङ्कर जी के द्वारा की गई प्रणतियों (अभिवादनों) से प्रसन्न सन्ध्या के स्वेदजल के समान, रक्तचन्दनद्रवे = लाल चन्दन के जल के, स्रवति = झरने पर, वन्दारु = विनम्र स्वभाव वाले अथवा नमन स्वभाव वाले, मुनिवृन्दारकवृन्दवध्यमानसध्याञ्जलिवने = मुनियों, देवताओं के समूह के द्वारा सन्ध्याकाल में अञ्जलियाँ बाँधकर उपासना करने पर, ब्रह्मोत्पत्तिकमलसेवागतसकलकमलाकर इव = ब्रह्मा की उत्पत्ति (जन्म) का स्थान जो कमल, उस कमल की आराधना करने के लिये आये हुए कमलों के संमूह के, राजति = सुशोभित होने पर, समुच्चारिततृतीयसवनकर्मणि = सायं काल के हवन में वेदमन्त्रों का उच्चारण (पाठ) करने पर, ब्रह्मणि = विरञ्चि के, ज्वलितवैतानज्वलनज्वालाजटालाजिरेषु = जलती हुई यज्ञ की अग्निज्वाला से युक्त सप्तर्षियों के गृह प्रांगणों में, आरब्धधर्मसाधनशिविरनीराजनेषु इव = धर्म के (पटमण्डपों = डेरों) में नीराजन के प्रारम्भ होने पर, अधमर्षणमुषितकिल्विषविषगदोल्लाघलघुषु = अधमर्षण नामक विशेष वेदमन्त्रों के उच्चारण करने से पाप रूपी रोगों के नष्ट हो जाने से, मुनियों की आत्मा के हल्के हो जाने पर, सन्ध्योपासनासीनतपस्विपङ्क्तिपूतपुलिने = सन्ध्या वन्दन करने के लिए बैठे हुए तपस्वियों की पंक्ति से पवित्र किनारे वाले, प्लवमाननलिनयोनियानहंसहासदन्तुरितोर्मिणि = ब्रह्मा की सवारी के हंसों के तैरने से ऊंची नीची लहरों से युक्त गंगा जी के जल के सुशोभित होने पर, जलदेवतातपत्रे = जल देवता (वरुण) के आतपत्ररूप (छत्ररूप), पत्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे = पक्षियों और उनकी स्त्रियों के अन्तःपुर के प्रासाद के, निजमधुरामोदिनि = अपने कुसुमपराग से सुरभित, कृतमधुपमुदि = भौंरों को प्रसन्न करने वाले, कुमुदवने = कुमुद नामक पुष्पों के समूह के, मुमुदिषमाणे = खिलने पर, दिवसावसानताम्यत्तामरसमधुरमधुसपीतिप्रीतेषु = सायंकाल के समय मलिन (बन्द) हुए कमलों की मधुर पराग के पान से प्रसन्न, सुषुप्सति = सोने की इच्छा करने अर्थात् सो जाने

पर, मृदुमृणालकाण्डकण्डूयनकुण्डलितकन्धरे--कोमल कमलनाल से शरीर को खुजलाने के लिए कन्धों को मोड़ने पर, धुतपक्षराजिवीजितराजीवसरसि= कांपते हुए पंखों के द्वारा अर्थात् पंखों की हवा से कमलों को कम्पित करने वाली तटलताकुसुमधूलिधूसरितसरिति=गंगा के तट पर उगी हुई लताओं के पुष्प पराग की धूल से नदी किनारे को मलिन करने वाली, सिद्धपुरन्ध्रिधम्मिल्लमल्लिकागन्धग्राहिणि=सिद्धजनों की रमणियों के केशपाश में लगे हुए फूलों की सुगन्धि को ग्रहण करने वाली, सायन्तने=शाम के समय, तनीयसि= मन्द-मन्द, निशानिःश्वासनिभे=रात के (मुख की) श्वास के समान, नभस्वति =वायु के चलने पर।

संकोचोदंचदुच्चकेसरकोटिसंकटकुशेशयकोशकोटरकुटीशायिनि षट्चरणचक्रे नृत्योद्धतधूर्जटिजटाटवीकुटजकुड्मलनिकरनिभे नभस्तलं स्तवकयति तारागण संध्यानुबन्धताम्रे परिणमत्तालफलत्वक्त्विषि कालमेघमेदुरे मेदिनीं मीलयति नववयसि तमसि तरुणतरतिमिरपटलपाटनपटीयसि समुन्मिषति यामिनीकामिनीकर्णपूरचम्पककलिकाकदम्बके प्रदीपप्रकरे प्रतनुतुहिनकिरणलावण्यालोकपाण्डुन्याश्याननीलनीरमुक्तकालिन्दीकुलबालपुलिनायमाने शातक्रतवे कृशयति तिमिरमाशमुखे खमुचिमेचकितविकुंचितकुवलयसरसि शशधरकरनिकरकचग्रहाविले विलीयमाने मानिनीमनसीव सवरीशबरीचिकुरचये चाषपक्षत्विषि तमस्युदिते, भगवत्युदयगिरिशिखरकटककुहरहरिखरनखरनिवहहेतिनिहतनिजहरिणगलितरुधिरनिचयनिचितमिव लोहितं वपुरुदयरागधरमधरमिव विभावरीवध्वा धारयति श्वेतभानौ अचलद्रुतचन्द्रकान्तजरधाराधौत इव ध्वस्ते ध्वान्ते, गोलोकगलितदुग्धविसरवादिनि दन्तमयकरमुखमहाप्रणाल इवापूरयितुं प्रवृत्ते पयोधिमिन्दुमण्डले, स्पष्टे

प्रदोषसमये सावित्री शून्यहृदयामिव किमपि ध्यावन्ती सास्रां सरस्वतीमवादीत्—

अर्थ—बन्द हो जाने के कारण ऊपर एकत्रित हुई ऊंची-नीची पराग के अग्र-भाग से बन्द हुए कमल के मध्यभाग रूपी कुटी के अन्दर भ्रमर समूह के सो जाने पर, नृत्य करने के कारण शंकर जी के ऊपर फैले हुए जटारूपी वन में वनमालती के फूलों के समान नक्षत्रों के गुच्छों के निकालने पर, सायंकाल की लालिमा के कारण पके हुए तालफल की तरह लालवर्ण वाले, प्रलयकाल के (काले) बादलों के समान काले तथा नवीन अन्धकार से पृथ्वी के व्याप्त होने पर, नवीन अन्धकार को दूर करने में समर्थ और रात्रिरूपी रमणी के कान में धारण की हुई चम्पा पुष्प की कलिका समूह के समान दीपक पङ्क्तियों के प्रज्वलित हो जाने पर, थोड़ा सा निकले हुये चन्द्रमा की किरणों में प्रकाश से सफेद सूखे तथा नीलवर्ण वाले जल रहित यमुनातट के समान सुशोभित इन्द्र की दिशा में (अर्थात् पूर्व की दिशा में) अन्धकार के क्षीण होने पर, गगन मंडल का परित्याग करके पृथ्वी में व्याप्त खिले हुए नील कमलों से युक्त जलाशयों को और अधिक नीला करने वाली चन्द्र की किरणों के द्वारा केश-पाश खींचने से मलिन और मानिनी रमणियों के हृदय में ही मानों रात में (इधर-उधर) घूमने वाली भीलिनियों के बालों में छिपने वाले नीलकण्ठ नामक पक्षी के पंखों के समान कान्ति वाले अन्धकार के व्याप्त होने पर, उदयाचल की चोटी रूपी शिविर में (डेरे में) रहने वाले सिंहों के तेज नाखून रूपी अस्त्रों से घायल मृग के गिरते हुए रुधिर से ही मानों युक्त और रात्रि-रूपी नायिका के अधरोष्ठ के समान उदय होने के समय की लालिमा से सुशोभित चन्द्र के लाल होने पर, उदयचल से गिरती हुई चन्द्रकान्त मणियों की जलधार से धुलने के कारण ही मानों अन्धकार के विलीन होने पर, किरणों से गिरने वाले दूध के समूह को धारण करने वाले और हाथी के दाँत से निर्मित मगर के मुंह रूपी जल निकलने वाले रास्ते के समान सुशोभित चन्द्रमण्डल के (दर्शन) द्वारा सागर के बढ़ाने पर, (इस प्रकार) प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट (उपस्थित) सन्ध्या समय सावित्री ने (विचार) शून्य हृदय वाली तथा चिन्तातुर आँसुओं से पूर्ण मुख वाली सरस्वती से कहा।

संस्कृत-व्याख्या—संकोचोदञ्चदुच्चकेसरकोटिकुशेशयकोशकुटीशायिनि= संकोचेन मुद्रितेन, उदञ्चन्ती उत्तिष्ठन्ती, या, उच्चा उन्नता, केसरस्य

परागस्य, कोटिः अग्रभागः, तया, संकटः, यः, कुशेशयकोशः पद्मकलिका, तस्य, कोटरम् आभ्यन्तरभागः, तदेव. कुटी, तस्यां, शायिनि सुप्ते, षट्चरणचक्रे=षट्चरणानां भ्रमराणां चक्र समूहः, तस्मिन्, नृत्तोद्धूतधूर्जटिजटाटवीकुटजकुड्मलनिकरनिभे=नृत्ते लास्ये, उद्धूता=उपरिनिक्षिप्ता, या, धूर्जटेः शङ्करस्य, जटा एवं, अटवी कानन, तत्र, यानि, कुड्मलानि कलिकाः, तेषां, निकरः समुदायः, तन्निभे=तद्वत्कान्तिमति, नभस्तलम् गगनं, स्तवकयति गुच्छवदाचरति, तारागणे नक्षत्रनिकरे, सन्ध्यानुबन्धताम्रे=सन्ध्यायाः अनुबन्धेन सम्पर्केण, ताम्रे शोणितवर्णे, परिणमत्तालफलत्वक्त्विषि=परिणमन्ति परिपक्वाणि, यानि, तालफलानि, तेषां, त्वक् चर्म, तद्वत् त्विट् प्रभा, कान्तिः यस्य सः तस्मिन् कालमेघमेदुरे+कालस्य प्रलयकालस्य, मेघ इव जलद इव मेदुरे सान्द्रे, मेदिनीं धरां, मीलयति: आच्छादयति, तमसि अन्धकारे, तरुणतरतिमिरपटलपाटनपटीयसि=तरुणतरः नूतनः, यः, तिमिरपटलः अन्धकार समुदायः, तस्य, पाटने उन्मीलने, पटीयसि दक्षे, समर्थे, समुन्मिषति प्रज्वलिते सति, यामिनीकामिनीकर्णपूरचम्पककलिकाकदम्बके=यामिनी निशा, एव कामिनी नायिका, तस्याः कर्णपूरस्य कर्णभूषणस्य, चम्पकस्य एतन्नामकस्य=पुष्पस्य, कलिका, तस्याः कदम्बके समूहे, प्रदीपप्रकरे=प्रदीपानां प्रकरे समूहे प्रतनुतुहिनकिरणलावण्यालोक-पाण्डुनि=प्रतनव स्वल्पाः, ये तुहिनकिरणस्य शशिनः किरणाः रश्मयः तेषां लावण्यं सौन्दर्यं, तस्य आलोकेन प्रभया, पाण्डुनि शुभ्रवर्णे आश्यानतीलनीरमुक्तकालिन्दी कूलवालपुलिनायमाने=आश्यानं किञ्चित्, शुष्कं नीलं नीलवर्णं, यत् नीरं वारि, तेन, मुक्तं, कालिन्दीकूलस्य यमुनातटस्य, वालपुलिनं वनोत्पन्नं संकतं, तद्वच आचरति व्याहरतिसति, शातक्रतवे=ऐन्द्रे आशामुखे पूर्वं दिग्भागे, निमिरम् अन्धकारः, क्षयति अल्पीभवति, खमुचिमेचकितविचकितकुवलयसरसि=खमुचि परित्यक्तनभसि, मेचकित नीलतां प्राप्तं, विचकितानां प्रफुल्लानां, कुवलयानां नीलकमलानां, सर जलाशयः, येन सः तस्मिन्, शशधरकरनिकरकचग्रहाविले=शशधरस्य शशिनः, करनिकरः किरणसमूहः, तेन, यः कचग्रहः बालाकर्षणं, तेन आविले मलिनतां प्राप्ते, शर्वरीशबरी चिकुरचये=शर्वरी रात्रिः एव शबरी तस्याः चिकुराणाम् कुन्तलानां, चयः, समूहः तस्मिन् चापपक्षत्विषि चाषस्य नीलकण्ठनाम्नः पक्षिणः पक्ष इव त्विट प्रभा यस्य तत्र तस्मिन्, वमति विभिन्ने अन्धकारे, उदिते उदयं गते सति, उदयगिरि-शिखरकटककुहरहरिखरनखरनिवहहेति-

निहतनिजहरिण-गलितरुधिरनिचयनिचितमिव = उदयगिरेः उदयाचलस्य, शिखरमेव कटकं, शिविरं, तस्य, कुहरे कन्दरायां, यः हरिः सिंहः, तस्त, खराः निशिताः, ये नखराणां नखानां, समूहाः, निकराः, एव हेतिः शस्त्रं, [तया निहितः घातितः, निजहरिणः स्वमृगः, तस्यात्, गलितः क्षरितः, रुधिरस्य रक्तस्य निचयः निकरः, तेन, निचितं युक्तम्, इव, शरीरम्, विभावरीवध्वाः निशाकामिन्याः उदयरागधरम् उदये उदयकाले यः रागः लालिमा, तस्य धरं दधानम्, अधरमिव ओष्ठमिव, लोहितं शोणितवर्णं वपुः शरीरं धारयति विराजमाने, श्वेतभानौ शशिनि, अचलद्रुतचन्द्रकान्तजलधाराधौत इव=अचले उदयपर्वते, द्रुतः द्रवीभूतः यः चन्द्रकान्तमणिः तस्य जलधाराभिः धौते निर्मलीभूते इव, ध्वस्ते समाप्ते, ध्व न्ते तमसि, गोलोकगलितदुग्धविसरवाहिनी– गोलोकात् किरणसमूहात् गलितं स्रवत् दुग्धं पयः, तस्य विसरः निकरः, तं वहतीनि वाहिनि धारिणि, दन्तमयमकरमुखमहाप्रणाल इव=दन्तमयः गज-दन्तनिर्मितः यो मकरः ग्राहः तस्य मुखमिव मुखम् अग्रभागं, यस्य सः तथाभूतः महाप्रणालः जलनिर्गमनपथः तस्मिन्, पयोधिसागरं, आपूरयितुं वृद्धिं प्रापयितुं, प्रवृत्ते संलग्ने, इन्दुमण्डले चन्द्रमण्डले, स्पष्टे, प्रदोषसमये, सायंकाले, सावित्री, शून्यहृदयामिव किंकर्तव्यविमूढामिव किमपि ध्यायन्तीं विचार्यमाणां, साऽस्राम अश्रुपूर्णां सरस्वतीं शारदाम्, अवादीत्, प्राह ।

शब्दार्थ—संकोचोदञ्चदुच्चकेसरकोटिसङ्कटकुशेशयकोशकोटरकुटीशयिनी— कमलों के बन्द हो जाने के कारण ऊपर की ओर एकत्रित होती हुई पराग के अग्रभाग से बन्द हुये कमल के मध्यभाग रूपी कुटी के अन्दर (भौरों के) सो जाने पर, **षट्चरणचक्रे**=भौरों के, **नृत्तोद्धतधूर्जटिजटाटवीकुटजकुड्मल-निकरनिभे**=नृत्य के समय शंकर की (इधर उधर) बिखरी हुई जटारूपी वन में लगे हुये कुटज के फूलों के समान, **स्तवकयतिनक्षत्रे**=नक्षत्र समूह के आकाश में निकल आने पर, **सन्ध्यानुबन्धताम्रे**=सायकाल के समय रक्तवर्ण हो जाने पर, **परिणमत्तालफलत्वक्त्विषि**=पके हुए तालफल की छाल के समान कान्ति वाले, **कालमेघमदुरे**=प्रलयकाल के बादलों के समान सघन, **नववयसि**=नवीन, **तमसि**=अन्धकार के, **मेदिनीं**=पृथ्वी पर, **मीलयसि**=फैलने पर, **तरुणतर-तिमिरपटलपाटनपटीयसि**=नवीन (घने) अन्धकार को समाप्त करने में चतुर (समर्थ) **प्रदीपप्रकारे**=दीपक समूह के, **समुन्मिषति**=जलने पर, **यामिनी**= कामिनी, **कर्णपूरचम्पककलिकादम्बके**=रात्रि रूपी रमणी के कर्णभूषण रूप

चम्पा की कलियों के समूह के समान, प्रतनुतुहिनकिरणलावण्यालोकपाण्डुनि= थोड़ी निकली हुई चन्द्र किरणों की कान्ति से सफेद, आश्यानुनीलनीरमुक्तका- लिन्दीकूलवालपुलिनायमाने=सूखे तथा नीले जल से रहित यमुना नदी के नवीन तट के समान, शातक्रतवे --इन्द्रसम्बन्धिनी अर्थात् पूर्व दिशा, आशामुखे—दिशा में, तिमिरम्—अन्धकार, क्रशयति—कम (मन्द) होने पर, खमुचिमेचकितविक- चितकुवलयसरसि—गगनमण्डल का परित्याग करके अर्थात् पृथ्वी में पहुंचकर विकसित नीलकमलों से युक्त तालाब की, शशिकरनिकरकचग्रहाविले— चन्द्र की किरणों द्वारा बालों के ग्रहण से मलिन, विलीयमाने नष्ट होने पर, शर्वरीशबरीचिकुरचये—निशारूपी भीलिनी के बालों में, चाषपक्षस्वषिचाष (नीलकण्ठ नामक) पक्षी के पंख की कान्ति के समान, तमसि—अन्धकार के, उदिते=व्याप्त होने पर, निकलने पर, उदयगिरिशिखरकटककुहरहरिखर नखरनिवहहेतिनितनिजहरिणगलितरुधिरनिचयनिचितम्— उदय पर्वत के शिखर रूपी शिविरों (डेरों) में रहने वाले सिंहों के तीखे नाखून रूपी शस्त्रों से घायल अपने हिरण के बहते हुए रक्त समूह से युक्त, विभादरीबध्वाः - निशारूपी बहू के, उदयरागम—उदय होने के समय की (स्वाभाविक) लालिमा को, श्वेतभानौ—चन्द्र के, धारयति—धारण करने पर, अचलद्रुतचन्द्रप्रकान्तजल- धाराधौत इव उदयाचल से गिरती हुई चन्द्रकान्तमणि की जल की धारा से मानो धुले हुये, ध्वान्ते—अन्धकार के, ध्वस्ते–नष्ट हो जाने पर, गोलोकगलित- दुग्धविसरवाहिनि—किरणों के समूह से गिरते हुए दूध के समूह को धारण करने वाले, दन्तमयमकरमुखमहाप्रणाल इव—हाथी के दांत के बने हुए मगर के मुख के समान मुंह वाले परनाले के समान, पयोनिधिं—समुद्र को, पूरयितुं — वृद्धि करने में, प्रवृत्ते—संलग्न होने पर, स्पष्टे—साफ, प्रदोषसमये—सांकाल हो जाने पर, सास्रां—आंसुओं से युक्त।

सखि त्रिभुवनोपदेशदानदक्षायास्तव पुरो जिह्वा जिह्रेति मे जलपन्ती। जानास्येव यादृश्यो विसंस्थुला गुणवत्यपि जने दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्यः क्षणभंगिन्य दुरतिक्रमणीया त्ररमणीया दैवस्य वामा वृत्तयः। निष्कारण च निकारकणिकापि कलु- षयति मनस्विनोऽपि मानसमसदृशजनादापतन्ती। अनवर-

तनयनजलसिच्यमानश्च तरुरिव विपल्लवोऽपि सहस्रधा

प्ररोहति । अतिसुकुमारं च जनं संतापपरमाणवो मालती-कुसुममिव म्लानिमानयन्ति । महतां चोपरि निपतन्नणुरपि सृणिरिव करिणां क्लेशः कदर्थनायालम् । सहजस्नेहपाश-ग्रन्थिबन्धनाश्च बान्धवभूता दुःत्यजाः जन्मभूमयः । दारयति दारुणः क्रकचपात इव हृदयं संस्तुजनविरहः सा नार्हस्येवं भवितुम् ।

अर्थ—हे सखि सरस्वती ? तीनों लोकों को उपदेश देने में कुशल तुम्हारे सामने कुछ कहती हुई मेरी जिह्वा लज्जित हो रही है । तुम (स्वयं) जानती ही हो, (कि) कैसी मर्यादा रहित, क्षणभंगुर, विरस अनतिक्रमणीय (न छोड़ी जा सकने वाली अर्थात् अमिट एवम् अपरिहार्य) भाग्य की विपरीत प्रवृत्तियां गुणी मनुष्य में भी दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य के समान कठोर (आचरण वाली) होती हैं । किसी कारण के बिना अर्थात् अकारण अयोग्य (गुणहीन) व्यक्ति के द्वारा किया गया थोड़ा भी अपमान स्वाभिमानी मनुष्य के हृदय को उसी प्रकार विषयुक्त कर देता है जिस प्रकार विषयुक्त थोड़ा सा भी जल समस्त मानसरोवर को कलुषित कर देता है । जैसे लगातार जल के सींचने से पत्तों से शून्य वृक्ष भी हजारों अंकुरों से युक्त हो जाता है, वैसे ही आंसुओं के गिरते रहने से थोड़ी सी विपत्ति भी अधिक हो जाती है । सन्ताप (पीड़ा) का थोड़ा सा अंश भी कोमल प्रकृति वाले व्यक्ति को उसी प्रकार मलिन कर देता है, जिस प्रकार सुकुमार चमेली पुष्प को थोड़ा सन्ताप (धूप) भी मलिन कर देता है । बड़े लोगों के ऊपर आई थोड़ी भी आपत्ति, हाथी के अंकुश के समान कष्ट देने में पर्याप्त होती है, स्वाभाविक प्रेम के बन्धन से नियन्त्रित जन्मभूमि बन्धुओं के समान छोड़ना कठिन होता है, परिचित व्यक्तियों का विरह तेजधार वाले आरे के समान हृदय को चीरने वाला होता है । त्रिलोक प्रसिद्ध तुम्हें इस प्रकार (साधारण लोगों के समान) दुःखी होना उचित नहीं है । (अतः तुमको इसमें दुःख नहीं करना चाहिये ।

संस्कृत-व्याख्या—सखि ? सरस्वती ? त्रिभुवनोपदेशदक्षायाः—त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं—त्रिलोकी, तस्य उपदेशाय उपदेष्टुम् दक्षायाः कुशलायाः समर्थायाश्च, तव सरस्वत्याः पुरः समक्षम्, अग्रे, जल्पन्ती कथयन्ती,

में सावित्र्याः जिह्वा रसना, जिह्रेति जज्जामनुभवति, जानास्येव त्वं स्वयमेव वेत्सि, विसंस्थुलाः मर्यादारहिताः, गुणवत्यापि गुणशालिनि, अपि जने पुरुषे, दुर्जनवत् दुष्टपुरुष इव निर्दाक्षिण्यः उदारताशून्याः, क्षणभङ्गिन्यः क्षणभङ्गुराः, दुरतिक्रमणीयाः दुःखेन अतिक्रमितुं शक्याः नरमणीयाः शुष्काः, नीरसाः, दैवस्य विधेः, भाग्यस्य, वृत्तय व्यापाराः वामा प्रतिकूलाः विपरीतफलदायकाः, भवन्ति। असदृशजनात् अयोग्यपुरुषात् आपतन्ती आगच्छन्ती, निष्कारणा कारणरहिता, निकारकणिकाऽपि—निकारस्य अपमानस्य कणिकाऽपि लवोऽपि अत्यल्पांशोऽपि, मनस्विनोऽपि, स्वाभिमानिनोऽपि, मानसं चित्तं, कलुषयति कलुषतां प्रापयति, अनवरतनयनजलसिच्यमानश्च=अनवरतं सततं, यथास्यात्तथा नयनजलेन-अश्रु जलेन, सिच्यमानः, तरुरिव पादप इव, विपल्लवोऽपि— विपदः आपत्तेः लवः अंशः अपि (तरुपक्षे विगताः पल्लवाः पत्राणि यस्य सः—विपल्लवोऽपि पत्रशून्योऽपि सहस्रधा, प्ररोहति अङ्कुरान्ते अतिसुकुमारं च मृदुस्वभावमपि, जनं पुरुषं, सन्तापपरमाणवः सन्तापस्य परमाणवः लेशा अपि मालतीकुसुमम् इव म्लानिं—मलिनतां, आनयन्ति प्रापयन्ति। महता च उपरि निपतन् आगच्छन् अणुरपि=अत्यल्पोऽपि, क्लेशः कष्टं, करिणां गजानां, घृणिरिव अकुशइव, कदर्थनाय पीडांदातुम्, अलम् पर्याप्तम् भवति। सहजस्नेहपाशग्रन्थिवन्धनाः सहजः यः स्नेहः स्वाभिविकोऽनुरागः स एव पाशग्रन्थिः तस्य बन्धनं निगडभूतं यासां ताः वान्धवभूताः बन्धुसमानाः, जन्मभूमयः जन्मस्थानानि दुस्त्यजाः, त्यक्तुमशक्याः संस्तुतजनविरहः संस्तुतानां परिचितानां जनानां विरहः वियोगः, दारुणः कठोरः भवति, क्रकचपात इव करपत्रप्रहार इव हृदयं चित्तं, दारयति द्विधा करोति, सा त्रिभुवनप्रसिद्धा त्वं एवं भवितुं, अनेन प्रकारेण शोकं कर्तुं नार्हसि योग्यानासि।

शब्दार्थ—त्रिभुवनोपदेशदक्षायाः=तीनलोक को उपदेश देने में निपुण, पुरः=आगे, जिह्रेति=लज्जा करती है। यादृश्य=जैसी, विसंस्थुलाः= मर्यादाहीन, निर्दाक्षिण्यः=क्रूर, क्षणभङ्गिन्य=शीघ्रनाशवान्. दुरतिक्रमणीयाः=अतिक्रमण करने में कठिन, दुरभिभवाः=कठिनता से दूर होने योग्य, न रमणीयाः=नीरस, शुष्क, दैवस्य=भाग्य की, वामाः=विपरीत, वृत्तयः=प्रवृत्तियाँ, व्यापार, निष्कारणाः=विना कारण, अकारण, निकारकणिका—अपमान का अंश, असदृशजनात्=अयोग्य व्यक्ति से, आपतन्ती= आती हुई, अनवरतनयनजलसिच्यमानः=निरन्तर आँसुओं से सींचा जाता,

तरुरिव=वृक्ष के समान, विपल्लवोऽपि=विपत्ति का अंश भी, (वृक्ष के पक्ष में पत्तों रहित) सहस्रधा=अनेक प्रकारों से, सन्तापपरमाणवः=दुःख का थोड़ा सा भी अंश, म्लानिं=मालिनता को, कष्ट को, आनयन्ति=देते हैं। महतामुपरि=बड़े-बड़े महापुरुषों पर, अणः=थोड़ा, क्लेश=कष्ट, कदर्थननाय =पीड़ा देने के लिये, अलं=पर्याप्त होता है। सहजस्नेहपाशग्रन्थिबन्धनाश्च= स्वाभाविक प्रेम के बन्धन की गाँठ से बनी हुई, बान्धवभूताः=बन्धुओं के समान, जन्मभूमयः=जन्मस्थान, दुस्त्यजाः=कठिनता से छोड़े जा सकते हैं। संस्तुतजनविरह=परिचित व्यक्तियों का विरह, ककचपात इव=आरे के प्रहार के समान, दारयति=चीर डालता है, सा=वह त्रिलोक प्रसिद्ध तुम सरस्वती, एवंभवितुं=इस प्रकार दुःखी होना, नार्हसि=योग्य (उचित) नहीं है। अतः तुम दुःख मत करो।

अभूमिः खल्वसि दुःखक्ष्वेडाङ्कुरप्रसवानाम्। अपि च पुराकृते कर्मणि बलवति शुभेऽशुभे वा फलकृति तिष्ठत्य-धिष्ठातरि प्रष्ठे पृष्ठतश्च कोऽवसरो विदुषि शुचाम्। इदं च ते त्रिभुवनमङ्गलैककमलममङ्गलभूताः कथमिव मुखम-पवित्रयन्त्यश्रु बिन्दवः। तदलम्। अधुना कथय कतमं भुवो भागमलङ्कर्तुमिच्छसि। कस्मिन्नवतितीर्षति ते पुण्यभाजि प्रदेशे हृदयम्। कानि वा तीर्थान्यनुग्रहीतुमभिलषमि। केषु वा धन्येषु तपोवनधामसु तपस्यन्ती स्थातुमिच्छसि। सज्जो-ऽयमुपचरणचतुरः सहपांसक्रीडापरिचयपेशलः प्रेयांसखीजनः क्षितितलावतरणाय। अनन्यशरणा चाद्यैव प्रभृति प्रतिपद्यस्व मनसा वाचा क्रियया च सर्वविद्याविधातरं दातारं च श्वः श्रेयसस्य चरणरजःपवित्रितदशासुरं सुत्रासूतिकलिकाकल्पित-कर्णावतंसं देवदेवं त्रिभुवनगुरुं त्र्यम्बकम्। अल्पीयसैव कालेन स ते शापविरतिं वितरिष्यति इति।

अर्थ—(हे सरस्वती) तुम दुःख रूपी दिन के अंकुरों की उत्पत्ति का

स्थान नहीं हो, अर्थात् तुम्हें दुःख नहीं करना चाहिये और भी पूर्व जन्म में किये हुए अच्छे बुरे फलों के धारण करने वाले अधिष्ठाता की सत्ता से अच्छे बुरे फलों से प्राप्त होने पर विद्वान् लोग दुःख नहीं करते, तीनों लोकों का कल्याण करने वाले तुम्हारे मुख को अमङ्गल को सूचित करने वाली आँसू की बूंदें कैसे कलुषित कर रही हैं, अतः शोक मत करो। अब कहो कि तुम भूमण्डल के किस स्थान को सुशोभित करने की इच्छा करती हो ? किस पवित्र स्थान में (प्रदेश को तुम्हारा शरीर अवतार ग्रहण करना चाहता है अथवा किन पवित्र तीर्थ स्थानों पर कृपा करना चाहती हो ? किस पावन एवं धन्य तपोवन में तपस्या करने के लिए रहना चाहती हो ? सेवा करने में चतुर तथा शिशुपन की क्रीड़ाओं के साथ रहने वाली तुम्हारी प्रिय सहेली मैं सावित्री भी पृथ्वी पर उतरने के लिए तैयार हूं। असाधारण भक्ति से युक्त तुम आज से ही समस्त विद्याओं के जन्मदाता, कल्याण देने वाले, अपनी चरण रज से देव और दानवों को पवित्र करने वाले और चन्द्रमा की कला से अपने कानों को सुशोभित करते वाले देवों के देव भगवान् शिवजी की आराधना मन से, वाणी से, और कर्म से करो। यह भगवान् शिवजी थोड़े ही समय में तुम्हारे शाप का शमन (अन्त) कर देंगे। (अतः शिवजी की आराधना करो)।

संस्कृत-व्याख्या—अस्थानम्, असि, भवसि, दुःखक्ष्वेडाङ्कुरप्रसवानां—दुःखमेव शोक एव, क्ष्वेडः विषः तस्य विषस्य, अङ्कुराः, तेषाम् अङ्कुराणां, प्रसवाः उत्पत्तयः, तेषाम्, पुराकृते अन्यजन्मकृते, शुभे पुण्यकर्मणि, अशुभे पाप कर्मणि, फलकृतेफलप्रदातरि अधिष्ठातरि, जगन्नियन्तरि, तिष्ठति उपस्थिते सति, पृष्ठेपुरः पृष्ठतः परोक्षं, च, विदुषि बुधे, शूचां दुःखानां, कः अवसरः समयः न कोऽपि इत्यर्थः, ते सरस्वत्याः, इदम् एतत् त्रिभुवनमङ्गलैककमलं त्रयाणां भुवनानां समाहरः त्रिभुवनम् त्रिलोकी, तस्य मङ्गलाय कल्याणाय, एक केवलं, कमलं पङ्कजरूपम्, मुख वदनं, अमङ्गलभूताः अकल्याणसूचयितारः, अश्रुविन्दवः—अश्रूणां नयनजानां, वाष्पाणां, विन्दवः कणाः कथं कस्मात् अपवित्रयन्ति कलूषीकुर्वन्ति ? तत् तस्मात्, अलंशोकेनअलम् पर्याप्तं, शोक-करणात् विरम इति भावः, अधुना इदानीं, कथय आवेदय, भुवः धरायाः कतमं भाग स्थानम्—अलङ्कर्तुम्, इच्छसि अभिलषसि, कस्मिन् पुण्यभाजि, पुण्ये पावने, प्रदेशे स्थाने ते तव, हृदयचेतः, अवतीर्षति अवतरितुं वाञ्छति ? वा अथवा, कानि, तीर्थानि, अनुग्रहीतुम् अनुग्रहेण धन्य कर्तुम् अभिलषसि

इच्छसि ! वा, केषु धन्येषु, तपोवनधामसु तपोवनभूमिषु तपस्यन्ती तपः कुर्वाणा, त्वं सरस्वती, स्थातुं निवसितुम्—इच्छसि वाञ्छसि ? उपचरण-चतुरः– उपचरणे, सेवाकरणे, चतुर, निपुणः, सहपांसुक्रीडापरिचयपेशलः—सहपांसुक्रीडायाः शैशवे धूलिक्रीडनस्य, परिचयः, तेन, पेशलः रमणीयः अयम एषः प्रेयान् अतिस्नेहभाजनम् सखीजन, सज्जः उद्यतः, अद्यैवप्रभृति अद्यारभ्यैव, अनन्यशरणा अन्यशरणेच्छारहिता (भूत्वा) मनसा हृदयेन, वाचा वाण्याः क्रियया च कर्मणा च, सर्वविद्याविधातारं सम्पूर्णविद्योत्पादकम्, इव श्रेयसः मङ्गलस्य कल्याणस्य च, दातारं प्रदायकं, चरणरजः पवित्रित-त्रिदशासुरं—चरणरजसा चरणधूल्या, पवित्रिताः पावनीकृताः त्रिदशाः सुराः, असुराश्च दानवाश्च, येन सः तम् शङ्करं, सुधासूतिकलिकाकल्पितकर्णावतंसं—सुधसूतेः शशिनः, कलिका कला, तया कलया, कल्पितः निर्मितः, कर्णावतंसं कर्णभूषणं येन स, तम् देवदेवं, त्रिभुवनगुरुं—त्रिभुवनस्य, गुरुं जनकं—त्र्यम्बकं—त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य सः तम् शङ्करं, प्रतिपद्यस्व शुश्रूषस्य । सः शिवः अल्पीयसैव—अल्पसमयेनैव, ते तव शापविरतिं शापनाशं, वितरिष्यति करिष्यति ।

शब्दार्थ – दुःखक्ष्वेडाङ्कुर प्रसवानां—दुःख रूपी विष वृक्ष के अङ्कुरों का उत्पत्तिस्थान, अभूमिः अस्थान, अयोग्य, असि—हो, पुराकृतेकर्मणि—पूर्व जन्म में किये हुए कर्म, शुभे—सत्कर्म, अशुभे—असत्कर्म, फलकृति—फल देने वाले, अधिष्ठातरि—अधिकारी के. तिष्ठति—विद्यमान होने पर, पुरुष्ठे—आगे, पृष्ठतः—पीछे कोऽवसर—कैसा मौका, विदुषि—विद्वान् व्यक्ति को, शुचाम्—शोक करने का, त्रिभुवनमङ्गलैककमलं—तीनों लोकों का एकमात्र कल्याण करने के लिये कमल के समान, ते मुखं—तुम्हारा मुख, अलङ्कर्तुम् इच्छसि—सुशोभित करना चाहती हो, कस्मिन् पुण्यभाजि—किस पवित्र, अवतितीर्षति—उतरना चाहता है। उपचरणचतुरः—सेवा करने में कुशल, सज्जः—तैयार, सहपांसुक्रीडापरिचयपेशलः—शैशव में धूलि में खेलने के समय से परिचित, प्रेयान्—अतीव प्रिय, क्षितितलावतरणाय—धरा पर अवतार ग्रहण करने के लिए, अनन्यशरणा—किसी अन्य की शरण न प्राप्त करके, अद्यैव प्रभृति—आज से ही, प्रतिपद्स्व—शरण प्राप्त करो, सेवा करो, सर्वविद्याविधातारं—सम्पूर्ण विद्याओं को उत्पन्न करने वाले श्रेयस्यः—कल्याण के, दातारं—देने वाले, चरणरजः पवित्रित-

त्रिदशासुरं—पैरों की धूलि से पवित्र किया गया है देवता और राक्षसों को जिसने उन भगवान् शंकर को, त्र्यम्बकं—तीन नेत्रों वाले अर्थात् शंकर को, सुधासूतिकलिकावकल्पितकर्णावतंसम्—चन्द्र की कला को कान का आभूषण बनाने वाले, देवदेवं—देवताओं के भी देव अर्थात् सभी देवताओं में श्रेष्ठ, त्रिभुवनगुरुं—तीनों लोक के जनक, अल्पीयसा—थोड़े ही, शापशोकविरतिं—शापजन्य शोक को नष्ट, वितरिष्यति—करेंगे अर्थात् शाप से मुक्ति प्रदान करेंगे।

एवमुक्ता मुक्तमुक्ताफलधवललोचनजलवा सरस्वती प्रत्स-वादीत्—"प्रियसखि त्वया सह विचरन्त्या न मे काचिदपि पीडांमुत्पादयिष्यति ब्रह्मलोकविरहः शापशोको वा केवलं कमलासनसेवासुखमार्द्रयति मे हृदयम्। अपि च त्वमेव वेत्सि मे भुवि धर्मधामानि समाधिसाधनानि योगयोग्यानि च स्थानानि स्थातुम्" इत्येवमभिधाय विरराम। रणरणकोपनीतप्रजागरा चानिमीलितलोचनैवतां निशामनयत्।

अर्थ—सावित्री के द्वारा इस प्रकार कही गई सरस्वती देवी मोती के समान सफेद आंसुओं की बूंदों को गिराती हुई बोली, हे प्रिय सखि?—

तुम्हारे साथ विचरण करते हुए मुझे (सरस्वती को) ब्रह्मलोक का वियोग और शाप से उत्पन्न शोक कुछ भी पीड़ा (दुःख) नहीं पहुंचा सकेगा। केवल ब्रह्माजी की सेवा करने का सुख (आनन्द) मेरे हृदय को दुःख से द्रवित कर रहा है, (अर्थात् भूलोक में जाने से ब्रह्मा की सेवाजन्य सुख से वञ्चित रहना पड़ेगा, यही केवल दुःख है) मर्त्यलोक में मेरे लिए जो धर्म के स्थान, और साधन एवं योगसाधना के अनुकूल स्थान हैं उन्हें तुम स्वयं जानती ही हो। इस प्रकार कहकर सरस्वती जी शान्त हो गई। चिन्ता के कारण जागती हुई और नेत्रों को विना बन्द किये हुये अर्थात् आँखें खोले ही सरस्वती जी ने वह रात व्यतीत की।

संस्कृत-व्याख्या—एवमुक्ता एवं कथिता सती मुक्तमुक्ताफल-धवललोचनजलया—मुक्ताः परित्यक्ताः, मुक्ताफलवत् मौक्तिकम् इव धवलाः शुभ्रवर्णाः, लोचनजलस्य नेत्रजलस्य, अश्रुणः लवाः कणाः, यया सा, सरस्वती, अथवा-

दीत् प्रत्याह, हे प्रिय सखि ? साविन्नि ? त्वया भवत्या, सह साकं, विचरन्त्याः भ्रमन्त्याः, मे सरस्वत्याः, ब्रह्मलोकविरह ब्रह्मलोकवियोगः, शापशोको वा—शापस्य शोकः शापजन्यशोकः वाः न—नैव, काञ्चिदपि, पीडां कष्टम्, उत्पादयिष्यति उत्पादयितुं प्रभविष्यति । केवलमं एकमात्रं कमलासनसेवासुख—कमलासनस्य—विधातुः सेवासुखं सेवाजन्यानन्दं, मे मम, हृदय चेत, आर्द्रयति दुःखेन आर्द्रीकरोति । अपि च त्वमेव, वेत्सि अवगच्छसि, एव मे मम भुवि धरायां, धर्मधामानि धर्मप्रदेशाः, समाधिसाधनानि समाधिकरणानि, योग योग्यानि योगोपयोगीनि, स्थानानि, स्थातुं निवसितुम् इत्यवम् अभिधाय कथयित्वा, विरराम । रणरणकोपनीतप्राजागरा—रणरणकेन विरहोत्कण्ठया, उपनीतः प्रापितः, प्रजागरः, निद्राऽभावनः यया सा अनिमीलितलोचना—न निमीलिते लोचने यया सा उन्मीलिनेत्रा एव, तां निशां रात्रिम् अनयत अप्यवाहयत् ।

शब्दार्थ—एवमुक्त – इस प्रकार कही हुई, मुक्तमुक्ताफलधवललोचनजललवा—छोड़े हुए मोती की तरह सफेद आँसुओं के बूंदों को गिराती हुई, प्रत्यावादीत् – बोली, कमलासनसेवासुखम्—ब्रह्मा जी की सेवा से उत्पन्न सुख, मे मुझे, आर्द्रयति—दुःख से गीला कर रहा है, वेत्सि—जानती हो, धर्मधामानि—धर्म के स्थान, समाधिसाधनानि समाधि के साधन, योगयोग्यानि—योग के अनुकूल, रणरणकोपनीतप्रजागरा—शाप जन्य चिन्ता से जागती हुई, अनिमीलितलोचना एव—नेत्र विना बन्द किये हुए ही, निशाम्—रात को, अनयत्—व्यतीत किया ।

अनयेद्युरुदिते भगवति त्रिभुवनशेखरे खणखणायमानस्खलन्खलीनक्षतनिजतुरगमुखक्षिप्तेन क्षतजेनेव पाटलितवपुष्युदयाचलचूडामणौ जरत्कृकवाकुचूडारुणारुणपुरःसरे विरोचने नातिदूरवर्ती विविच्य पितामहविमानहंसकुलपालः पर्यटन्नपरवक्त्रमुच्चैरगायत्—

अर्थ – दूसरे दिन तीनों लोक के शिरोभूषण तथा उदयाचल के चूड़ामणि रूप भगवान् सूर्य के निकलने पर, खन-खन की ध्वनि करती हुई, लगाम के प्रहार से निकलने वाले अपने घोड़ों के मुख के रक्त से मानो लाल शरीर वाले बूढ़े मुर्गे की सिर की चोटी (कलगी) के समान लाल वर्ण वाला अरुण

(सूर्य का सारथि) सूर्य के आगे (रथ पर) बैठने पर, इसी बीच में थोड़ी सी दूर पर भ्रमण करते हुए ब्रह्मा जी की सवारी के हंसों की रक्षा करने वाले ने सोचकर उच्च स्वर से अपरवक्त्र नामक छन्द का गान किया।

संस्कृत-व्याख्या—अन्येद्युः अपरस्मिन् दिवसे, त्रिभुवनशेखरे भास्करे, उदिते—निर्गते सति, खणखणायमानस्खलन्खलीनक्षतनिजतुरगमुखक्षिप्तेन—खणखणेति शब्दं कुर्वत्पतत यत् खलीनं कविका, तेन खलीनेन, क्षताः रहताः, ये, निजतुरगाः स्वरथाश्वाः, तेषाम् अश्वानां, मुखेभ्यः आननेभ्यः क्षिप्तेन, क्षतजेनेव रक्तेनेव, पाटलितवपुषि—पाठलितं श्वेतरक्तं, वपुः तनुः यस्य सः तस्मिन्ः उदयाचलचूडामणौ उदयाचलस्य, चूडा शिखरं, तस्याः मणिः रत्नं यः तस्मिन् दिनकरे जरत्कृतवाकुचूडारुणारुणपुरःसरे=जरन् वृद्धः, यः, कृकवाकुः कुक्कुटः, तस्यचूडाशिखरं, तदिव, अरुणः रक्तवर्णः यः, अरुणः अरुणनामा सूर्यसारथिः, सः अरुणसारथिः, पुरः सरः अग्रभागे, रथस्याग्रभागे; यस्य स तस्मिन्, विरोचने सूर्ये, नातिदूरवर्ती अतिसन्निकटस्थः, पर्यटन् परिभ्रमन् अपरवक्त्रः एतन्नामकं छन्दः अगायत् जगौ।

शब्दार्थ अन्येद्युः दूसरे दिन, त्रिभुवनशिखरे=तीनों लोक के शिर रूप सूर्य के, उदिते=निकलने पर, खणखणायमानस्खलन्खललीनक्षतनिजतुरगमुखक्षिप्तेन क्षतजेन पाटलिवपुषि=खन खन करती हुई लगाम के प्रहार से निकले हुए अपने अश्वों के मुख के रक्त से ही मानो लाल शरीर वाला, उदयाचलचूडामणौ=उदय पर्वत के शिर (चोटी) से रत्न, जरत्कृकवाकुचूडारुणारुणपुरसरे=बूढ़े मुर्गे की चोटी (कलंगी) के समान लालवर्ण वाला अरुण नामक सारथि आगे बैठा है जिसके, उसके, विरोचने, सूर्य के, नातिदूरवर्ती=समीपस्थ, विविच्य=विचार करके, पितामहविमानहंसकुलपालः=ब्रह्माजी की सवारी के हंसों की रक्षा करने वाला, पर्यटन्=भ्रमण करता हुआ=अपरवक्त्र=एक प्रकार के छन्द का नाम।

तरलयसि दृशं किमुत्सुकामकलुषमानसवासलालिते।
अवतर कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पङ्कजालयम्॥

अन्वय—अकलुषमानसवासलालिते कलहंसि किम् उत्सुकाम् दृशं तरलयसि वापिकाम् अवतर पुनः अपि पङ्कजालयम् यास्यसि।

अर्थ—स्वच्छ अर्थात् पवित्र मानसरोवर से रहने वाली हे सुन्दर हंसिनी?

तुम क्यों निष्प्रयोजन ही उत्कण्ठा से अपनी दृष्टि को चंचल कर रही हो, जा तू वापी में उतर जा, फिर मानसरोवर को प्राप्त करेगी। इस श्लोक में अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से ब्रह्मा ने हंसिनी को लक्ष्य करके सरस्वती से कहा है। सरस्वतीपरक अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये। हे सरस्वती जी तुम स्वच्छ हृदय वाले ब्रह्मा की कन्या हो, तुम क्यों व्यर्थ ही अपनी उत्कण्ठित दृष्टि को व्यक्त कर रही हो, (अभी कुछ समय के लिये) भूलोक रूपी वापिका में उतर जा, फिर पङ्कज=कमल है आलय=उत्पत्ति स्थान जिसका उस ब्रह्मा को (ब्रह्मलोक को प्राप्त करोगी।

संस्कृत-व्याख्या—अकलुषितं कलङ्करहितं, पवित्रं, स्वच्छमित्यर्थः मानस मानसरोवरं तस्मिन् मानसरोवरे, वासः निवासः तेन लालिता मनोरञ्जिता तत्सम्बुद्धौ, कलहंसि, किम् कथम्, उत्सुकाम् उत्कण्ठितां दृश दृष्टिं तरलयसि चञ्चलतां नयसि, वापिकां वापिम्, अवतर गच्छ, पुनरपि भूयोऽपि पङ्कजालयं मानसहरोवरं, यास्यसि व्रजिष्यसि। अत्र अन्योक्त्यलेङ्कारेण हंसीमुद्दिश्य सरस्वती एव कथिता अस्ति, हे सरस्वति ? त्वं पवित्रात्मनः ब्रह्मणः पुत्री असिः (अतः) किम् व्यर्थमेव स्वाम् उत्सुकां दृष्टिं चञ्चलयसि कदर्थयसीति भावः (सम्प्रति तु) वापिकां मृत्युलोकरूपिणीं वापीम्, अवतर, पुनः पङ्कजम् एव आलय उत्पत्ति स्थानम् आसनं वा यस्य सः तं ब्राह्मणं प्राप्स्यसे।

शब्दार्थ—अकलुषमानसलालिते - पवित्र मानसरोवर में रहने वाली, उत्सुकाम्=उत्कण्ठित, तरलयसि—चंचल कर रही हो। वापिकां=वावड़ी, अवतर, जाओ, पङ्कजालयम्=मानसरोवर, (सरस्वती के पक्ष में) ब्रह्मा को।

तच्छुत्वा सरस्वती पुनरचिन्तयत्—'अहमेवानेन पर्यनुयुक्ता। भवतु। मानयामि मुनेर्वचनम्' इत्युक्त्वोत्थाय कृतमहीतलावतरणसंकल्पा परित्यज्य वियोगविक्लवं स्वपरिजनं ज्ञातिवर्गमविगणय्यावगणा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य चतुर्मुखं कथमप्यनुनयनिवर्तितानुयायिव्रतिव्राता ब्रह्मलोकतः सावित्रीद्वितीया निर्जगाम।

अर्थ—ब्रह्मा के हंसरक्षक के उस कथन को सुनकर फिर सोचने लगी, क्या ? मैं ही इस हंसरक्षक के द्वारा अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से पूछी गई

हूं, तो मैं दुर्वासामुनि के वचनों को मानती हूं, यह कहकर और उठकर भूतल पर उतरने का निश्चय करती हुई विरह से व्याकुल अपने परिजनों को छोड़कर, बन्धु-बान्धवों को न मानकर अर्थात् उपेक्षा करके, चारमुख वाले ब्रह्मा की तीन बार परिक्रमा करके, किसी भी परिजन को साथ न लेकर अर्थात् एकाकिनी पीछे-पीछे आने वाले तपस्वियों को किसी प्रकार अनुनय, विनय के द्वारा लौटाकर सावित्री सहित (ब्रह्मलोक से) निकल पड़ी।

संस्कृत-व्याख्या—अनेन ब्रह्मवाहनहंसरक्षकेन, अहमेव सरस्वत्येव, पर्यनुयुक्ता अन्योक्तिमधिकृत्य, कथिताऽस्मि इति तच्छ्रुत्वा हंसरक्षकस्य पूर्वोक्तकथनम् आकर्ण्य, पुनः भूयः, अचिन्तयत् मुनेः दुर्वाससः, वचनं कथनं, शापमेव, मानयामि स्वीकरोमि, इत्युक्त्वा इत्यभिधाय, उत्थाय आसनं परित्यज्य, कृतमहीतलावतरणसंकल्पा=कृतः, महीतले भूतले, अवतरणस्य निवासस्य, गमनस्य, संकल्पः प्रतिज्ञा, निश्चयः, यया सा वियोगविक्लवं—वियोगेन विरहेण, विक्लवं व्याकुलं, स्वपरिजनं सेवकवर्गं, परित्यज्य विहाय, ज्ञातिवर्गं बन्धुवर्गम्, अविगणय्य उपेक्षां कृत्वा, अवगणा परिजनरहिता, चतुर्मुख=चत्वारि मुखानि यस्य सः तं ब्राह्मणं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य, त्रिवार परिक्रमां विधाय, कथं—मपिकथञ्चिदपि, अनुनयनिर्वर्तितानुयायिव्रतिव्राता=अनुनयेन सान्त्वनादिना, निर्वर्तिता परावर्तिता,अनुयायिनाम् अनुगन्तॄणां, व्रतिनां तपस्विनां, व्राता समूहाः यया सा, सावित्री द्वितीया सावित्रीसहिता, निर्जगाम निर्ययौ।

शब्दार्थ—अनेन=इस ब्रह्मा की सवारी के हसों की रक्षा करने वाले के द्वारा, पर्यनुयुक्ता=सावधान की गई हूं, कृतमहीतलावरणसंकल्पा=पृथ्वी पर उतरने का निश्चय करती हुई, वियोगविक्लवे=विरह से व्यथित, ज्ञातिवर्ग=बन्धुओं की, अवगण्य=उपेक्षा करके, अवगणा=एकाकिनी, कथमपि=किसी प्रकार, अनुनय=निर्वर्तितानुयायिव्रतिव्राता=पीछे पीछे आने वाले तपस्वियों के समूह को लौटाकर, साविद्वित्रीतीया=सावित्री सहित।

ततः क्रमेण ध्रुवप्रवृत्तां धर्मधेनुमिवाधोधावमानधवलपयोधराम्, उद्गरध्वनिमन्धकमथनमौलिमालतीमालिकाम्, आलीयमानवालखिल्यरोधसमरुन्धतीधौततारवत्वचम्, त्वङ्गतुङ्गरङ्गतरत्तरलतरतारकाम्, तापसवितीर्णतरलतिलोदकपुलकितपुलिनाम्, आप्लवनपूतपितामहपानितपितृपिण्डपाण्डु-

रितपाराम, पर्यन्तसुप्तसप्तर्षिकुशशयनसूचितसूर्यग्रहसूतकोपवासाम् आचमनशुचिशचीपतिमुच्यमानार्चनकुसुमनिकरशाराम्, शिवपुरपातितनिर्माल्यमन्दारदामकामनादनदारितमन्दरदरीदृषदम् अनेकनाकनायकनिकायकामिनीकुचकलशवितुलित विग्रहाम्, ग्राहग्रावस्खलनमुखरितस्रोतसम् ।

अर्थ—इसके बाद क्रम से आकाश से निकली हुई कामधेनु के समान आकाश-गंगा जी का अनुगमन करती हुई सरस्वती भूलोक में उतरी । आकाश गंगा कैसी थी, और कामधेनु कैसी थी, इसका समाधान यह है कि (कामधेनु पक्ष में) नीचे की ओर जाते हुए सफेद स्तनों (थनों) से युक्त, (आकाश गंगा के पक्ष में) जिस गंगा के नीचे भाग में श्वेत वर्ण मेघ लटक रहे थे अतः कामधेनु के समान आकाश गंगा का सरस्वती जी अनुगमन करती हुई भूलोक में आई । वह गंगा जी वेग से शब्द करती हुई शिवजी के शिर की चमेली की माला के समान, सुशोभित हो रही थी, गंगा जी के तट पर बालखिल्य नामक मुनि लोग बैठे थे, अरुन्धती के द्वारा गंगा के जल में पेड़ों की छाल धोई जा रही थी. वह गंगा जी चंचल लहरों से प्रतिबिम्बित होने वाले नक्षत्रों से अलंकृत हो रही थी, स्नान करके पवित्र हुए ब्रह्मा जी के द्वारा पितरों को दिये गये पिण्डों से गंगा जी का किनारा श्वेतवर्ण हो रहा था, गंगा-तट के समीप की भूमि तपस्विजनों से दी हुई तिल और जल की अंजलियों से सुशोभित थी, समीप में सोये हुए सप्तर्षियों के कुशों के बिस्तर से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सप्तर्षियों ने सूर्यग्रहण के समय सूतक जन्य शाप के विनाश के लिये उपवास किया हो, आचमन से (हाथ मुँह धोकर) पवित्र हुए इन्द्र के द्वारा पूजा के लिये छोड़े गये फूलों से गंगा जी अनेक वर्णों वाली हो रही थी । शिवपुर अर्थात् कैलास पर्वत से गिराये हुए मन्दार नामक कल्पवृक्ष के फूलों की माला को धारण कर रही थी, यों ही परिश्रम के बिना ही मन्दराचल की गुफाओं की शिलाओं को छोड़ने वाली, असंख्य देवताओं की रमणियों के स्तन कलश के प्रहार से चञ्चल शरीर वाली (जल वाली) हो रही थी, मगर तथा शिलाखण्डों पर गिरने से जिसका प्रवाह मुखरित हो रहा था, ऐसी उपर्युक्त विशेषणों वाली गंगाजी का अनुगमन करती हुई सरस्वती भूलोक में उतरी ।

संस्कृत-व्याख्या - ततः तदनन्तरं, क्रमेण क्रमशः ध्रुवप्रवृत्ताम् ध्रुवम् अविनाशी यः आकाशः तस्मात् प्रवृत्ताम् आगच्छन्तीम् धर्मधेनुमिव कामधेनुमिव, अधोधावमानधवलपयोधराम् (कामधेनुपक्षे) अधः नीचैः, धावमानाः आगच्छन्तः धवला श्वेताः पयोधराः स्तनाः, यस्याः सा ताम् इव (आकाशगङ्गापक्षे) अधः नीचैः धावमानाः प्रलम्बमानाः धवलाः श्वेताः पयोधराः जलधराः यस्याः सा ताम् गङ्गाम् अनुगच्छन्ती सरस्वती भूलोकमवततार इति दूरेऽन्वयः। अपि च कीदृशी आकाशगङ्गा आसीत् यामन्वसरत् सा तु, उद्धरध्वनिम् तीव्रध्वनियुक्ताम्, अन्धकमथनमौलिमालतीमालिकाम् अन्धकनामाः यः राक्षस, तस्य, मथनस्य हन्तुः शिवस्य, मौलौ मस्तके, या मालतीनां पुष्पविशेषाणां मालिकामाला, तां (दधानां) आलीयमानवालखिल्यरोधसम् आलीयमानाः समुपविष्टाः, वालखिल्याः एतन्नामकाः मुनिविशेषाः, तैः मुनिभिः रुद्धं व्याप्तं, रोधः, तीरः, यस्याः सा ताम्, अरुन्धतीधौततारवत्वचम् = अरुन्धत्या, धौता क्षालिता, तरोः वृक्षस्य इयं - तारवी तरोरुत्पन्ना त्वक् चर्म (वल्कल) यस्यां सा ताम्, त्वङ्गत्तुङ्गतरङ्गतरत्तलतरतारतारकाम् = त्वङ्गन्तः कम्पमानाः, ये, तुङ्गाः उच्चाः तरङ्गाः वीचयः, तेषु तरङ्गेषु, तरन्त्यः, तरलतराः चञ्चलाः, ताराः, तारकाः नक्षत्राणि यस्यां सा, ताम्, तापसवितीर्णतरलतिलोदक-पुलकितपुलिनाम् = तापसैः तपस्विभिः वितीर्णानि समर्पितानि, तरलानि चञ्चलानि, यानि, तिलोदकानि तिलमिश्रितानि, जलानि वारीणि, तैः पुलकितं, पुलिनं तटं यस्याः सा ताम्, आप्लवनपूतपितामहपातितपितृपिण्डपाण्डुरितपाराम् = आप्लवनेन स्नानेन, पूतः पवित्रः, यः पितामहः विरञ्चिः प्रापिता समर्पिताः पितृभ्यः पिण्डाः, तैः पिण्डैः, पाण्डुरितः शुभ्रवर्णीभूतः, पारः तटं, यस्याः सा ताम्, पर्यन्तसुप्तसप्तर्षिकुशशयनसूचितसूर्यग्रहसूतकोपवासाम् = पर्यन्तेषु (गंगायाः) पार्श्वभागेषु, सुप्ताः निद्रिताः, ये सप्तर्षयः तेषां यानि कुशशयनानि तैः सूचितः सूर्यग्रहणेन यः सूतकः तस्य उपवासः यस्यां सा ताम्, आचामनशुचिशचीपतिमुच्यमानार्चनकुसुमनिकरशाराम् = आचमनेन हस्तमुखप्रक्षालादिना, शुचिः पवित्रीभूतः, यः शचीपतिः इन्द्रः, तेन इन्द्रेण मुच्यमानानि परित्यक्तानि, अर्चनाय अर्चितुं, कुसुमानि पुष्पाणि, तेषां पुष्पाणां निकरेण = समुदायेन, शाराः चित्रां ताम्, शिवपुरापतितनिर्माल्यमन्दारदामकाम् शिवपुरात् शिवावासस्थानात्, कैलासात्. इति भावः, पातितं, निर्माल्यम् अतीवस्वच्छं, मन्दारस्य मन्दारतरोः कल्पवृक्षस्य, दामकं स्रक् यस्यां सा ताम्, अनादरदारितमन्दरदरीदृषदम् = अनादरेण तिरस्कारेण,

अनायासेन एवेत्यर्थः, दरिता चूर्णिता, मन्दरस्य एतनाम्नः पर्वतस्य, दरीणां कन्दराणां, दृषत् शिलापट्टम् यया सा ताम्, अनेकनाकनायकनिकायकामिनीकुचकलशविलुलितविग्रहाम् = अनेकेषां बहूनां, नाकस्य स्वर्गस्य, नायकानां नेतॄणां, देवानामित्यर्थः, निकायस्य निकरस्य, कामिन्यः नायिकाः, तासां कामिनीनां, कुचाः एव कलशाः तैः कुचकलशैः, विलुलितः प्रताडितः, विग्रहः देहः (जलं) यस्याः सा ताम्, ग्राहग्रावग्रामस्खलनमुखरितस्रोतसम् = ग्राहाणां मकराणाँ, ग्राव्णां प्रस्तराणाँ, ग्रामाः समूहाः तेषां स्खलनेन निपतनेन, मुखरितं कलकलायमान स्रोतः जलधारा, यस्याः सा ताम् । (एवम्भूता आकाशगङ्गामनुसरन्ती सरस्वती भूलोकं प्रतस्थे) ।

शब्दार्थ—ध्रुववृत्ताम् = ध्रुव = नित्य अर्थात् आकाश से प्रवृत्ताम् प्रवाहित होने वाली, धर्मधेनुमिव = कामधेनु के समान, अधोधावमानधवलपयोधराम् = नीचे की ओर जाते हुए सफेद स्तन हैं जिसके वह (कामधेनु) आकाश गंगा के पक्ष में = नीचे भाग में श्वेतवर्ण = बादल लटक रहे हैं जिसके ऐसी (आकाशगंगा) उद्धरध्वनिम् = अत्यन्त तेज कोलाहल करती हुई, अन्धकमथनमौलिमालतीमालिकाम् = अन्धक नामक राक्षस का वध करने वाले शिवजी के शिर के चमेली के फूलों की माला के समान, आलीयमानबालखिल्यरोधसं = किनारे पर बैठे हुए बालखिल्य नामक मुनियों से युक्त तट वाली अरुन्धतीधौततारवत्वचम् = (जिसके तट पर) अरुन्धती के द्वारा धोई जा रही हैं वृक्षों की छालें, उससे युक्त, स्वङ्गतुङ्गतरङ्गतरलरतारकाम्—ऊँची उठने वाली चंचल लहरों से युक्त, तापसवितीर्णतरलतिलोदकपुलकितपुलिनां—मुनियों के द्वारा दी गई तिलाञ्जलि से युक्त तट भाग वाली, आप्लवनपूतपितामहपातितपितृपिण्डपाण्डुरितपारां—गंगा में स्नान करने से पवित्र हुए ब्रह्माजी के द्वारा दिये गये पितरों को पिण्ड, उन पिण्डों से सफेद तट से युक्त, पर्यन्तसुप्तसप्तर्षिकुशशयनसूचितसूर्यग्रहसूतकोपवासाम्—हाथ मुख प्रक्षालन से पवित्र इन्द्र के द्वारा पूजा के लिये गिराये गये पुष्पों के समूह से विविध रंग वाली, शिवपुरापतितनिर्माल्यमन्दारदामकाम्—कैलास पर्वत से गिराये गये मन्दार नामक कल्पवृक्ष के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, अनादरितमन्दरदरीदृषदम्—बिना परिश्रम के मन्दर नामक पर्वत की गुफाओं को तोड़ने वाली, अनेकनायकनिकायकामिनीकुचकलशविलुलितविग्रहाम्—असंख्य

देवताओं की कामिनियों के कुचकलश से व्याप्त शरीर वाली, ग्राहग्रावग्रामस्खलनमुखरितस्रोतसम्—नगरों तथा पत्थरों के समूह से टकराने से उत्पन्न कलकल शब्द से युक्त धार वाली।

सुषुम्णास्रुतशशिसुधासीकरस्तबकतारकिततीराम् धिषणाग्निकार्यधूकधूसरितसैकतां, सिद्धविरचितबालुकालिङ्गलंघनत्रासविप्लुतविद्याधराम् निर्मोकमुक्तिमिव गगनोरगस्य लीलाललाटिकामिव त्रिविष्टपपिटस्य, विक्रयवीथीमिव पुण्यपण्यस्य दत्तार्गलामिव नरकनगरद्वारस्य, अंशुकोष्णीषपट्टिकाम् इव सुमेरुनृपस्य, दुकूलकदलिकामिव कैलासकुञ्जरस्य, पद्धतिमिवापवर्गस्य, नेमिमिव कृतयुगस्य, सप्तसागरराजमहिषीम् मन्दाकिनीमनुसरन्ती मर्त्यलोकमवततार।

अर्थ—सुषुम्णा नामक सूर्य की किरण से निकलने वाले चन्द्रमा के अमृत के गुच्छों के कारण नक्षत्रों के समान प्रतीत हो रहा है तट जिसका ऐसी गंगा जी, वृहस्पति के यज्ञ के धुएँ से मलिन किनारे वाली, सिद्धों के द्वारा निर्मित रेत के शिवलिङ्ग का अतिक्रमण हो जाने के भय से इधर उधर भाग रहे हैं। विद्याधर जाति के देवगण जिसके तट पर (ऐसी वह गंगा) वह आकाशगंगा गगन रूपी सांप की केंचुल के समान थी, स्वर्ग रूपी धूर्त पुरुष की विलासिता के मस्तक के समान थी मानो वह पुण्य रूपी बाजार की बिक्रय गली थी नरक रूपी नगर के द्वार की मानों वह गंगा अर्गला थी, मानो सुमेरु पर्वत रूपी राजा के शिर पर एक उत्तम बारीक बस्त्र से बनी हुई पगड़ी पर बंधी हुई पट्टिका हो, कैलास पर्वत रूपी हाथी की मानो वह गंगा झूल हो, मानो मुक्ति का मार्ग और सत् युग के रथ की धुरी हो, सात समुद्रों की पटरानी आकाश गंगा जी का अनुसरण करती हुई (सरस्वती जी) मृत्यलोक में उतरी।

संस्कृत-व्याख्या—सुषुम्णास्रुतशशिसुधासीकरस्तवकतारकिततीराम्—सुषुम्णा सूर्यस्य अमृतपूर्णकिरणस्य नाम वर्तते, तया अमृतमयकिरणेन, स्रुताः निपतिताः शशिनः चन्द्रमसः, सुधा अमृतं, तस्यः सुधायाः, सीकराः कणाः,

तेषां स्तवकाः गुच्छाः, तैः तारकितं, तीरः तट यस्याः सा तां, धिसणाग्निकार्यं धूमधूसरितसैकता—धिषणस्य सुरगुरोः, यत् अग्निकार्यं हवनादिकर्मं, तस्य यः धूमः तेन धूसरितं मलिनीभूतं, सैकतं वालुकामयं, तटं यस्याः सा तां, सिद्धविरचितबालुकालिङ्गलङ्घनत्रासविद्रुतविद्याधरां—सिद्धैः विरचितानि निर्मितानि यानि बालुकालिङ्गानि तेषां लङ्घनम् अतिक्रमण, तस्य, त्रासेन भयेन विद्रुताः अपसृताः विद्याधराः देवविशेषाः, यस्यां सा ताम्, गगनोरगस्य—गगनमेव उरगः सर्पः तस्य सर्पस्य, निर्मोकमुक्तिमिव सर्पत्वङ्मुक्तिमिव, त्रिविष्टपस्य त्रिविष्टपमेव स्वर्गमेव विटः विलासी पुरुषः तस्य, लीलाललाटिकामिव—लीलार्थं विलासाय ललाटिकामिव शिलोऽलङ्करणमिव, पुण्यपण्यस्य पुण्यमेव सुकृतमेवपण्यं विक्रेयं वस्तु, तस्य, विक्रयवीथीमिव हृदयमिव नरकनगरद्वारस्य नरकमेव नगरम्, तस्य द्वारस्य दत्तार्गलामिव—दत्तम् अर्गलं यया सा तामिव—सुमेरुनपस्य—सुमेरुः एतन्नामा पर्वतः एव नृपः राजा तस्य, अंशुकोष्णीषपट्टिकामिव—अंशुकस्य श्रेष्ठवस्त्रस्यउष्णीषपट्टिकामिव—उष्णीषस्य शिरोवेष्टनस्य पट्टिकामिव, कैलासकुञ्जरस्य कैलासः एतन्नामकः पर्वतः एव कुञ्जरः गजः तस्य गजस्य दुकुलदलिकामिव—दुकूलस्य क्षौमस्य दलिकामिव—पताकामिव, अपवर्गस्य मुक्तः, पद्धतिमिव, मार्गमिव, कृतयुगस्य सत्ययुगस्य, नेमिमिव धुरीमिव, सप्तसागरराजमहिषीमिव—सप्त च ते सागराः सप्तसागराः तेषां सप्तसागराणां राजमहिषीमिव प्रधानराज्ञीमिव, मन्दाकिनीम् आकाशगङ्गात् अनुसरन्ती अनुगच्छन्ती, मर्त्यलोकं भूलोकम् अवततार अवातरत्। आगच्छदित्यर्थः।

शब्दार्थ—सुषुम्णास्रुतशशिसुधासीकरस्तबकतारकिततीराम् = सुषुम्णा नामक सूर्य की किरण से निकले हुए चन्द्रमा के किरणों के गुच्छों से नक्षत्रों के समान प्रतीत होने वाली, धिषणाग्निकार्यधूमधूसरितसैकताम् = बृहस्पति के यज्ञ के धूम से मलिन तट से युक्त, सिद्धविरचितबालुकालिङ्गलङ्घनत्रासद्रुतविद्याधराम् = सिद्धों के द्वारा निर्मित शिवलिंग के अतिक्रमण के भय से इधर-उधर को भागते हुए विद्याधरों से युक्त तट वाली, गगनोरगस्य = आकाशरूपी साँप की निर्मोकमुक्तिमिव = केंचुल के समान, त्रिविष्टपविटस्य = स्वर्गरूपी धूर्त, विलासी पुरुष की, लीलापट्टिकामिव = विलास के लिये धारण किये हुए शिर के आभूषण के समान, विक्रयवीथीमिव दत्तार्गलामिव = बेचने योग्य वसुओं

की गली के समान, दत्तार्गलामिव=द्वार में बन्द करने के लिये लगाई जाने वाली अर्गला के समान, सुमेरुनृपस्य=सुमेरु पर्वतरूपी राजा की, उष्णीषपट्टिकामिव=शिर की पगड़ी के समान, कैलासकुञ्जरस्य=कैलासपर्वत रूपी हाथी की, दुकूलदलिकामिव=रेशमी वस्त्र की ध्वजा के समान, अपवर्गस्य=मोक्ष की, पद्धतिमिव=मार्ग के समान, कृतयुगस्य=सत्ययुग की, नेमिमिव=पहिये की धुरी के समान, सप्तसागरराजमहिषीमिव=सात सागरों की प्रधान रानी के समान, मन्दाकिनी=आकाश गंगाजी का, अनुसरन्ती=अनुगमन करती हुई, अवततार=(भूमण्डल में) उतर पड़ी।

अपश्यच्चाम्बरतलस्थितैव हारमिव वरुणस्य, अमृतनिर्झरमिव चन्द्राचलस्य, शशिमणिनिष्यन्दमिव विन्ध्यस्य, कर्पूरद्रुमद्रवप्रवाहमिव दण्डकारण्यस्य, लावण्यरसप्रस्रवणमिव दिशाम्, स्फटिकशिलापट्टशयनमिवाम्बरश्रियाः, स्वच्छशिशिरसुरसवारिपूर्णं भगवतः पितामहस्य अपत्यं हिरण्यवाहनामानं महानदम्, यं जनाः शोण इति कथयन्ति। दृष्ट्वा च तं रामणीयकहृतहृदया यस्यैव तीरे वासमरचयत्। उवाच च सावित्रीम्।

अर्थ—आकाश में उतर कर खड़ी हुई सरस्वती ने भगवान् ब्रह्माजी की सन्तान हिरण्यवाह नामक महानद को देखा, जिसको लोग शोण ऐसा कहते हैं, उसकी रमणीयता से आकृष्ट हृदय वाली सरस्वती ने उसको देखते ही उसी के किनारे—निवास स्थान बनाया, और सावित्री से बोली (वह महानद, कैसा था, उसका वर्णन निम्न प्रकार किया है, वह महानद वरुण के हार के समान, जो चन्दनरूपी पर्वत के अमृतरूपी झरने के समान विन्ध्य पर्वत के चन्द्रकान्त मणि के झरने के समान, दण्डक वन के कपूर वृक्ष के रस की धार के समान मानो वह दिशाओं की सुन्दरता रूपी जल के झरने के समान आकाश लक्ष्मी के स्फटिक के बने हुए सोने वाले शिलाखण्ड के समान; निर्मल और शीतल, मधुर (पेय) जल से परिपूर्ण था।

संस्कृत व्याख्या—अम्बरतलस्थितैव गगनतलस्थितैव, (महानदम् अपश्यत्

इति दूरेऽन्वयः) वरुणस्य, हारमिव मुक्ताहारमिव, चन्द्राचलस्य=चन्द्र एव अचलः पर्वतः तस्य अमृतनिर्झरमिव=सुधाधारामिव, विन्ध्यस्य एतन्नामकस्य पर्वतस्य, शशिमणिनिष्यन्दस्य शशिमणेः चन्द्रकान्तस्य, निष्यन्दमिव, दण्डकारण्यस्य दण्डकवनस्य, कर्पूरद्रुमद्रवप्रवाहमिव=कर्पूरनाम्नः वृक्षस्य, यः द्रवः रस तस्य धारामिव, प्रवाहमिव, दिशाम् आशानां लावण्यरसप्रस्रवणमिव लावण्यस्य सौन्दर्यस्य यः रसः जलं, तस्य, प्रस्रवणं प्रवाहमिव अम्वरश्रियाः गगनलक्ष्म्याः, स्फटिकशिलापट्टशयनमिव=स्फटिकं स्फाटिक मणिरचितं शिलापट्टं तदेव शयनं पर्यङ्कः तद्वत्, स्वच्छशिशिरसुरसवारिपूर्णं स्वच्छं विमल, शिशिरं शीतलं, सुरसं, मधुरं, च यद् वारि सलिल तन पूर्णम्—एतादृशं महानदं सरस्वती अपश्यत्। अपरञ्च महानदं दृष्ट्वा सावित्रीम् प्राह।

शब्दार्थ—शशिमणिनिष्यन्दमिव=चन्द्रकान्तमणि के झरने के समान, दण्डकारण्यस्य=दण्डकवन की, कर्पूरद्रुमद्रवप्रवाहमिव=कपूर के वृक्ष के रस की धार के समान, लावण्यरसप्रस्रवणमिव=सौन्दर्य रूपी जल के झरने समान, अम्बरश्रियाः=आकाश लक्ष्मी के, स्फटिकशिलापट्टशयनमिव=स्फटिक मणि के बने हुए शिलापट्ट से शयन के समान, स्वच्छशिशिरसुरसवारिपूर्ण=निर्मल और शीतल तथा मधुर (पेय) जल से परिपूर्ण, अपत्यं=सन्तान, रामणीयकहृतहृदया=मनोहरता से आकृष्ट हृदय वाली, वासम्=निवास, अरचयत्=बनाया।

सखि मधुरमयूरविरुतयः कुसुमपांशुपाटलसिकतिलपरुतलाः परिमलमत्तमधुपवेणीवीणारणितरमणीया रमयन्ति मां मन्दीकृतमन्दाकिनीद्युतेरस्य महानदस्योपकण्ठभूमयः। पक्षपाति च हृदयमत्रैव स्थातुं मे इति अभिनन्दितवचना च तथेति तया तस्य पश्चिमे तीरे समवातरत्। एकस्मिंश्च शुचौ शिलातलसनाथे तटलतामण्डपे गृहबुद्धिं बबन्ध। विश्रान्ता च नातिचिरादुत्थाय सावित्र्या सार्धमुच्चितार्चनकुसुमासस्नौ।

अर्थ—हे सखि सावित्रि, इस महानद के समीप के भूभाग मोरों की मधुर आवाज से सुशोभित हो रहे हैं, यहाँ के पेड़ों के नीचे की पराग बालू की राशि के समान एकत्रित हो गई है। पुष्प-पराग की सुगन्धि से मतवाले हुए भौंरों की

गुंजार वीणा के समान गूंज रही है, इस महानद के समक्ष आकाश गंगा जो की कान्ति भी मन्द प्रतीत हो रही है, ये रमणीय भूभाग मुझको आकर्षित कर रहे हैं। इस स्थान से प्रेम करने वाला मेरा हृदय भी यहीं रहना चाहता है, सावित्री जी ने सरस्वती के उपर्युक्त कथन का अनुमोदन करती हुई ने कहा कि ऐसा ही हो, और उस महानद के पश्चिमी किनारे पर उतर पड़ी। एक पवित्र शिलाखण्ड से युक्त किनारे पर स्थित लता मण्डप को घर बनाया। अधिक देर तक नहीं अर्थात् थोड़ी देर तक आराम करके उठ खड़ी हुई, और सावित्री के साथ पूजा के लिये पुष्प तोड़ करके स्नान किया।

संस्कृत व्याख्या—सखि ! सावित्री ! मधुराः कर्णप्रियाः मयूराणां केकिनां विरुतयः कूजनशब्दाः, यासु भूमिषु, ताः कुसुमपांशुपाटलसिकतिल तरुतलाः= कुसुमानां प्रसूनानां, पांशुपटलैः परागनिकरैः, सिकतिलं सिकतामयं, तरूणाम् पादपानां, तलम् नीचैः यासु ताः, परिमलमत्तमधुपवेणीवीणारणितरमणीयाः= परिमलेन परागसुगन्धिना, मत्ताः, ये, भ्रमराः अलयः, तेषां भ्रमराणां, वेणी-माला, पंक्तिः, एव वीणा तस्या रणितेन शब्देन, रमणीयाः आकर्षकाः, मन्दीकृतमन्दाकिनी, द्युतेः=मन्दीकृता अल्पीकृता, मन्दाकिन्याः सुरगङ्गायाः, द्युतिः प्रभा येन सः तस्य अस्ये अग्रेस्थितस्य, महानदस्य एतन्नामकस्य, उपकण्ठभूमयः पार्श्वभागाः, मां सरस्वतीं रमयन्ति आकर्षयन्ति अत्रैव अस्मिन्नेव स्थाने स्थातुं निवसितुं, मे मम, हृदयं चेतः, पक्षपाति स्नेहपूर्णं, वर्तते। तया सावित्र्या, तथेति एवमस्तु इत्येवं विधिना, अभिनन्दितवचना=अभिनन्दितं समर्थितं वचनं कथनं यस्याः सा एवम्भूता सरस्वती, तस्य महानदस्य पश्चिमे, तीरे तटे, समावरतत् अवतीर्णाऽभवत। अपरञ्च एकस्मिन्, शुचौ पावने, शिलातलसनाथेशिलासहिते, तटलतामण्डपे तटे तीरे यः लतामण्डपः लतागृहं तस्मिन् गृहबुद्धिं गृहं कर्तुं ववन्ध इच्छाञ्चकार, विश्रान्ता किञ्चित्क्षणं विराममधिगता, ततः, नातिचिरात् शीघ्रमेव, उत्थाय, सावित्र्या सार्धं साकम्, उच्चितार्चनकुसुमा उच्चितानि संग्रहीतानि अर्चनाय पूजार्थं कुसुमानि पुष्पाणि, यया सा एवम्भूता सरस्वती सस्नौ स्नानमकरोत्।

शब्दार्थ—मधुरमयूरविरुतयः=मनोहर मोरों के शब्दों से युक्त, कुसुम-पांशुपाटलसिकतिलतरुतलाः=पुष्प पराग की धूल से वृक्षों के नीचे के भाग धूसरित अर्थात् धूल-युक्त, परिमलमतमधुपवेणीवीणारणितरमणीयाः=पुष्प-

पराग की सुगन्धि से मतवाले भौंरों की पंक्ति रूपी वीणा के रमणीय शब्दों से युक्त, मन्दीकृतमन्दाकिनीद्युतेः=फीकी पड़ गई है आकाश गङ्गा की कान्ति जिसकी कान्ति के आगे। उपकण्ठभूमयः=समीप के स्थान। रस की धार के समान, शुचौ=पवित्र, शिलातलसनाथे=शिलाखण्ड से युक्त, गृहबुद्धि=घर बनाने का निर्णय, बबन्ध=किया, विश्रान्ता=आराम किया, च और, नातिचिरात्=शीघ्र, उत्थाया=उठकर, सावित्र्या सार्धं=सावित्रि के साथ, उच्चितार्चनकुसुमा=पूजा के लिए फूलों का संग्रह किया, सस्नौ=स्नान किया।

पुलिनपृष्ठप्रतिष्ठापितसैकतशिवलिङ्गा च भक्त्या परमया पञ्चब्रह्मपुरःसरां सम्यङ्मुद्राबन्धविहितपरिकराम् ध्रुवागीतिगर्भामवनिपवनवनगगनदहनतपनतुहिनकिरणयजमानमयी-मूर्त्तीरष्ट्रावपि ध्यायन्ती सुचिरमष्टपुष्पिकामदात। अयत्नोपनतेन फलसमूलेनामृतरसमप्यतिशिशयिषमाणेन च स्वादिम्ना शिशिरेण शोणवारिणा शरीरस्थितिमकरोत्। अतिवाहितदिवसा च तस्मिन्लतामण्डपशिलातले कल्पितपल्लवशयना सुष्वाप। अन्येद्यु रप्यनेनैव क्रमेण नक्तन्दिवमत्यवाह्यत्।

अर्थ—स्नान करने के बाद सरस्वती ने नदी के तट पर रेत के शिवलिंग की स्थापना की और अत्यन्त भक्ति से पाँच ब्रह्मा के स्वरूपों के साथ भलीभाँति अनेक मुद्राओं के लगाने के साथ-साथ पूजा की सामग्री से युक्त और ध्रुवागीति से युक्त पृथिवी वायु, जल, आकाश, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और यजमान स्वरूपा भगवान् शंकर जी की आठ मूर्तियों का बड़ी देर तक ध्यान करती हुई आठ फूलों को अर्पित किया (चढ़ाया)। परिश्रम के बिना स्वयं प्राप्त हुये अमृत को भी तिरस्कृत करने वाले अर्थात् अमृत से भी अधिक मधुर फलों के द्वारा, शोणनद के शीतल जल से शरीर स्थिति अर्थात् क्षुधाशान्त किया इस प्रकार की दिनचर्या के द्वारा उस दिन को व्यतीत किया और उसी लतामण्डप के अन्दर पड़ी हुई शिला पर पत्तों का बिस्तर बनाकर सो गई, दूसरे दिन भी इसी क्रम से दिन और रात को बिताया।

संस्कृत-व्याख्या—पुलिनपृष्ठप्रतिष्ठापितसैकतशिवलिंगं=पुलिनपृष्ठे शोणनन: तस्य तीरे, प्रतिष्ठापितं, सैकतं बालुकामयं, शिवलिङ्गं यया सा, परमया भक्त्या पञ्चब्रह्मपुरःसरा पञ्च ब्रह्माणि पुरः सराणि यस्यां सा ताम्, सम्यङ्मुद्राबन्धविहितपरिकार=सम्यक् समुचितरूपेण मुद्राणां चतुरशीति मुद्राणां, बन्धः साधनं, तेन विहितः परिकरः अर्चनवस्तु यया सा तां ध्रुवागीतिगर्भा ध्रुवा गीतिर्युक्ताम् अष्टावपि अष्टसंख्यकाः अपि अवनिपवनवनगगनदहनतपनतुहिनकिरणयाजमानमयीमूर्तीः=पृथ्वीवायुजलाकाशाग्निसूर्यचन्द्रमजमानस्वरूपाणि मूर्तीः शिवस्य अष्टं प्रतिमाः सुचिरं चिरकालं, ध्यायन्ती, अष्टपुष्पिकाम् अष्टौ अष्ट संख्यकानि पुष्पाणि प्रसूनानि, एव अष्टपुष्पिका ताम् अदात् समर्पितवती, समर्पयत् । अयत्नोपनतेन=अयत्नं परिश्रमं बिना स्वतः उपनतेन प्राप्तेन फलमूलेन कन्दमूलफलादिना, अमृतरसमपि सुधारसमपि अतिशिशयिषमाणेन तिरस्कर्तुं वाञ्छता, स्वादिम्ना स्वादिष्टेन, फलमूलेन, शिशिरेण अतिशैत्येन शोणस्य शोणनदाख्यस्य, वारिणा जलेन, शरीरस्थितिं शरीरयात्राम् अकरोत । अतिवाहितदिवसा च=अतिवाहितः व्यतीतः दिवसः वासरः यया सा, तस्मिन् शोणतटस्थिते, लतामण्डपशिलातले लतामण्डपस्य शिलातले शिलाखण्डोपरि, कल्पितपल्लवशयना=कल्पितं रचितं पल्लवैः शयनं विष्टरः, यया सा, सुष्वाप निद्रामवाप । अन्येद्युः अपरस्मिन् दिवसे दिने, अपि, अनेनैव क्रमेण नक्तन्दिवम् दिवारात्रम्, अत्यवाहयत् अति नीतवती अयापयत् ।

शब्दार्थ—पुलिनप्रतिष्ठापितसैकतशिवलिङ्गा=शोण नदी के किनारे स्थापित किये हैं अनेक रेत में शिवलिंग जिसने, वह सरस्वती, पञ्चब्रह्मपुरःसरा=ब्रह्मा के पाँच स्वरूपों की पूजा के साथ, ब्रह्मा के पाँच स्वरूप=(१) सद्योजात (२) वामदेव (३) तत्पुरुष (४) अघोर घोर (५) ईशान । सम्यङ्मुद्राबन्धविहितपरिकराम्=भलीभाँति मुद्राबन्ध आदि पूजा की सामग्री से युक्त, ध्रुवागीतिगर्भा=ध्रुवा नामक गीत से युक्त, अवनिपवनवनगगनदहनतुहिनकिरणयजमानमयीमूर्तीः=भूमि, वायु, जल, आकाश, सूर्य, चन्द्र और यजमान रूप (शंकर को) आठ मूर्तियों की । अष्टपुष्पिकां=आठ प्रकार के पुष्प, अयत्नोपनते=बिना परिश्रम के प्राप्त, अतिशिशयिषमाणेन=तिरस्कार करने की इच्छा करने वाले, स्वादिम्ना=स्वादिष्ट, अतिवाहितदिवसा=दिन व्यतीत किया, कल्पितपल्लवशयना=पत्तों का बिस्तर बनाया, नक्तन्दिवम्=रात और दिन, अत्यवाहयत्=बिताया ।

एवभतिक्रामत्सु दिवसेषु गच्छति च काले याममात्रोद्गते च रवावुत्तरस्यां ककुभि प्रतिशब्दपूरितवनगह्वरं गम्भीरतारतरं तुरङ्गह्लेशितह्लादमश्शृणोत्। उपजातकुतूहला च निर्गत्य लतामण्डपाद्विलोकयन्ती विकचकेतकीगर्भपत्रपाण्डरं रजः-संघातं नातिदवीयसि संमुखमापतन्तमपश्यत्।

अर्थ—इस प्रकार शोणनद के किनारे रहती हुई सरस्वती के कुछ दिन व्यतीत हुए अर्थात् कुछ समय बीत गया, एक दिन एक पहर दिन व्यतीत होने पर अर्थात् एक पहर, सूर्य के चढ़ जाने पर उत्तर दिशा की ओर अश्वों की घनघोर हिनहिनाहट को सुना, जिस हिनहिनाहट की प्रतिध्वनि से समस्त वन पूरित हो रहा था, ऐसी घोड़ों की भयंकर हिनहिनाहट की आवाज सुनी और आश्चर्यचकित होती हुई लतामण्डप से निकलकर तथा (चारों ओर) देखती हुई खिले हुये केवड़े के फूल के अन्दर पंखुड़ी के पत्त के समान सफेद, उड़ती हुई धूल के समूह को अधिक दूर नहीं अर्थात् समीप में आती हुई धूल को देखा।

संस्कृत-व्याख्या एवम् अनेन प्रकारेण, अतिक्रामत्सु व्यतीतेषु, दिवसेषु दिनेषु, च काले समये, गच्छति व्यतीते सति, याममात्रोद्गते च=याममात्रं प्रहरमात्रम् उद्गते निर्गते सति च, रवौ भास्करे, उत्तरस्यां ककुभि आशायां, प्रतिशब्दपुरितवनगह्वरं=प्रतिशब्देन प्रतिध्वनिना, पूरितं व्याप्तं, वनगह्वरं वनकन्दरा, येन सः तथाभूतं गम्भीरतारतरं गम्भीरात्युच्चं, तुरङ्गह्लेषितशब्दं =तुरङ्गाणां घोटकानां, ह्लेषितं तस्य ह्लादः ध्वनिः, तं ध्वनिम्, अश्शृणोत् शुश्राव, उपजातकुतूहला=उपजातं समुपन्नं, कुतुहलम् आश्चर्यम् य स्याः सा, लतामण्डपात् लतागृहात्, निर्गत्य बहिरागत्य, विलोकयन्ती दृष्टिमितस्ततः प्रक्षिपन्ती, विकचकेतकीगर्भपत्रपाण्डुरं विकचा विकसिता, या, केतकी, तस्या गर्भे अन्त यत् पत्रं, तद्वत् पाण्डुरं शुभ्रवर्णं रजःसंघातम्, धूलिसमूहम्, नातिदवीयसि नात्यधिकदूरे पार्श्वं एवास्ति इतिभावः, सम्मुखम् समक्षम् आगच्छन्तम् आपतन्तम् अपश्यत्।

शब्दार्थ-ककुभि=दिशा में, प्रतिशब्दपूरितवनगह्वरं=प्रतिध्वनि से वन को गुंजित करने वाली, गम्भीरतारतरम्=अत्यन्त गम्भीर, तुरङ्गह्लेषितह्लादम्=

घोड़ों के हिनहिनाहट के शब्द को, उपजातकुतूहला—उत्पन्न हो गया है आश्चर्य जिसको ऐसी यह (सरस्वती) विकचकेतकीगर्भ—पांडुरं=खिले हुए केवड़े के फूल के अन्दर के पत्ते के समान, रजःसंघातम्=धूलि के समूह को, नातिदवीयसि=अधिक दूर नहीं अर्थात् समीप, आपतन्तम्=आते हुए।

क्रमेण च सामीप्योपजायमानाभिव्यक्ति तस्मिन्महति शफरोदरधूसरे रजसि पयसीव मकरचक्रं प्लवमानं पुरःप्रधावमानेन, प्रलम्बकुटिलकचपल्लवघटितललाटजूटकेन, धवलदन्तपत्रिकाद्युतिहसितकपोलभित्तिना, पिनद्धकृष्णागुरुपङ्ककल्कच्छुरणकृष्णशबलकषायकंचुकेन, उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन, वामप्रकोष्ठनिविष्टस्पष्टहाटककटकेन, द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना, अनवरतव्यायामकृतकर्कशशरीरेण, वातहरिणयूथेनेव मुहुर्मुहुः खमुड्डीयमानेन, लङ्घितसमविषमावटविटपेन, कोणधारिणा, कृपाणपाणिना, सेवागृहीतविविधवनकुसुमफलमूलपर्णेन, 'चल चल, याहि, याहि, अपसर्पापसर्प, पुरःप्रयच्छ पन्थानम्' इत्यनवरतकृतकलकलेन युवप्रायेण, सहस्रमात्रेण पदातिबलेन सनाथमश्ववृन्दं संददर्श।

अर्थ—जब क्रमशः सरस्वती जी और अधिक समीप पहुंची, तो मीन के उदर के समान मटमैले रंग वाले धूलि समूह के बीच में लगभग हजार युवा पुरुषों की पैदल सेना के साथ घोड़े ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो (वे घोड़े) जल के मध्य मगर तैर रहे हों, पैदल सेना में हजारों युवा पुरुष दौड़ते हुए आ रहे थे, उन सबके शिर घुंघराले बालरूपी नवीन पत्तों से युक्त जटा समूहों से सुशोभित हो रहे थे। हाथी दांत के बने हुए कान के सफेद आभूषणों की कान्ति से कपोलस्थल चमक रहे थे, काले अगरु के चूर्ण से काले, तथा चित्र-विचित्र रंग वाले लाल कंचुक वस्त्र को धारण किये हुये थे, और शिरों पर लाल उष्णीष (पगड़ी) बांधे हुए थे, बायें हाथ की कलाइयों में उज्ज्वल सोने

के कड़े पहने हुए थे, उनके कमर में दुहरे कपड़े को (लपेटकर) गांठ लगी थी और उनके कमर में बंधे हुए कपड़े में छुरियाँ बंधी हुई थीं, निरन्तर कसरत करते रहने के कारण उनके शरीर कठोर हो रहे थे, वायु के समान तेजी से चलने वाले हिरनों के समान मानो वे गगन-मण्डल में उड़ रहे हों, वे ऊंची-नीची भूमि और गड्ढों को वृक्ष तथा वृक्ष की शाखाओं को ढकते हुए चल रहे थे, कुछ लोग डण्डों को लिये हुए थे, और कुछ तलवार को धारण किए हुए थे, सेवा के लिए अनेक प्रकार के वन्य पुरुष, कन्द, मूल, फल और पत्ते धारण किये हुये थे, चलो चलो, जाओ जाओ, भागो भागो, आगे रास्ता दो इस प्रकार निरन्तर कोलाहल करते हुए पैदल हजारों युवा पुरुषों से युक्त घोड़ों के समूह को देखा।

संस्कृत-व्याख्या—क्रमेण, सामीप्योजायमानाभिव्यक्ति=सामीप्येन पार्श्वेण, उपजायमाना स्पष्ट गता, अभिव्यक्तिः प्रतीतिः यस्य तत् तस्मिन्, शफरोदर-धूसरे=शफरस्य मीनस्य उदर इव धूसरं मलिनं यस्य तत तस्मिन् रजसि धूलौ, पयसि अम्भसि, प्लवमानं तरन्तं मकरचक्रं=मकराणां ग्रहाणाम्, चक्रं समूहम्, इव, पुरः अग्रे, प्रधावमानेन अपसरता प्रलम्बकुटिलकच-पल्लवघटित-ललाटजूटकेन=प्रलम्बाः विशालाः कुटिलाः कुञ्चिताः कचाः केशाः एव पल्लवाः तैः घटित निर्मितं ललाटे मस्तके, जूटकं जटाकलापः यस्य सः तेन, धवला शुभ्रा, या दन्तपत्रिका गजदन्तकर्णभूषणम् तस्याः द्युतिः कान्तिः, तया हसिताः चमत्कृता कपोलयोः—गण्डस्थलयोः भित्तिः यस्य तत तेन, पिनद्ध-कृष्णागुरुपङ्ककलकच्छुरणकृष्णशवलकषायकञ्चुकेन = पिनद्धः बद्धः कृष्णा-गुरुणोः, पङ्कः, तस्य कल्कः चूर्णः, तस्य छुरणात् सुगन्धेः कृष्णेन कृष्णवर्णेन, शबलं विचित्रं, कषायं, कञ्चुकं वस्त्रं यस्य तत् तेन, उत्तरीयकृतशिरो वेष्ट-नेन=उत्तरीयेण उत्तरीयाञ्चलेन, उपवस्त्रेण, कृतं विहितं, शिरो वेष्टनं येन तत् तेन, वाम प्रकोष्ठा निविष्टस्पष्ट हाटक कटकेन=वाम प्रकोष्ठे, निविष्टं धृतं, स्पष्टं, यथा स्यात्तया हाटकस्य हेम्नः, कटकं वलयः येन तत् तेन, द्विगुण पट्टपट्टिकागाढग्रथितासिधेनुना=द्विगुणः यः पट्टः कटिवस्त्रं तस्य पट्टिका तस्याः गाढेन, दृढेन, ग्रन्थिना, ग्रथिता बद्धा, असिधेनु छुरिका, येन तत् तेन, अनवरतव्यायामकृशकर्कशशरीरेण=अनवरतं निरन्तरम्, व्यायामः, तेन कृशं दुर्बलं, कर्कशं कठिनं, शरीरं वपुः यस्य तत् तेन, वातहरिणयूथेनेव पवनमृग-

समूहेन इव, मुहुर्मुहुः, वारम्बारं, खम् गगनम् उड्डीयमानेन उत्पतनेन लङ्घित-समविषमाटवविटपेन=लङ्घिताः अति क्रान्ताः समाः विषमाः उच्चावचप्रदेशाः, अवटाः गर्ताः, विटपाः वृक्षाः येन तत् तेन, कोणधारिणा लगुडधारिणा, कृपाणपाणिना=कृपाणः असिः पाणौ यस्य तत् तेन, सेवागृहीतविविधवन-कुसुम फलमूलपर्णेन=सेवार्थं, गृहीतानि धृतानि विविधानि अनेक प्रकाराणि, वनानम्, अरण्यानां, कुसुमानि पुष्पाणि, मूलानि, पर्णानि पत्राणि येन तत् तेन, अनवरतकृतकलकलेन अनवरतं सततं, कृतः, कलकलः, कोलाहलः, येन तत् तेन, युवाप्रायेण युवानः युवकाः प्रायः आधिक्येन, तस्मिन् तत् तेन, पदातिवलेन पादचारिणा सैन्येन, सनाथं युक्तम्, अश्ववृन्दम् घोटकनिकरं, संददर्श=अवलोकयामास।

शब्दार्थ—सामीप्योजायमानाभिव्यक्ति=पास में पहुंचने पर स्पष्ट दिखाई पड़ने वाले, शफरोदरःधूसरे=मछली के पेट के समान मटमैले, पयसि=जल में, प्लवमानं=तैरते हुए, मकरचक्रमिव=मगर समूह के समान, प्रधावमानेन=दौड़ते हुए, प्रलम्ब कुटिलकचपल्लवघटितललाटजूटकेन=शिर में लम्बे, और घुँघुराले केश रूपी नवीन पत्ते से निर्मित जटा समूह से सुशोभित, धवलदन्तपत्रिकाद्युतिहसितकपोलभित्तिना=हाथी के सफेद दाँतों के बने हुए कान के आभूषण की कान्ति के समान चमकने वाली कपोलों की कान्ति से युक्त, पिनद्ध-कृष्णागुरुपङ्ककल्कच्छुरणकृष्णशवलकषायकञ्चुकेन=काली अगुरु के चूर्ण से काले और छींट जैसे रंग वाले विचित्र तथा सुगन्धियुक्त कंचुकवस्त्र को धारण करने वाले, उत्तरीयकृत शिरोवेष्टनेन=उत्तरीय वस्त्र को शिर में लपेटे हुए, वामप्रकोष्ठनिविष्ट स्पष्ट हाटक कटकेन=वायें हाथ की कलाई में सोने के कड़े को पहने हुये, द्विगुण पट्ट पट्टिका गाढग्रन्थि ग्रथितासिधेनुना=दुहरे कपड़े की कमर में बंधी हुई मजबूत गाँठ (वाले कपड़े में) में छुरी लगाये हुये, अनवरत व्यायामकृतकर्कशशरीरेण=निरन्तर कसरत करने से दुबले शरीर वाले, मुहःमुहः=बार बार, खम्=आकाश को, उड्डीयमानेन=उड़ने वाले, वातहरिणयूथेनेव=हृदय के साथ तेज चलने वाले मृग समूह के समान, लङ्घितसमविषमावटविटपेन=ऊँचे नीचे गड्ढों पेड़ों और झाड़ियों को लाँघने वाले, कोणधारिणा=डण्डे धारण करने वाले, सेवागृहीतविविधवनकुसुम-फलमूलपर्णे=सेवा के लिए अनेक प्रकार के जंगली फूल, फल, कन्दमूल और

पत्तों को लिए हुए, याहि याहि=जाओ जाओ, अपसर्पअपसर्प=भागो भागो।

मध्ये च तस्य सार्धचन्द्रेण मुक्ताफलजालमालिना विविध-रत्नखण्डखचितेन शंखक्षीरफेनपाण्डुरेण क्षीरोदनेव स्वयं लक्ष्मीं दातुमागतेन गगनगतेनातपत्रेण कृतच्छायम्, अच्छाच्छेनाभरणद्युतीनां निवहेन दिशामिव दर्शनानुरागलग्नेन चक्रवाकेनानुगम्यमानम्, आनितम्बलम्बिन्या मालतीशेखरस्रजा सकलभुवनविजयार्जितया रूपपताकयेव विराजमानम्, उत्सर्पिभिः शिखंडखंडिकापद्मरागमणेररुणैरंशुजालैरदृश्यमानवनदेवताविधृतैर्बालपल्लवैरिव प्रमृज्यमानमार्गरेण परुषवपषम्।

अर्थ—उस युवा पुरुषों की सेना के मध्य में सरस्वती जी ने एक अठारह वर्ष की आयु वाले, घोड़े पर सवार युवक को देखा, जो अर्ध चन्द्राकार मोतियों के हार को धारण किये हुए था, और उसके ऊपर अनेक प्रकार के रत्नों से जटित, शंख तथा दूध के फेन के समान सफेद छत्र को धारण किये हुए था, वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो लक्ष्मी जी को छत्र प्रदान करने के लिए स्वयं आया हुआ क्षीरसागर ही आकाश मण्डल में छाया कर रहा हो, आभूषणों की अत्यन्त स्वच्छ किरणें, इस प्रकार उसका अनुगमन कर रहीं थीं, मानो उसके दर्शन के प्रेम से समस्त दिशायें एकत्रित होकर पीछा कर रही हों, चमेली के फूलों की माला उसके नितम्ब पर्यन्त लटक रही थी मानों वह तीनों लोकों को जीतने से प्राप्त रूप (सौन्दर्य) की ध्वजा से अलंकृत हो रहा हो, शिखण्ड खण्डिका नामक शिर में धारण किए हुए आभूषण में जटित पद्मराग-मणि की लाल किरणें बिखरी हुई ऐसी प्रतीत हो रही थीं, मानो अदृश्य बन देवता नवीन कोंपलों के द्वारा रास्ते की धूल से धूसरित उसके शरीर को साफ कर रहा हो।

संस्कृत-व्याख्या—तस्य युवासैन्यस्य मध्ये सरस्वती अष्टादशवर्षीयं युवकमपश्यत्—इति दूरेऽन्वयः, सार्धचन्द्रेण अर्धचन्द्रसहितेन मुक्ताफलजालमालिना =मुक्ताफलानां मौक्तिकानां, जालं निकरः, तेषां, माला मुक्ताहारः, अस्या-

स्तौति तेन विविधरत्नखण्डखचितेन=विविधानाम् अनेकप्रकाराणं, रत्नानां, खण्डा: ता: खचितेन निर्मितेन, शंखक्षीरफेनपाण्डुरेण=शंख:, क्षीरं, दुग्धं, तस्य, फेन:, तद्वत्, पाण्डुरं शुभ्रवर्णं तेन, क्षीरोदेनेव क्षीरसमुद्रेणेव स्वयम् आत्मना दातुम् उपहर्तुम्, आगतेन समायातेन, गगनगतेन आकाशस्थितेन, आतपत्रेण छत्रेण, कृतच्छायम्=कृता छाया यस्य स: तम्। अच्छाच्छेन=अतिशयेन अच्छमिति अच्छाच्छम् अत्यन्तं निर्मलं, तेन, आभरणद्युतीनाम्=आभरणानाम् अलङ्करणानां द्युतय: प्रभा: तासां, निवहेन निकरेण, दर्शनानुरागलग्नेन=दर्शनस्य य: अनुराग: प्रेम, तेन, लग्नेन व्याप्तेन, दिशाम् पूर्वाचाद्यानां चक्रवाकेन समूहेन, अनुगम्यमानाम् अनुगच्छन्तम्, आनितम्बलम्बिन्या=नितम्बपर्यन्तम् लम्बते इति आनितम्बलम्बिनी तया, मालतीशेखरस्रजा=मालत्या एतन्नामकेन, पुष्पेण, रचितं, शेखरं शिरोऽलङ्करणं यस्य, स्रजा मालत्या, सकलभुवनविजयार्जितया=सकलभुवनानां लोकत्रयाणां, विजयेन, अर्जिता प्राप्ता, तया, रूपपताकयेव सौन्दर्यध्वजेनेव, विराजमानम्, शोभमानम् उत्सर्पिभि: उर्ध्वविसरणशीलै: शिखण्डखण्डिका एतन्नामकं शिरोऽभूषणं, तत्र य: पद्मरागमणि:, तस्य, अरुणै:, रक्तवर्णै:, अंशसमूहै: किरणनिकरै:, अदृश्यमानवन-देवताविधृतै:=अदृश्यमाना: या: वनदेवता:, ताभि: अलक्ष्यवनदेवताभि:, विधृतै: धारितै:, बालपल्लवै: नूतनकिसलयै:, इव, प्रमृज्यमान - मार्गरेणुपरुषवपुषम्=प्रमृज्यमान: दुरीक्रियमाण:, मार्गस्य रेणु: धूलि: तेन परुषं रुक्षं वपु: शरीरं, यस्य स: तेन युवकेन।

शब्दार्थ—मुक्ताफलजालमालिना=मोतियों की माला से सुशोभित, विविधरत्नखण्डखचितेन=अनेक प्रकार के रत्नों के खण्डों से जटित, शङ्खक्षीरफेनपाण्डुरेण=शंख, क्षीरसागर के फेन के समान श्वेत वर्ण, गगनगतेन=आकाशस्थित, आतपत्रेण=छत्र से, कृतच्छायम्=छाया किये हुए, अच्छाच्छेन=अत्यन्त निर्मल, आभरणद्युतीनाम्=आभूषणों की किरणों के, निवहेन=समूह से, दर्शनानुरागलग्नेन=देखने के प्रेम से लगे हुए, चक्रवाकेन=समूह के द्वारा, आनितम्बलम्बिन्या=नितम्बों तक लटकने वाला, मालतीशेखरस्रजा=चमेली के फूलों की माला, सकलभुवनविजयार्जितया=समस्त भुवनों को जीतने से प्राप्त, रूपपताकयेव=रूप (सौन्दर्य) रूपी पताका के समान, उत्सर्पिभि:=ऊपर को फैलने वाली, शिखण्डखण्डिकपद्मरागमणे=शिखण्ड खण्डिका नामक

शिर के आभूषण में जटित पद्मराग मणि की, अरुणैः=लाल, अदृश्यमान वनदेवता विधृतैः=दिखाई न पड़ने वाली वन देवता के द्वारा धारण किये हुए, बालपल्लवैः=नवीन कोपलों से, प्रमृज्यमानमार्गरेणुपरुषवपुषम्=रास्ते की धूलि से धूसरित (मलिन) शरीर को झाड़ रही हो।

बकुलकुड्मलमंडलीमुंडमालामंडनमनोहरेण कुटिलकुन्तलस्तबकमालिना मौलिना मोलितातपं पिबन्तमिव दिवसम्, पशुपतिजटामुकुटमृगाङ्कद्वितीयशकलघटितस्येव ससजलक्ष्मीसमालिङ्गितस्य ललाटपट्टस्य मनःशिलापङ्कपिङ्गलेन लावण्येन लिम्पन्तमिवान्तरिक्षम्; अभिनवयौवनारम्भावष्टम्भप्रगल्भदृष्टिपाततृणीकृतत्रिभुवनस्य चक्षुषः प्रथिम्ना विकचकुमुदकुवलयकमलसरः सहस्रसंछादितदशदिशं शरदमिव प्रवर्तयन्तम्, आयतनयननदीसीमान्तसेतुबन्धेन ललाटतटशशिमणिशिलातलगलितेन कान्तिसलिलस्रोतसेव द्राघीयसा नासावंशेन शोभमानम्।

अर्थ—मौलसरी की कलिकाओं से निर्मित मुण्डमाला से आकर्षक, तथा, कुन्तल बालों के गुच्छों से सुशोभित अपने शिर से सूर्य की धूप को तिरस्कृत (मन्द) करता हुआ मानो वह युवा पुरुष दिन को पी रहा हो। भगवान् शिव के जटासमूह में लगे हुए मुकुट रूप इन्द्र के दूसरे खण्ड से मानो उसका मस्तक बनाया गया हो, वह स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मैनसिल (मनः शिला) के समान पीतवर्ण लावण्य स आकाश को लीप रहा हो, वह नवीन युवावस्था के प्रारम्भ में अहंकारपूर्ण और उद्धत दृष्टि वाली अपनी आँखों से संसार को तृण के समान समझ रहा था, बड़ी-बड़ी आँखों से मानो वह कुमुद, नीलकमल, और कमलों से परिपूर्ण हजारों जलाशयों को आच्छादित करने वाली शरद् ऋतु को परिवर्तित कर रहा था, और वह बड़ी-बड़ी आँखों रूपी नदियों का विभाग करने के लिए सेतु बन्धन के स्थान पर स्थित, और मस्तक रूपी चन्द्रकान्त मणि से गिरती हुई कान्ति रूपी जल की धारा के समान स्थित विशाल नाक रूपी बाँस से सुशोभित था।

संस्कृत-व्याख्या—बकुलकुड्मलमण्डलीमुण्डमालामण्डनमनोहरेण = बकुल कुड्मलानाम् बकुलपुष्पकलिकानां, मण्डली निकरः, एव, मुण्डमाला शिरोमाला, तया, मण्डनम् अलङ्करणं, तेनः मनोहरेण सुन्दरेण, कुटिलकुन्तलस्तवकमालिना =कुटिलाः कुन्तलाः कचाः, एव स्तवकाः गुच्छाः, तेषां माला समुदायः अस्यास्तीति तेन, मौलिना शिरोऽलङ्करेण, मीलितातप=मीलितम् दूरीकृतः आतपः सूर्यतापः येन सः तं, दिवसं सूर्यप्रकाशं, पिबन्तमिव पीयमानमिव, पशुपतिजटामुकुटमृगाङ्कद्वितीयशकलघटितस्येव=पशुपतेः शिवस्य जटामुकुटभूतः यः मृगाङ्कः चन्द्रः तस्य द्वितीयम् अपरं, शकलं खण्डः, तेन, घटित निर्मित, तस्य इव, सहजलक्ष्मीसमालिङ्गितस्य=सहजा अकृत्रिमा या लक्ष्मीः शोभा तया समालिङ्गितस्य=व्याप्तस्य ललाटपट्टस्य मस्तकस्य मनः शिलापङ्कपिङ्गलेन= मनःशिल एतन्नामाधातुविशेषः, तस्य पङ्कः चूर्णः तद्वत् पिङ्गल पीतवर्णः, तेन, लावण्येन सौन्दर्येण, अन्तरिक्षं गगनं, लिम्पन्तमिव अनुरञ्जन्तमिव, अभिनव-यौवनारम्भावष्टम्भप्रगल्भदृष्टिपाततृणीकृतत्रिभुवनस्य=अभिनवं नवीनं, च यत् यौवनं तारुण्यं, तस्य आरम्भः तेन, अवष्टम्भः अहङ्कारः, तेन, प्रगल्भः गम्भीरः, यः दृष्टिपातः दृष्टिप्रक्षेपः तेनः तृणीकृतं त्रिभुवनं येन तत् तस्य, चक्षुषः नयनस्य, प्रथिम्ना विशालत्वेन, विकच-कुमुदकुवलयकमलसरः सहस्रसंछादितदिशं= विकचितानि प्रफुल्लानि, कुमुदानि, एतन्नामकानि पुष्पाणि, कुवलयानि नील-कमलानि, कमलानि च तेषां सरः सहस्रैः जलाशयसमूहैः, संछादिता आवृता, दशदिशः आशाः, यया सा तां शरदं शरदृतुम् प्रवर्त्तयन्तमिव आविष्कुर्वन्तमिव आयतनयन नदी सीमान्तसेतुबन्धेन=आयते दीर्घे नयने लोचने, एव नद्यौ तयोः सीमान्तः सीमाप्रदेशः तस्मिन् सेतुबन्धः तेन, ललाटतशशिमणिशिलातलगलितेन =ललाटतटमेव मस्तकस्थलमेव शशिमणिशिलातलम् चन्द्रकान्तमणितलं तस्यात् गलितं प्रवहत् तेन कान्तिसलिलस्रोतसैव=कान्तिरेव सलिलं जलं तस्य स्रोतसा प्रवाहेण इव, द्रघीयसा विशालतरेण, नासावंशेन नासिका रूपवंशेन, शोभमानं देदीप्यमानम् ।

शब्दार्थ—बकुलकुड्मलमण्डलीमुण्डमालामण्डनमनोहरेण=बकुल (मौल-सिरी) की कलियों रूपी शिर के माला से सुन्दर, कुटिलकुन्तलस्तवकमालिना= घुंघराले बालों के समूह से सुशोभित । पशुपतिजटामुकुटमृगाङ्कद्वितीयशकल-घटितस्येव=शंकर जी के शिर में मुकुट रूप चन्द्रमा के दूसरे खण्ड से बने हुए

के समान, सहजलक्ष्मीसमालिङ्गितस्य=स्वाभाविक शोभा से युक्त, मनःशिला-पङ्कपिङ्गलेन=मैनसिल (मनः शिला) के समान पीत वर्ण अभिनव यौवना-रम्भावष्टम्भप्रगल्भदृष्टिपाततृणीकृतत्रिभुवनस्य=नई युवावस्था के आरम्भ के अहंकार से धृष्ट दृष्टि के द्वारा तीनों लोकों को तृण के समान समझने वाले, चक्षुषः=नेत्र की, प्रथिम्ना=विशालता से, विकचकुमुदकुवलयकमलसरःसहस्र-संच्छादितदशदिशं=मानो वह कुमुद, नील कमल और कमलों, से परिपूर्ण, हजारों तालाबों से चारों दिशाओं को ढकने वाली शरद् ऋतु को प्रकट कर रहा हो। आयतनयननदीर्घसीमान्तसेतुबन्धेन=बड़ी-बड़ी विशाल आँखों रूपी नदियों के विभाग करने से सेतुबन्ध के समान स्थित, ललाटतटशशिमणिशिला-तलगलितेन=मस्तकरूपी चन्द्रकान्त मणि से गिरते हुए कान्ति रूपी जल की धारा के समान स्थित, द्राघीयसा=विशाल, नासावंशेन=नाक रूपी बाँस से, शोभमानं=सुशोभित।

अतिसुरभिसहकारकर्पूरकक्कोललवङ्गपारिजातकपरिमल-मुचामत्तमधुकरकुलकोलाहलमुखरेण मुखेन सनन्दनवनं वसन्त-मिवावतारयन्तं, आसन्नसुहृत्परिहासभावनोत्तानितमुखमुग्ध-हसितैर्दशनज्योत्स्नास्नपितदिङ्मुखैः पुनःपुनर्नभसि संचारिणं चन्द्रलोकमिव कल्पयन्तम्, कदम्बमुकुलस्थूलमुक्ताफलयुगल-मध्याध्याध्यासितमरकतस्य त्रिकण्टककर्णाभरणस्य प्रेङ्खतः प्रभया समुत्सर्पन्त्याक्रान्तसकुसुमहरितकुन्दपल्लवकर्णावतंसमि-वोपलक्ष्यमाणम्, आमोदितमृगमदपङ्कलिखितपत्रभङ्गभास्वरम्, भुजयुगलमुद्दाममकराक्रान्तशिखरमिव मकरकेतुकेतोः दण्डद्वयं दधानम्, धवलब्रह्मसूत्रसीमन्तितं सागरमथनसामर्षगङ्गास्रोतः संदानितमिव मन्दरं देहमुद्वहन्तम्, कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरण-पांसुलेनेव कांतोच्चकुचचक्रवाकयुगलविपुलपुलिनेनोरः स्थलेन-स्थूलभुजायामपुञ्जितम्, पुरो विस्तारयन्तमिव दिक्चक्रम्।

अर्थ—अत्यन्त सुगन्धित आम, कपूर, कंकोल, लौंग और पारिजात की सुगन्धि के समान सुगन्धि उसके मुख से निकल रही थी, उसके मुख पर मत्त भौंरे (इस प्रकार) गुंजार रहे थे मानो भ्रमरों के गुंजार से मुखरित मुख से नन्दन वन में युक्त वसन्त ऋतु को ही वमन कर (निकाल) रहा था, समीपवर्ती मित्रों के साथ हसी की भावना -पर को मुख करके हंसता था तो उसकी मनोहर हंसी से और दाँतों की कान्ति से दिशाओं के मुख धुल (चमक) जाते थे, और फिर मानो वह आकाश में चल अर्थात् संचरणशील चन्द्रलोक की रचना कर रहा था। कदम्ब पुष्प की कलिका की तरह दो स्थूल मोतियों के मध्य में मरकत मणि अ जुड़ा हुआ कान में (धारण किये हुये) चंचल त्रिकंटक नाम के आभूषण की फैलती हुई कान्ति से ऐसा प्रतीत होता था मानो उसने पुष्प सहित कुन्द से हरित (नूतन) पल्लवों का कर्णाभूषण बनाया हो, सुगन्धित कस्तूरी के चूर्ण (लेप) से तथा रचना विशेष से उसके दोनों हाथ ऐसे चमक रहे थे मानो मकरांकित कामदेव का पताका के दो दण्डों को धारण कर रहा था, उसके शरीर पर सफेद यज्ञोपवीत ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो समुद्र-मन्थन से क्षुद्ध हुई गंगाजी की धारा से वेष्टित मन्दराचल हो, कपूर चूर्ण के लेप से धूसरित और कामिनी के ऊँचे स्तनरूपी चक्रवाक युगल के लिये विस्तृत तट भूमि रूप स्थूल हाथों के मध्य में एकत्रित हुए दिशाओं के समान विशाल वक्षःस्थल को आगे फैला रहा था।

संस्कृत-व्याख्या—अतिसुरभिसहकारकर्पूरकङ्कोललवङ्गपारिजातकपरिमलमुचा =अति सुरभिः अतीव सुगन्धियुक्तः, यः सहकारः रसालः, कर्पूरः घनसारः, कङ्कोलम् एतन्नामकं द्रव्यविशेष, लवङ्गं, पारिजातकं, तेषां रसाल कर्पूरादीनाम् परिमलं सुगन्धं, मुञ्चतीति तेन. मत्तमधुकरकुलकोलाहलमुखरेण =मत्ताः, ये, मधुकराः भ्रमराः तेषां मधुकरानां कुलं समूहः तस्य, कोलाहलेन मुखरःशब्दायमानः तेन, मुखेन, आननेन, सनन्दनवनं नन्दनवनयुक्तं, वनं वसन्तम् मधुमासम्, अवतारयन्तमिव निपातयन्तमिव, आसन्नसुहृत्परिहासभावनोत्तानितमुखमुग्धहसितैः=आसन्नः समीपवर्तिनः, ये, सुहृदः सखायः, तेषां मित्राणां परिहासभावेन परिहासभावनया, उत्तानितम् ऊपरिकृतं यत् मुखम् आननं तस्य मुखस्य

मुग्धानि मनोहराणि, यानि स्मितानि हास्यभावाः, तैः हासैः दशनज्योत्स्नास्नपितदिङ्मुखैः=दशनानां दन्तानां, ज्योत्स्नया कान्त्या स्नपितानि क्षालितानि दिशाम् आशानां, मुखानि आननानि यैः तानि तैः दिङ्मुखैः, पुनः पुनः भूयोभूयः नभसि गगने, सञ्चारिणं सञ्चरणशीलं चन्द्रलोकं=चन्द्रस्य शशिनः आलोकं प्रकाशम् इव, कल्पयन्तं रचयन्तं, कदम्बमुकुलस्थूलमुक्ताफलयुगलमध्याध्यासितमरकतस्य=कदम्बस्य एतन्नामकस्य वृक्षविशेषस्य, मुकुलः पुष्पकलिका तद्वत् स्थूले विशाले ये मुक्ताफलयुगले, तयोः मुक्ताफलयोः मध्य अध्यासितं स्थितं मरकतं यस्य तत् तस्य मरकतस्य, प्रेङ्खतः चपलस्य, त्रिकण्टककर्णाभरणस्य=त्रिकण्टकं यत् कर्णाभरणं तस्य त्रिकण्टकनामककर्णाभूषणस्य, समुत्सर्पन्त्या प्रसरणशीलया, प्रभया कान्त्या, कृतसकुसुमहरितकुन्दपल्लवकर्णावतंसमिव=कृतः विहितः, कुसुमेन, सहितः सुकुसुम, हरितः श्यामवर्णः कुन्दपल्लवस्य कुन्दाख्यकिसलयस्य, कर्णावतंसः कर्णभूषणं, यस्य सः तम् इव, उपलक्ष्यमाणं प्रतीयमानम्, आमोदितमृगमदपङ्कलिखितपत्रभङ्गभास्वरं=आमोदितः सुरभितः,

यः, मृगमदः कस्तूरिका, तस्य, पङ्कः लेपः, तेन, लिखितः कृतः, पत्रभङ्गः रचनाविशेषः, तेन भास्वरं देदीप्यमानम्, उद्दाममकराक्रान्तशिखरमिव=उद्दामः उत्कटः यः मकरः, तेन, आक्रान्त चिह्नत, शिखरम् अग्रभागः यस्य तत्, भुजयुगलं पाणिद्वयं, दधानम् वहन्तं, धवलब्रह्मसूत्रसीमन्तितं=धवलेन श्वेतेन ब्रह्मसूत्रेण यज्ञोपवीतेन, सीमन्तितं सुशोभितं, सागरमथनसामर्षगङ्गास्रोतः—संदानितं=सागरस्य समुद्रस्य मथनेन, सामर्षा क्रोधयुक्ता, या, गङ्गा तस्याः स्रोतोभिः धाराभिः, सन्दानितम् परिभ्रान्तं, मन्दरमिव मन्दराख्यपर्वतमिव, देहं वपुः, उद्वहन्तं, दधानं, कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरणपांशुलेनेव=कर्पूरस्य, क्षोदः चूर्णं, तस्य, मुष्टिः तस्य छुरणेन पङ्केन, पांशुलं धूलिव्याप्तं तेन इव, कान्तोच्चकुचचक्रवाकयुगलविपुलपुलिनेन=कान्तायाः कामिन्याः, उच्चकुचावेव अत्युन्नतस्तनावेव, चक्रवाकमिथुनं तस्मै विपुलं वृहत् च तत् पुलिनं च तेन, उरःस्थलेन वक्षःस्थलेन, स्थूलभुजायामपुञ्जितं=स्थूलभुजयोः विशालहस्तयोः, आयामः विस्तारः तेन पुञ्जितम् एकत्रभूतं, दिकचक्रं दिशाम् आशानां चक्रं समूहं, पुरः अग्रे, विस्तारयन्तमिव विशालीकुर्वाणमिव ।

शब्दार्थ—अतिसुरभिसहकारकर्पूरकक्कोलकलुषपूगफलकापरिकममुचा=

अत्यन्त सुगन्धित आम, कपूर, कंकोल, लवंग, पारिजातक के समान सुगन्धि को निकालने वाले, मत्तमधुकरकुलकोलाहलमुखरेण=मतवाले भौरों के समूह के कोलाहल के गुञ्जार से युक्त, सनन्दनवनं=नन्दन वन के सहित, अवतारयन्तमिव=वमन करने वाले के समान, आसन्नसुहृत्परिहासभावेन=समीप स्थित अपने मित्रों के साथ हंसी की भावना से ऊपर मुख करके हंसते हुए, दशनज्योत्स्नास्नपितविङ्मुखैः=दाँतों की कान्ति से धुले हुए दिशाओं के मुख से, नभसि=आकाश में, सञ्चारिणं=चलने वाले, चन्द्रलोकमिव=चन्द्रमा के प्रकाश के समान, कल्पयन्तं=बनाते हुए, कदम्बमुकुलस्थूलमुक्ताफलयुगलमध्यासितमरकतस्य=कदम्ब की कलिका के समान, स्थूल अर्थात् पुष्ट एवं विशाल दो मोतियों के बीच में स्थित मरकत मणि के, त्रिकण्टककर्णाभरणस्य=त्रिकंटक नामक कान के आभूषण की, प्रेंखतः=चंचल, समुत्सर्पन्त्या=फैलती हुई, कृतकुसुमहरितकुन्दपल्लवकर्णावतंसमिव=फूल सहित कुन्द के हरे तथा नवीन कोंपल पत्ते के कर्णाभूषण के समान, उपलक्ष्यमाणं=प्रतीत होने वाले, आमोदितमृगमदपङ्कलिखितपत्रभङ्गभास्वरम्=सुगन्धि युक्त कस्तूरी के लेप से बनी हुई रचना से चमकने वाले, भुजयुगलम्=दो हाथ, उद्दाममकराक्रान्तशिखरमिव=मकर के चिह्न से युक्त अग्रभाग वाले, मरकतकेतुकेतुदण्डद्वयं=कामदेव के झण्डे के डण्डे के समान, धवलब्रह्मसूत्रसीमन्तितं=सफेद यज्ञोपवीत से युक्त, सागरमथनसामर्षगङ्गास्रोतःसन्दानितमन्दरम् इव=समुद्र मन्थन से क्रुद्ध हुई गङ्गा की धारा से वेष्टित मन्दर नामक पर्वत के समान, कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरणपांशुलेनेव=कर्पूर के चूर्ण के लेप से धूसरित, कान्तोच्चकुचचक्रवाकयुगलविपुलपुलिनेन=कामिनी के उच्चस्तनों रूपी दो चक्रवाक मिथुन के लिए विशाल तट रूप, उरःस्थलेन=वक्षःस्थल से, स्थूलभुजायामपुञ्जितं=विशाल हाथों में एकत्रित हुए, दिक्चक्रम्=दिशाओं के समूह को, पुरः=आगे, विस्तारयन्तम्=फैलाते हुए।

पुरस्तादीषदधोनाभिनिहितैककोणकमनीयेन पृष्ठतः कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेनोभयतः संवलनप्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरिता निबिडनिपीडितेनाधरवाससा विभज्यमानतनुतरमध्यभागम्, अनवरतश्रमोपचितमांसकठिनविकटमकरमुखसंल-

ग्नजानुभ्यामतिविशालवक्षः स्थलोपलवेदिकोत्तम्भनशिलास्तम्भाभ्यां चारुचन्दनस्थासकस्थूलतरकान्तिभ्यामूरुदण्डाभ्यामुपहसन्तमिवैरावतकरायामम्, अतिभरितोरुभारवहनखेदेनेव तनुतरजंघाकाण्डम्, कल्पपादपल्लवद्वयस्येव पाटलस्योभयपार्श्वावलम्बिनः पादद्वयस्य दोलायमानैर्नखमयूखैरश्वमण्डनचामरमालामिव रचयन्तम् ।

अर्थ—आगे की ओर नाभि से नीचे जिस वस्त्र का एक कोना बहुत सुन्दर प्रतीत हो रहा था और जिस अधोवस्त्र का पीछे का भाग कक्ष प्रदेश में पल्ला खोंसने के बाद भी कुछ ऊपर को निकला हुआ था, दोनों ओर सिकोड़ने के कारण जघन स्थल को प्रकटित करने वाले, हारीत नामक पक्षी के समान हरे रंग के अधोवस्त्र से कसकर बंधे होने से, पतले शरीर के मध्य भाग (कमर को) पृथक् करने वाले, निरन्तर परिश्रम करने के कारण दोनों जघनभागों का माँस बढ़ जाने के कारण वे जघन स्थल ऐसे प्रतीत होते थे मानो कठोर और भयंकर मगर के मुख में फँसे हुए हों, मानो उसके जघन स्थल विशाल वक्षःस्थल रूपी चबूतरे को धारण करने के लिये पत्थर के खम्भ हों, सुन्दर चन्दन के तिलक (लेप से) बढ़ाई गई है शोभा जिनकी ऐसे ऐरावत हाथी की सूंड के विस्तार का उपहास करने वाले दोनों जघनस्थलों से युक्त उस युवा पुरुष के पैरों के नीचे का भाग सीमा से अधिक विस्तृत जघनस्थल के भार को धारण करने से दुःख से पतले थे, कल्पवृक्ष के दो कोमल पत्तों के समान लाल रंग के दोनों ओर लटकते हुए दोनों चरणों के नाखूनों की चंचल किरणों से घोड़े के चंवर माला रूपी आभूषण बना रहे हों ।

संस्कृत-व्याख्या—पुरस्तात् पुरतः अग्रे, ईषत् किञ्चित्, अल्पमात्रं, नाभेः, अधः नीचैः, निहितः कृतः, एकः, कोणः तेन कमनीयं मनोहरं, तेन अधोवस्त्रेण, पृष्ठतः पृष्ठभागे, कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेन=कक्ष्याम्, कक्ष्यप्रदेशे, क्षिप्तः, लम्बमानः, पल्लवः, यस्य तत् तेन, उभयतः उभयदिशि, संवलनप्रकटितोरुत्रिभागेन=संवलनेन संकोचनेन, प्रकटितः प्रदर्शितः ऊर्वोः जघनभागयोः त्रिभागः तृतीयांश, यस्य तत् तेन, हारीतहरिता=हारीतपक्षीवहरिता हरिद्वर्णेन निबिड-

निपीडितेन अतिदृढबन्धनेन, अधरवासया अधोवस्त्रेण, विभज्यमानतनुतरमध्य-भागम्=विभज्यमानः द्विधाः भूतः, तनुतरः कृशीयान् मध्यभागः कटिप्रदेशः, यस्य सः तम्, अनवरतश्रमोपचित मांसकठिनविकटमकरमुखसंलग्न जानुभ्याम् =अनवरतं सततं यः श्रमः, तेन उपचितं वृद्धिगतं, मांसं, तेन कठिनं विकटं, यत् मकरमुखं तेन संलग्ने जानुनी ययोःताभ्याम्, अतिविशालवक्षःस्थलोपलवेदि-कोत्तम्भनशिलास्तम्भाभ्याम्=अति विशालं वक्षःस्थलमेव उपलवेदिका प्रस्तर-वेदिका तस्या उत्तम्भनाय उद्धतु शिलास्तम्भौ ताभ्याम् चारुचन्दनस्थासक-स्थूलतरकान्तिभ्यां=चारुणा शोभनेन, चन्दनस्य स्थासकेन लेपेन, स्थूला विशाला, कान्तिः प्रभा, ययोः ताभ्याम् ऊरुदण्डाभ्यां जघनस्थलाभ्याम्, ऐरावत-करायामम्=ऐरावतस्य करस्य शुण्डादण्डस्य आयामं विस्तारम् उपहसन्तम् ति स्कुर्वन्तम् अतिभरितोरुभारवहनखेदेनेव=अति-भारतीयोः अतिभारयुक्तयोः, ऊर्वोः जघनस्थलयोः भारस्यवहनेन यः खेदः क्लमः तेन इव, तनुतरजंघाकाण्डं= तनुतरं दुर्बल, जंघाकाण्डं यस्य सः त, कल्पपादपपल्लव द्वयस्येव=कल्पपादयस्य कल्पतरोः, पल्लवद्वयस्येव किसलययुगलस्येव, पाटलस्य शुभ्ररक्तवर्णस्य, उभय-पार्श्वावलम्बिनः भागद्वयावलम्बिनः पादद्वयस्येव चरणयुगलस्येव, दोलायमानैः अस्थिरैः नखमयूखैः नखरश्मिभिः, अश्वमण्डनचामरमालाम्=अश्वस्य हयस्य, मण्डनालङ्कारभूता चामराणां या माला पंक्तिः, ताम् इव, कल्पयन्तं विरच-यन्तम् ।

शब्दार्थ—पुरस्तात्=आगे की ओर, ईषत्=थोड़ा अधोनाभिनिहितैक-कोणकमनीयेन=नाभि के नीचे भाग में स्थित एक कोने से मनोहर, कक्ष्याधिक-क्षिप्तपल्लवेन=कक्ष प्रदेश में लटकने वाले, संवलनप्रकटितोरुत्रिभागेन= सिकोड़ने के कारण दिखाई पड़ते हुए जांघ के तृतीय भाग वाले, हारित हारित =हारित पक्षी के समान हरे रंग के, निबिडनिपीडितेन=कसकर मजबूती से बंधे हुए, अधरवाससा=अधोवस्त्र से, विभज्यमानतनुतरमध्यभागम्=पतले शरीर के मध्यभाग (कमर) को अलग करने वाले, अनवरतश्रमोपचितमांस कठिनविकरमकरमुखसंलग्नजानभ्यां=निरन्तर व्यायाम कसरत करने से दोनों जघनस्थलों का मांस बढ़ जाने से ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो कठिन और विकट मकर के मुख में फंस गये हों। विशालवक्षस्थलोपलवेदिकोत्तम्भन-शिलास्तम्भाभ्यां=विशाल वक्षःस्थल रूपी पत्थरों के चबूतरों को धारण करने

के लिए पत्थरों के खम्भे रूप, चारुचन्दनस्थासकस्थूलकान्तिभ्यां=सुन्दर चन्दन के लेप से अधिक चमकने वाले। ऐरावतकरायामाम्=ऐरावत हाथी के सूंड के समान विशाल·अतिभरितोरुभारवहनखेदेनेव=अत्यन्त भारी जाँघों के धारण करने के कारण दुःखी, तनुतरजङ्घाकाण्डम्=दुर्बल जघन स्थलों वाला, कल्पपादपल्लावद्वयम् इव=कल्पवृक्ष के दो नवीन कोमल पत्ते के समान, पाटलस्य=सफेद और लाल रंग से युक्त, उभयपार्श्वावलम्बिनः=दोनों ओर लटकने वाले, पादद्वयस्य=दोनों पैरों के, दोलायमानैः=चंचले, नखमयूखैः=नाखूनों की किरणों से, अश्वमण्डनचमरमालामिव=घोड़े के चामर मालारूपी आभूषण के समान रचयन्तं=बनाते हुए।

अभिमुखमुच्चैरुदञ्चद्भिरतिचिरमुपरिविश्राम्यद्भिरिवव-लितविकट पतदिभः खुरैः खंडितभुवि प्रतिक्षणदशनविमुक्त-खणखणायितखरखलीने दीर्घघ्राणलीनलालिकेललाटलुलित-चारुचामीकरचक्रके शिञ्जानशातकौम्भायानशोभिनि मनो-रंहसि गोलाङ्गूलकपोलकालकायलोम्नि नीलसिन्धुवारवर्गे वाजिनि महति समारूढम्, उभयतः पर्याणपट्टश्लिष्टहस्ता-भ्यामासन्नपरिचारकाभ्यां दोधूयमानधवलचामरिकायुगलम, अग्रतः पठतो वन्दिनः सुभाषितमुत्कण्टकितकपोलफलकेन लग्नकर्णोत्पलकेसरपक्ष्मशकलेनेव मुखशशिना भावयन्तम्।

अर्थ—सामने की ओर ऊंचे उठते हुए और बहुत देर तक ऊपर रोकने के कारण ही मानो अतिवेग से गिरने वाले खुरों से भूमि को विदीर्ण करने वाले (घोड़े पर) दाँतों से बाहर निकली हुई प्रत्येक क्षण खन-खन की आवाज करने वाली लगाम से युक्त, विशाल (घोड़े की) नाक पर लगाम की कमानी-दार भाग तथा मस्तक पर सुन्दर सोने के पदक के द्वारा शब्द करती हुई सोने की बनी हुई अयान नामक अश्वालंकार से सुशोभित था, वह घोड़ा मन के समान तीव्र गति वाला था और लंगूर बन्दर के मुख के समान वाले रोंगटे से

युक्त, सिंधुवार पुष्प के समान नील वर्ण वाले घोड़े पर सवार (युवापुरुष को देखा) घोड़े के दोनों ओर चलने वाले परिचारक लोगों के द्वारा चंवर डुलाया जा रहा था उस ऐसे युवा पुरुष के परिचारकगण अश्व के ऊपर पड़ी हुई जीन के दोनों ओर (अपने-अपने) हाथ रखे हुए थे, उनके आगे सुभाषित का पाठसूत्र, मागध, वन्दीजन आदि कर रहे थे जिनको सुनकर उस युवा पुरुष के मुख रूपी चन्द्र के दोनों कपोल स्थल रोमाञ्चित हो रहे थे मानो कान में धारण किए हुए नील कमल की पराग के कण भर रहे हों।

संस्कृत-व्याख्या—अभिमुखं समक्षम्, उच्चैः समुन्नतैः उदञ्चद्भिः उत्पतद्भिः, अतिचिरम् अतिदीर्घसमयम् उपरि, विश्राम्यद्भिः विश्राम कुर्वाणैः, बलितविकटं, बलितेन कुटिलगत्या, विकटम् अत्युद्धतम्, ददद्भिः स्थापयद्भिः, खुरैः खुरपटैः शफैः, खण्डितभुवि=खण्डिता भग्नीकृता भूः धरा, येन सः तस्मिन् अश्वे, प्रतिक्षणदशनविमुक्ताखणखणायितखरखलीने=प्रतिक्षणं प्रत्येक क्षणं, दशनैः दन्तैः विमुक्तं परित्यक्तं खणखणायितं खणखणेतिशब्दं कुर्वाणं, खरं तीक्ष्णं, खलीनं कविका, यस्य सः तस्मिन् अश्वे दीर्घघ्राणलीनलालिकललाटलुलितचारुचामीकरचक्रके=दीर्घे विस्तृते, घ्राणे नासिकायां, लीनः लग्नः, य लालिकः कविकाग्रभागः यस्य सः तस्मिन्, ललाटे मस्तके, लुलितं व्याप्तं, चारुचामीकरस्य सुन्दरहेम्नः, चक्र=निकरः, यस्य सः तस्मिन् शिञ्जानशातकौम्भायानशोभिनि=शिञ्जानं शब्दं कुर्वत्, शातकौम्भं स्वर्णघटितं यत् आयानम अश्वालङ्करणं तेन शोभते इति तस्मिन्, मनोरंहसि=मन इव रंह वेग, यस्य सः तस्मिन् (अश्वे) गोलाङ्गलस्य कृष्णमुखकपेः कपोले गण्डस्थले, इव कालानि श्यामानि, कायस्य वपुषः, लोमनि रोमाणि, यस्य सः तस्मिन्ः नीलसिन्धुवारवर्णे=नीलः यः सिन्धुवारः पुष्पविशेषः, तस्य वर्ण इव वर्णः यस्य स तस्मन् महति अत्युच्चे, वाजिनि घोटके, समारूढ विराजमानम्, उभयतः उभयभागयोः पर्याणपट्ट श्लिष्टहस्ताभ्यां पर्याणपट्टे अश्वास्तरणे, श्लिष्टो स्थापितौ, हस्तौ करौ ययोः ताभ्याम्, आसन्नपरिचारिकाभ्याम् आसन्नौ समीपस्थितौ यौ परिचारकौ सेवकौ ताभ्यां, दोधूयमानधवल चामरिकायुगलं=दोधूयमाने परिचाल्यमाने, धवले शुभ्रवर्णे, चामरिकायुगले चामरद्वये, यस्य सः तम्। अग्रतः अग्रे, स्तुतिपाठ प्रशस्तिपाठं, पठतैः, उच्चारणं कुर्वतः,

वन्दिनः स्तुतिपाठकस्य, उत्कण्टकितकपोलफलकेन = उत्कण्टकिते रोमाञ्चयुक्ते, कपोलफलके यस्मिन् सः तेन, लग्नकर्णोत्पलकेसरपक्ष्मशकलेन इव = लग्नानि कर्णोत्पलस्य कर्णाभूषणस्य, कमलस्य नीलकमलस्य, केसराणि परागाः, पक्ष्माणि इव लोमानीव तेषां शकलानि खण्डानि यस्मिन् सः तेन, मुखशशिना आनन-चन्द्रेण, भावयन्तं प्रकटयन्तम् ।

शब्दार्थ—उदञ्चद्भिः = उठते हुए, उपरिविश्राम्यद्भिः = ऊपर रुकने के कारण. वलितविकटं = गतिविशेष के कारण कठोर, खण्डितभुवि = पृथ्वी को खुरों से खोदने वाले, प्रतिक्षणदशनविमुक्तखणखणायितखरखलीने = दाँतों के अन्दर निकली हुई प्रत्येक क्षण खन खन की आवाज करने वाली कठोर लगाम वाले, दीर्घघ्राण-लीनलालिकललाटलुलितचारुचामीकरचक्रके = विशाल नाक के ऊपर लगाम का एक भाग और सुन्दर सोने का पदक मस्तक पर सुशोभित हो रहा था, शिञ्जानशातकौम्भायानशोभिनि = शब्द करती हुई सोने की आयान नामक अश्वमाला से सुशोभित, मनोरंहसि = मन के समान तीव्र गति वाले, गोलाङ्गूलकपोलकालकायलोम्नि = काले मुख वाले लंगूर वानर के कपोलस्थित रोम पंक्ति के समान काले रोंगटों वाले घोड़े पर, नील-सिन्धुवारवर्णे = सिन्धुवार पुष्प के समान नीलरंग वाले, उभयतः = दोनों ओर, पर्याणपट्टश्लिष्टहस्ताभ्यां = जीन पर (दोनों ओर) हाथ रखे हुए, आसन्न-परिचारिकाभ्यां = समीपस्थ सेवकों के द्वारा, वोधू मामधवलचमरिकायुगलम् = डुलाते हुए सफेद दो चामरों को, वन्दिनः = स्तुति पाठ करने वाले, सूत, मागध बन्दी, भाट आदि, उत्कण्टकितकपोल फलकेन = रोमाञ्चयुक्त कपोलस्थल से, लग्नकर्णोत्पलकेसरपक्ष्मशकलेन = नील कमल के कर्णाभूषण के पराग कण झर रहे हों, मुखशशिनः = मुख रूपी चन्द्र से, भावयन्तं = प्रकटित करने वाले ।

अनङ्गयुवावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पादयन्तम्, विलासप्रायमिव जीवलोकं जनयन्तम् सनुरागमयमिव सर्गान्तरमारचयन्तम् शृङ्गारमयमिव दिवसमापादयन्तम्, रागराज्यमिव प्रवर्तयन्तम् आकर्षणाञ्जनमिव

चक्षुषोः, वशीकरणमन्त्रमिव मनसः, स्वस्थावेशचूर्णमिवेन्द्रियाणाम्, असंतोषमिव कौतुकस्य, सिद्धयोगमिव सौभाग्यस्य, पुनर्जन्मदिवसमिव मन्मथस्य, रसायनमिव यौवनस्य, एकराज्यमिव रामणीयकस्य, कीर्तिस्तम्भमिव रूपस्य, मूलकोशमिव लावण्यस्य, पुण्यकर्मपरिणाममिव संसारस्य, प्रथमांकुरमिव कान्तिलतायाः, सर्गाभ्यासफलमिव प्रजापतेः, प्रतापमिव विभ्रमस्य, यशः प्रवाहमिव वैदग्ध्यस्य, अष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीत् ।

अर्थ—वह युवा पुरुष कामदेव के युगावतार के समान था अर्थात् कामदेव का अवतार था, चन्द्रमयी सृष्टि को उत्पन्न करता हुआ सा, संसार को मानो विलास में ही लीन करता हुआ, प्रेम-युक्त दूसरी (नवीन) सृष्टि (संसार, की रचना करता हुआ, दिन को शृङ्गार से पूर्ण करता हुआ सा, प्रेम के साम्राज्य का विस्तार करता हुआ, नेत्रों को वश में करने वाले अंजन के समान, मन को वश में करने वाले वशीकरण नामक मन्त्र के समान इन्द्रियों को परवश करने वाले चूर्ण के समान, आश्चर्य को उत्पन्न करने वाला, अर्थात् उस युवा पुरुष को देखने से कौतूहल समाप्त नहीं होता था अपितु देखने की उत्कट अभिलाषा बढ़ती जाती थी, युवावस्था को उत्पन्न करने वाली रसायन (औषधि) के समान सुन्दरता के एकछत्र राज्य के समान कान्ति रूपी लता के प्रथम अंकुर के समान, ब्रह्मा की रचना के अभ्यास का परिणाम रूप विलासिता की प्रौढ़ दशा को प्राप्त प्रताप के समान, चतुर पुरुष के यश की धारा के समान, ऐसे उपर्युक्त विलक्षण गुणों से युक्त अठारह वर्ष की आयु वाले युवा पुरुष को (सरस्वती) ने देखा ।

संस्कृत-व्याख्या—अनङ्गयुगावतारमिव=अनङ्गस्य कामदेवस्य, युगस्य, अवतारमिव, दर्शयन्तम् आविष्कुर्वन्तं, चन्द्रमयीम् इव ऐन्दवीमिव, सृष्टि रचनाम्, उत्पादयन्तं विरचयन्तं जीवलोकं, मृत्युलोकं विलासप्रायमिव अतिविलासमग्नमिव, जनयन्तम् उत्पादयन्तं, सर्गान्तरम् अपररचनाम्,अनुरागमय-

मिव स्नेहपूर्णमिव, आरचयन्तं कुर्वाणं दिवसं दिनं शृङ्गारमयमिव शृङ्गार-प्रायमिव, आपादयन्तं कुर्वन्तं, रागराज्यमिव प्रेमसाम्राज्यमिव, प्रवर्त्तयन्तं प्रेरयन्तम् चक्षुषोः लोचनयोः, आकर्षणाञ्जनमिव वशीकरणकज्जलमिव, मनसः हृदयस्य, वशीकरणमन्त्रमिव एतन्नामकमन्त्रविशेषमिव, इन्द्रियाणां नेत्रा-दीन्द्रियाणां स्वस्थावेशचूर्णमिव स्वस्थस्य शान्तात्मनः, आवेशः आकर्षणं तस्य चूर्णमिव, कौतुकस्य आश्चर्यस्य, असन्तोषमिव, अतृप्तिमिव, सौभाग्यस्य सिद्धयोगमिव, मन्मथस्य कामदेवस्य, पुनर्जन्म दिवसमिव, यौवनस्य, रसायनमिव औषधिमिव, रमणीयकस्य सुन्दरतायाः, लावणस्य, एकराज्यमिव एकछत्रमिव, अकण्टकराज्यमिव, रूपस्य सौन्दर्यस्य, कीर्तिस्तम्भमिव=कीर्तेः यशसः स्तम्भमिव लावणयस्य सौदार्यस्य, मूलकोशमिव उत्पत्तिस्थानमिव, संसारस्य भूलोकस्य पुण्यकर्मपरिणाममिव, सत्यकर्मफलमिव, कान्तिलतायाः प्रतमाङ्कुरमिव प्रजापतेः सृष्टुः, विरञ्चेः, सर्गाभ्यासफलमिव=सर्गस्य सृष्टेः यः अभ्यासः तस्य फलमिव परिणाममिव, विभ्रमस्य विलासस्य, प्रतापमिव तेजः पुञ्जमिव वैदग्ध्यस्य दक्षतायाः, यशः यशः,प्रवाहमिव कीर्तिधारामिव, अष्टादशवर्षदेशीयम् अष्टादश-वर्षीयं युवानं युवकम् अद्राक्षीत् ददर्श ।

शब्दार्थ अनङ्गयुगावतारमिव=कामदेव के युगावतार के समान, चन्द्रमयिसृष्टि=चन्द्रमयी रचना करने वाले, विलासप्रायमिव=अत्यन्त विला-सिता से युक्त, जीवलोकं=संसार को, जनयन्तम्=उत्पन्न करने वाले, अनुरागमयमिव=प्रेमपूर्ण, सर्गान्तरम्=दूसरी सृष्टि, रचयन्तं=बनाते हुए, शृंगारसमयमिव=शृंङ्गारपूर्ण, आपादयन्तम् इव=करते हुए से, रागराज्यं=प्रेम के साम्राज्य को, प्रवर्त्तयन्तं=फैलाते हुए, आकर्षणाञ्जनमिव=वश में करने वाले अंजन के समान, मनसः वशीकरणमिव=मन को वश में करने वाले वशीकरण नामक मन्त्र के समान, स्वस्थावेशचूर्णमिव=शान्त एवं स्वस्थ पुरुष को भी पराधीन करने वाले चर्ण के समान, कौतुकस्य=आश्चर्य का, असन्तोष-मिव=असन्तोष के समान अर्थात् (जिसको देखने से उत्पन्न आश्चर्य की समाप्ति ही नहीं होती थी अतः आश्चर्य के असन्तोष के समान अर्थात् आश्चर्य को उत्पन्न करने वाले के समान, यौवनस्य=युवावस्था के, रसायनमिव=औषधि के समान, रमणीयकस्य=सौन्दर्य के, एकराज्यमिव=अकण्टक एक-छत्र राज्य के समान, कान्तिलतायाः=कान्तिरूपी लता के, प्रथमाङ्कुरमिव=

प्रथमाङ्कुर के समान, प्रजापते=ब्रह्मा की, सर्गाभ्यासफलमिव=सृष्टि के अभ्यास के फल के समान, विभ्रमस्य=विलासिता के, प्रतापमिव=तेजः समूह के समान, वैदग्धयस्य=दक्षता, निपुणता की, यशःप्रवाहमिव=यश की धारा के समान।

पार्श्वे च तस्य द्वितीयमपरसंश्लिष्टतुरङ्गम्, प्रांशुमुत्तप्त-तपनीयस्तम्भाकारम्, परिणतवयसमपि व्यायामकठिनकायम्, नीचनखश्मश्रुकेशम् शुक्तिखलितिकम् ईषत्तुन्दिलम् रोमशोरःस्थलम् अनुल्बणोदारवेषतया जरामपि विनयमिव शिक्षयन्तम् गुणानपि गरिणाममिवानयन्तम् महानुभावतामपि शिष्यता-मिवानयन्तम् आचारस्याप्याचार्यकमिव कुर्वाणम् वलक्षवार-बाणधारिणम् धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टित- मौलिं पुरुषम्।

अर्थ—उस युवा पुरुष के समीप स्थित घोड़े पर सवार एक अन्य पुरुष को देखा, वह ऊंचे शरीर वाला था, उसका आकार तपे हुए सोने के खम्भे के समान (चमकने वाला) था; अधेड़ आयु का होने पर भी कसरत करने के कारण कठोर शरीर वाला था, लम्बे नाखून तथा लम्बी दाढ़ी से युक्त था, शुक्ति (सीप) के समान (शिर से) खल्वाट था, कुछ तुन्दिल (निकले हुए पेट) वाला था, वक्षःस्थल रोम पंक्ति से युक्त था, वेषभूषा से सरल और उदार प्रतीत होता था, वह मानो वुढ़ापे को भी नम्रता की शिक्षा दे रहा था। गुणों के गौरव से परिपूर्ण था, वह मानो महानुभावता को शिष्य बना रहा था, सदाचार का आचार्य अर्थात् गुरु था, सफेद कंचुक धारण किये हुए था और धुले हुए रेशमी वस्त्र से सिर को बांधे हुए था।

संस्कृत-व्याख्या—तस्य यूनः पार्श्वे समीपे, द्वितीयम् अन्यं (पुरुषम् अद्राक्षीत्) अपरसंश्लिष्टतुरङ्गम्=अपरैः अन्यपुरुषैः संश्लिष्टः अवरुद्धः तुरङ्गः अश्वः यस्य सः तम्, प्रांशुम् उन्नतशरीरम् उत्तप्ततपनीयस्तम्भाकारम्=उत्तप्तं यत् तपनीयम् अग्निप्रतप्तस्वर्णं तस्य स्तम्भः तद्वत् आकारो यस्य सः तम् पुरुषम् परिणतवयसमपि परिणतं वयः अवस्था यस्य सः तम् वृद्धम् अपि, व्यायाम कठिनकायं=व्यायामेन श्रमेण कठिनः कायः शरीरं यस्य सः त, नीचन-

खश्मश्रुकेशम्=नीचाः अवनताः नखाः श्मश्रव कूर्चाः, केशाः कचाः, यस्य सः तम् शुक्तिखलतिं शुक्तिवत खलतिः खल्वाटः यस्य सः तम् ईषत्तुन्दिलम् अल्पवृद्धोदरम् रोमशोरः स्थलम्=रोमाणि लोमानि, सन्ति अस्य इति रोमशम् उरःस्थलं, वक्षःस्थलं यस्य सः तम्, अनुल्वणोदारवेषतया=अनुल्वणः सरलः उदारो वेषः यस्य सः तस्य भावस्तत्ता तया, जरामपि वृद्धतामपि विनयं, शिक्षयन्तमिव उपदिशन्तमिव, गुणानपि शौर्यादीन् गुणान् अपि, गरिमाणं महिमाननिव, आनयन्तं प्रापयन्तं, महानुभावतामपि, शिष्यतामिव आनयन्तम्, आचारस्यापिसदाचरणस्यापि, आचार्यकमिव शिक्षकत्वम् इव, कुर्वाणं, बलक्षवारवाणधारिणं=बलक्षः श्वेतवर्णः वारवाणः कञ्चुकः, तं धरतीति तं शुभ्रवर्णकञ्चुकदधानं, धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिं=धौता क्षालिता या दुकूलपट्टिका क्षौमवस्त्रं, तया परिवेष्टितः मौलिः शिरः, यस्य सः तम् पुरुषम् ।

शब्दार्थ—**अपरसंश्लिष्टतुरङ्गम्**=दूसरे अश्व पर स्थित, **प्रांशु**=ऊँचे; **उत्तप्ततपनीयस्तम्भाकारम्**=अग्नि में तपाए हुए सोने के खम्भे के समान आकार वाले, **परिणतवयसमपि**=वृद्धावस्था से युक्त होने पर भी, **व्यायामकठिनकायम्**=कसरत करने से कठिन शरीर वाले, **नीचनखश्मश्रुकचम्**=लम्बे नाखून और दाढ़ी के लम्बे बालों से युक्त, **शुक्तिखलतिं**=शुक्ति के समान खल्वाट, **ईषत्तुन्दिलम्**=कुछ-कुछ बढ़े हुए पेट वाले, **रोमशोरःस्थलम्**=वक्षःस्थल में बालों वाले, **अनुल्वणोदारवेषतया**=शान्त और उदार वेषभूषा से युक्त, **जरामति**=वृद्धावस्था को भी, **विनयं**=नम्रता को, **शिक्षयन्तं**=सिखाने वाला, **गुणनपि**=दया, उदारता, शूरता आदि गुणों को भी, **गरिमाणमिव**=महिमा से युक्त, **कुर्वाणं**=करने वाले, **आनयन्तमिव**=बनाते हुए से, **आचारस्य**=सदाचरण के, **आचार्यकमिव**=आचार्य गुरु के समान, **बलक्षवारवाणधारिणं**=सफेद कंचुक को धारण करने वाले, **धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिं**=धुली हुई दुकूलपट्टिका से शिर को बाँधने वाले अर्थात् रेशमी वस्त्र की पगड़ी शिर पर धारण करने वाले ।

अथ स युवा पुरोयायिनां यथादर्शनं प्रतिनिवृत्त्यातिविस्मितमनसां कथयतां पदातीनां सकाशादुपलभ्य द्विव्याकृतितत्कन्यकालमुपजातकुतूहलः प्रत्तपर्णतुरगो दिदृक्षुस्तं लतामण्डपो-

द्देशमाजगाम । दूरादेव च तुरगादवततार । निवारितपरिजनश्च तेत द्वितीयेन साधुना सह चरणाभ्यामेव सविनयमुपससप । कृतोपसंग्रहणौ तो सावित्रो समं सरस्वत्या किसलयासनदानादिना सकुसुमफलार्घ्यावसानेन वनवासोचितेनातिथ्येन यथाक्रममुपजग्राह ।

अर्थ—इसके बाद उस युवा पुरुष ने देखकर लौटकर आए हुए तथा आगे चलने वाले पैदल सैनिकों से सुन्दर आकृति वाली दो कन्याओं के विषय में श्रवण करते ही आश्चर्ययुक्त होकर (कन्या युगल को देखने की इच्छा वाला तेजी से घोड़े को दौड़ाता हुआ उस लता मण्डप के पास पहुंच गया और दूर पर ही घोड़े से उतर पड़ा अन्य परिजनों को दूर करके अर्थात् रोक करके, परन्तु उस समीपवर्ती सज्जन पुरुष को साथ लेकर पैदल ही नम्रता से युक्त होकर गया, सरस्वती के साथ सावित्री ने उन दोनों अभ्यागतों को नमस्कार किया और वन में प्राप्त होने वाले फल, पुष्प, अर्घ्यजल आदि से उन दोनों का क्रम से अतिथि सत्कार किया ।

संस्कृत-व्याख्या—अथ=अनन्तरं, पुरोयायिनाम् अग्रेगामिनां यथादर्शनं दर्शनमतिक्रम्य, प्रतिनिवृत्य, अतिविस्मितमनसां=अतिविस्मितम् अत्याश्चर्यचकितं, मनः हृदयं येषां तेषां; पुरुषाणाम् कथयतां निवेदयतां, पदातीनाम् पुरोगामिनां पदातिसैनिकानां, सकाशात् समीपात्, दिव्याकृति दिव्या अनुपमा आकृतिः यस्य तत् तथाभूतं, तत् पूर्वोक्तं, कन्यायुगलं कन्यकाद्वयम्, उपलभ्य विज्ञाय, उपजातकुतूहलः=उपजातं, उत्पन्नं, कुतुहलं यस्य सः आश्चर्यचकितं प्रतूर्णतुरगः=प्रतूर्णं शीघ्रगामी, तुरगः घोटकः यस्य सः, दिदृक्षुः=द्रष्टुम् इच्छुः, तं लतामण्डपोद्देशम् लतामण्डपस्थानम् आजगाम आगच्छत् । दूरादेव च तुरगात् अश्वात्, अवततार अवातरत् । निवारितपरिजनश्च=निवारितः दूरीकृतः परिजनः सेवकगणः येन सः तेन द्वितीयेन अपरेण, साधुना सज्जनेन, सह=साकम्, चरणाभ्यमेव पादाभ्यामेव सविनयं विनययुक्तम्, उपससर्प जगाम । कृतोपसंग्रहणौ=कृतम् उपसंग्रहणम् प्रणमनं ययोः तौ, तौ द्वौ पुरुषौ, सरस्वत्या शारदया समं साकं, सावित्री, किसलयासनदानादिना पल्लवासनप्रदानादिना, सकुसुमफलार्घ्यावसानेन पुष्पफलार्घ्यदानेन, वनवासोचितेन वनवासयोग्येन,

आतिथ्येन अतिथिसत्कारेण, यथाक्रमं क्रमशः उपजग्राह सच्चकार ।

शब्दार्थ—पुरोयानियां=आगे चलने वालों के, विस्मित मनसाम्=आश्चर्य युक्त हृदय वालों का, यथादर्शनं=अच्छी तरह देखना, प्रतिमिवृत्य=लौटकर, कथयतां=कहने वाले, पदातीनां=पैदल चलने वालों का, दिव्याकृति=दिव्य (अलौकिक) आकार वाले, प्रतूर्णवेग:=तीव्र चलने वाले घोड़े से युक्त, दिदृक्षु:=देखने की इच्छा रखने वाला, लतामण्डपोद्देशम्=लतामण्डप के समीप, निवारितपजिन:=सेवकगण को हटा कर, उपससर्प=पहुंचा, कृतोपसंग्रहणौ=नमस्कार करने वाले दोनों को, किसलयासनादानादिना=कोमल पत्तों के आसन आदि के दान से, सकुसुमफलार्घ्यावसानेन=पुष्प, फल, अर्घ्य जल आदि के दान से, वनवासोचितेन=वनवास के योग्य, आतिथ्येन=अतिथि सत्कार के द्वारा, यथाक्रमम् क्रमशः=नियमपूर्वक ।

आसोनयोश्च तयोरासीना नातिचिरमिव स्थित्वा तं द्वितीयं प्रवयसमुद्दिश्यावादीत्—'आर्य, सहजलज्जाधनस्य प्रमदाजनस्य प्रथमाभिभाषणमशालीनता, विशेषतो वनमृगीमुग्धस्य कुलकुमारीजनस्य । केवलमिव[आलोकन]कृतार्थाय [भ] चक्षुषे स्पृहयन्ती प्रेरयत्युदन्तश्रवणकुतुहलिनी श्रोत्रवृत्तिः । प्रथमदर्शने चोपायनामवोपनयति सज्जनः प्रणयम् । अप्रगल्भमपि जनं प्रभावता प्रश्रयेणार्पितं मनोमध्विव वाचालयति । अयत्नेनवातिनम्रे साधौ धनुषीव गुणः परां कोटिमारोपयति विस्रम्भः ।

अर्थ—उन दोनों पुरुषों के बैठ जाने पर सावित्री भी बैठ गई और थोड़ी देर तक (शान्त) बैठकर उस दूसरे वृद्ध पुरुष को लक्ष्य करके (सावित्री) कहने लगी । आर्य (श्रीमन्) स्वाभाविक लज्जालु स्वभाव वाली स्त्रियों का प्रथम कुछ कहना एक धृष्टता मानी जाती है, (उनमें भी) विशेषरूप से जो वन हरिणी के समान सरल स्वभाव वाली कुलीन कुमारियां होती हैं उनके लिये तो प्रथम बार बोलना उच्चकुल के अनुकूल नहीं होता है, (तथापि) नेत्र तो केवल आपके दर्शन से धन्य हो गये, परन्तु ये कान आपके वृत्तान्त को सुनने के लिये उत्सुक

होते हुए (कहने के लिये मुझे) प्रेरित कर रहे हैं। प्रभावोत्पादक नम्रता से समर्पित किया हुआ मन मदिरा (पान) के समान सरल (स्वभाव) व्यक्ति को वाचाल बना देता है, परिश्रम के अत्यन्त विनीत स्वभाव वाले सज्जन में विश्वास चरम सीमा को पहुंच जाता है जिस प्रकार अत्यन्त नम्र अर्थात् झुके हुए धनुष पर प्रत्यञ्चा (डोरी) कोने तक परिश्रम के बिना ही पहुंच जाती है उसी प्रकार अत्यन्त विनीत स्वभाव वाले सज्जन में विश्वास परिश्रम के बिना (सहज ही) चरम कोटि को पहुंच जाता है, यहाँ उपमा अलंकार की छटा दर्शनीय है।

संस्कृत व्याख्या - तयोः आगन्तुकयोः पुरुषयोः, आसीनयोः समुपविष्टयोः, आसीना समुपविष्टासती (सावित्री) नातिचिरम् अत्यल्पसमयं स्थित्वा शान्ता स्थित्वा, तं, द्वितीयम् अपरं, प्रवयसं वृद्धजनम उद्दिश्य लक्ष्यीकृत्य अवादीत्, अब्रवीत् आर्य श्रीमन्! सहजलज्जाधनस्य=सहजा स्वाभाविकी, लज्जा एव धनं यस्य सः तस्य तथाभूतस्य प्रमदाजनस्य महिलाजनस्य, प्रथमाभिभाषणम्=प्रथमं सर्वप्रथमम अभिभाषणम् वार्तालापकरण, अशालीनता धृष्टता, विशेषतः मुख्यरूपेण, वनमृगीमुग्धस्य=वनमृगी इव मुग्धस्य सरलस्य, कुलकुमारीजनस्य, उच्चकुलोत्पन्नकुमारीजनस्य, केवलम्, इयम् एषा, आलोकनकृतार्थाय=आलोकनेन साक्षात्कारेण कृतार्थाय कृतार्थतांगताय, चक्षुषे लोचनाय, स्पृहयन्ती स्पृहाम् (अभिलाषां कुर्वाणा, उदन्तश्रवणकुतूहलिनी=उदन्तस्य भवत्सम्बन्धिनः वृतान्तस्य, श्रवणे समाकर्णने, कुतुहलम् उत्कण्ठा, यस्या साः श्रोतवृत्तिः कर्णेन्द्रियव्यापारः (माम्) प्रेरयति वक्तुमुत्साहयति। अप्रगल्भमपि सरलमपि, जनं पुरुषं, प्रभवता प्रभावकारिणा, प्रश्रयेण नम्रतया अर्पितं, मनः चित्तं, मधु इव मदिरेव, वाचालयति वक्तुं प्रेरयति। अत्यनेनैव अपरिश्रमेणैव, अतिनम्रे अतिविनीतस्वभावे साधौ सज्जनपुरुषे, विस्रम्भः विश्वासः, धनुषि कार्मुके, गुणः इव प्रत्यञ्चेव, परां कोटिं चरम सीमान्, आरोपयति, प्रापयति।

शब्दार्थ— आसीनयोः=दोनों के बैठ जाने पर, प्रवयसं=वृद्ध व्यक्ति से अवादीत्=बोली, सहजलज्जाधनस्य=स्वाभाविक लज्जा रूपी धन से युक्त, प्रमादजनस्य=स्त्री जाति का, प्रथमाभिभाषणम्=पहले पहल बोलना, अशालीनता=धृष्टता, वनमृगीमुग्धस्य=वन की हरिणी के समान सरल, आलोकनकृतार्थाय=देखने से धन्य, चक्षुषे=आँख के लिए, स्पृहयन्ती=

इच्छा करती हुई, श्रोत्रवृत्ति—कान का व्यापार, उदन्तश्रवणकुतूहलिनी=आपके समाचार को सुनने के लिए उत्सुक, प्रेरयति—प्रथम बोलने के लिए प्रेरित कर रही है, उपायनमिव—उपहार के समान, प्रणयम्=प्रेम को, उपनयति=उपहार में देता है, अप्रगल्भमपि=सरल व्यक्ति को भी प्रभवता=प्रभावित करने वाले, प्रश्रयेण=विनय से, अर्पितं=दिया हुआ, मधुइव=मदिरा के समान, वाचालयति=वाचाल हो जाता है, अयत्नेनैव=परिश्रम के बिना ही, अतिनम्रे=अत्यन्त विनीत स्वभाव वाले, साधौ=सज्जन पुरुष में विस्रम्भः=विश्वास, परांकोटिम्—चरम सीमा को, अन्तिम किनारे को, आरोपयति—प्राप्त करा देता है, धनुषि—धनुष पर, गुण इव—प्रत्यञ्चा (डोरी) के समान।

जनयन्ति च विस्मयममतिधीरधियामप्यदृष्टपूर्वा दृश्यमाना जगति स्रष्टुः सृष्ट्यतिशयाः। यतस्त्रिभुवनाभिभावि रूपमिदमस्य महानुभावस्य। सौजन्यपरतन्त्रा चेयं देवानां प्रियस्यातिभद्रता कारयति कथां न तु युवतिजनसहोत्था तरलता। तत्कथयागमनेनापुण्यभाक्कतमो विजृम्भितविरहव्यथः शून्यतां नीतो देशः? क्व वा गन्तव्यम्? को वायमपहृतहरहुङ्काराहुंकारोऽपर इवानन्यजो युवा? किंनाम्नो समृद्धतपसः पितुरयममृतवर्षी कौस्तुभमणिरिव हरेर्हृदयमाह्लादयति? का चास्य त्रिभुवनमस्या विभातसंध्येव महतस्तेजसो जननी? कानि वास्य पुण्यभाञ्जि भजन्त्यभिख्यामक्षराणि? आर्यपरिज्ञानेऽप्ययमेव क्रमः कौतुकातुरोधिनो हृदयस्य' इत्युक्तवत्यां तस्या प्रकटितप्रश्रयोऽसौ प्रतिव्याजहार—

अर्थ—पहले कभी न देखी हुई फिर (सहसा) दिखाई पड़ने वाली स्रष्टा की अत्यन्त सुन्दर रचनाएँ संसार में अत्यन्त धीर बुद्धि वाले लोगों में आश्चर्य उत्पन्न कर देती हैं। क्योंकि इन महाशय का सौन्दर्य तीनों लोकों के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाला है अर्थात् उनका रूप तीनों लोकों में अद्वितीय है। युवती-स्त्रियों के साथ स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाली चञ्चलता के

कारण से नहीं, अपितु महापुरुष की यह सज्जनता ही मुझे इस प्रकार कहने के लिए वाचालित (प्रेरित) कर रही है तो आप कहिये, आपके वियोग से कौन सा अभागा पुण्यहीन देश व्याकुल होता हुआ शून्यता को प्राप्त करा दिया है ? और आप कहाँ जायेंगे ? भगवान् शिव के हुंकार अहंकार को चूर्ण करने वाले कामदेव के समान सुन्दर यह युवक किसका पुत्र है ? तपस्या के घन से सम्पन्न इसके पिता का क्या नाम है ? जिनके हृदय को कौस्तुभ मणि के समान अमृत की वर्षा करके यह युवक आनन्दित करता है, अर्थात् जिस प्रकार कौस्तुभ मणि विष्णु के हृदय को आह्लादित करती रहती है उसी प्रकार अमृत की वर्षा करने वाला यह युवक किस महातपस्वी के हृदय को आह्लादित करता है ? इस महातेजस्वी युवक की प्रातःकालीन सन्ध्या के समान तीनों लोकों के द्वारा वन्दनीय माता कौन है ? कौन से पुण्यशाली अक्षर इसके नाम की सेवा कर रहे हैं अर्थात् नाम के शुभ अक्षर क्या हैं ? श्रीमान् जी के परिचय के विषय में भी कौतूहलपूर्ण (मेरे) हृदय का यही क्रम है। सावित्री के इस प्रकार कहने पर यह वृद्ध पुरुष ने नम्रता का प्रदर्शन करता हुआ उत्तर दिया।

संस्कृत-व्याख्या – जगति संसारे, स्रष्टुः, ब्रह्मणः, अदृष्टपूर्वाः पूर्वं कदापि न दृष्टाः दृश्यमानाः प्रत्यक्षीक्रियमाणाः, सृष्टिप्रतियशयाः उत्कृष्टरचनाः, अधिधीरधियामपि अत्यन्तधैर्यशालिनां, विस्मयम कौतूहलं, जनयन्ति कुर्वन्ति, यतः हि यस्मात्, अस्य पुरोवर्तिनः महानुभावस्य महापुरुषस्य इदम् एतत्, त्रिभुवनाभिभाविरूपं =त्रिभुवनं लोकत्रयम्, अभिभवितुमं तिरस्कर्तुं शीलमस्येति यत् रूपं सौजन्यपरतन्त्रा सौजन्यपराधीना, च, इयं देवानां प्रियस्य महापुरुषस्य अतिभद्रता परमसौजन्यं, कथां कारयति मां वक्तुं प्रेरयति, मुखरीकरोति, न तु, युवतिजनसहोत्था=युवतिजनेन सह तरुणिजनेन सह, उत्था उत्पन्ना, स्वाभाविकता, तरलता चाञ्चल्यं, तत तस्मात्, कथय वद, अपुण्यभाक् पुण्यरहितः, विजृम्भितविरहव्यथः=विजृम्भिता समुत्पन्ना, विरहस्य, व्यथा पीडा यस्य सः एवम्भूतः, कतमः कः देशः, आगमनेन अत्रागमनेन, शून्यतां नीतः नीरानन्दीकृतः, वा अथवा, क्व कुत्र, गन्तव्यम् ? वा, अयम् अपहृतहरहुङ्कारः =अपहृतः तिरस्कृतः, हरस्य शङ्करस्य, हुङ्कारस्य हुङ्कृतेः यः अहङ्कारः गर्वः, (अपहृतः नाशितः) येन सः तथाभूतोऽयं युवकः, अपरः द्वितीयः अनन्यजः स्वयमेवोत्पन्नः कामदेव इत्यर्थः, युवा युवकः कः कोऽस्ति इति ? वा नाम्नः अभि-

धेयस्य, समृद्धतपसः=समृद्धं तपः यस्य सः तस्य महातपस्विनः पितुः जनकस्य, हृदयम् चित्तम्, अयम् युवकः, अमृतवर्षी पीयूषवर्षी, हरेः विष्णोः, कौस्तुभमणिः एतन्नामा मणिः, इव, आह्लादयति आनन्दमर्पयति ? त्रिभुवनमस्या त्रिभुवनेन नमस्या अभिवादनीया, विभातसन्ध्या इव प्रातः सन्ध्या इव, अस्य युवकस्य महतः तेजसः अतितेजस्विनः जननी माता, चका अस्तीति ? वा, पुण्यभाञ्जि =पुण्यं भजन्तीति पुण्यभाञ्जि, पवित्राणि, भाग्यशालीनि, अक्षराणि, कानि ? सन्ति अस्य, अभिख्याम् अभिधेयं भजन्ति सेवन्ते ? आर्यपरिज्ञानेऽपि श्रीमतां परिचयविषयेऽपि उपर्युक्त एव क्रमः पारम्पर्यम् अस्ति कौतुकानुरोधिनः कुतूहल-पूर्णस्य, (मे) हृदयस्य अयमेव कौतूकानुरोधः ।

शब्दार्थ – स्रष्टुः=ब्रह्मा की, अदृष्टपूर्वाः=पहले कभी न देखी हुई, दृश्यमान्=देखी हुई, सृष्टयतिशयाः=सुन्दर रचनायें, अतिधीरधियामपि=अत्यन्त गम्भीर बुद्धि वालों को भी, विस्मयम्=आश्चर्य, जनयन्ति=उत्पन्न करती हैं । यतः=क्योंकि, त्रिभुवनाभिभाविरूपं=तीनों लोकों में सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाला सौन्दर्य, सौजन्यपरतन्त्रा=सज्जनता से पराधीन. देवानां प्रियस्य=महाशय की, अतिभद्रता=सौजन्यता, कथां कारयति=कहला रही है अर्थात् कहने के लिए प्रेरित कर रही है, न तु=नहीं तो, बल्कि, युवतिजने=युवती नारियों में, सहोत्था=स्वभाव से उत्पन्न, स्वाभाविक, तरलता=चञ्चलता, तत्=तो, कथय=कहो, अपुण्यभाक्=अभाग्यशाली, पुण्यहीन, विजृम्भितविरहव्यथः=(आपके कारण से) उत्पन्न वियोग की पीड़ा से पीड़ित, कतमः=कौन, शून्यतां नीतः=शून्य बना दिया है, उत्सवहीन बना दिया गया है, क्व=कहाँ, गन्तव्यं=जायेंगे, अपहृतहरहुङ्कारः=नष्ट कर दिया है (कामदेव के भस्म करने के) शंकर जी के अहंकार को जिसने ऐसा यहां अपरः=दूसरा, अनन्यजः=किसी अन्य से न उत्पन्न होने वाला अर्थात् स्वयं जन्मा कामदेव, समृद्धतपसः=महातपस्वी, पितुः=पिता का, अमृतवर्षी=अमृत के समान मधुर वाणी, अमृत की वर्षा करने वाला, हरेः=विष्णु की, कौस्तुभमणिरिव=कौस्तुभ नामक मणि के समान, आह्लादयति=आनन्दित करता है, महतः तेजसः=अति तेजस्वी की, त्रिभुवनमस्या=तीनों लोक के द्वारा प्रमाण के योग्य, विभातसन्ध्येव=प्रातःकाल की सन्ध्या के समान,

जननी=माता, का=कौन हैं ? पुण्यभाञ्जि=पवित्र भाग्यशाली, अभिख्यां= नाम की, भजन्ति=सेवा करते हैं ? आर्यपरिज्ञानेऽपि=आपके परिचय के विषय में भी, कौतुकानुरोधिन=कौतूहलपूर्ण, हृदयस्य=मेरे हृदय का, अयमेव=यही, क्रमः=परम्परा है, अर्थात् आप भी अपना पूर्ण परिचय कहें, तस्यां=सावित्री के, इत्युक्तवत्यां=ऐसा करने पर, प्रकटितप्रश्रयः=नम्रता को प्रकटित करता हुआ, असौ=वह, प्रतिव्याजहार=उत्तर में बोला।

आयुष्मति, सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या। न केवलमाननं हृदयमपि च ते चन्द्रमयमिव सुधाशीकरशीतलैराह्लादयति वचोभिः। सौजन्यजन्मभूमयो शुभेन सज्जननिर्माणशिल्पकला इव भवादृश्यो दृश्यन्ते। दूरे तावदन्योन्यस्याभिलपनमभिजातैः सह दृशोऽपि मिश्रीभूता महतीं भूमिमारोपयन्ति। श्रूयताम्—अयं खलु भूषणं भार्गववंशस्य भगवतो भूर्भुवः स्वस्त्रितयतिलकस्य, अदभ्रप्रभावस्तम्भितजृम्भारिभुजस्तम्भस्य, सुरासुरमुकुटमणिशिलाशयनदुर्ललितपादपंकेरुहस्य निजतेजः प्रसरप्लुष्टपुलोम्नश्च्यवनस्य बहिर्वृत्तिजीवितं दधीचो नाम तनयः। जनन्यप्यस्य जितजगतोऽनेकपार्थिवसहस्रानुयातस्य शर्यातस्य सुता राजपुत्री त्रिभुवनकन्यारत्नं सुकन्या नाम।

अर्थ—आयुष्मति ! प्रिय भाषण करना तो सज्जन पुरुषों की कुल-विद्या (का सूचक) है, केवल तुम्हारा मुख ही चन्द्रमा नहीं अपितु तुम्हारा हृदय भी चन्द्रमय है, क्योंकि तुम्हारा यह हृदय चन्द्रमा की शीतल अमृत की किरणों के समान ही अमृत के कणों से शीतल वचनों से (मुझे) आनन्द प्रदान कर रहा है। सज्जनता का निर्माण करने वाली शिल्पकला के समान आप कैसी सज्जनता की भूमियाँ बहुत पुण्य कर्म से प्राप्त होती हैं, उच्चकुलोत्पन्न लोगों के साथ बात करने की बात तो दूर रही, उच्च कुलोत्पन्न लोगों के साथ मिलते ही आँखें अलौकिक भूमि को पहुंचा देती हैं, (अच्छा तो) सुनिये यह भूलोक,

पाताल लोक में श्रेष्ठ भार्गववंश में उत्पन्न भगवान् च्यवन के वंश के भूषण हैं, महर्षि च्यवन द्वारा अप्रतिम तपोबल के प्रभाव से इन्द्र के हाथों की शक्ति को स्तम्भित कर दिया गया है देवता और राक्षसों के मुकुटस्थ रत्नों के द्वारा जिनके चरण कमलों का अभिवादन किया जाता है, और जिन्होंने अपने (अप्रतिम तपस्या के) तेज के वेग से पुलोमा नामक राक्षक को भस्म कर दिया है, ऐसे महातपस्वी च्यवन ऋषि का बाहर भ्रमण करने वाला प्राणभूत दधीच नाम का (यह) पुत्र है। अर्थात् इसका नाम दधीच है और इसके पिता का नाम च्यवन है, संसार को जीतने वाले, हजारों राजाओं से सेवित राजा शर्यात की कन्या इसकी माता है। जो राजकुमारी तीनों लोक की कन्याओं मे श्रेष्ठ (शर्याति की कन्या) सुकन्या है, अर्थात् शर्यात की सुकन्या नाम की कन्या ही इसकी माता है।

संस्कृत-व्याख्या — आयुष्मति ! प्रियस्वदता प्रियभाषणं, सतां महानुभावानां कुलविद्या उच्चकुलपरिज्ञानं, न केवलं, ते तव, आननम: हृदयमपि चन्द्रमयमिव, सुधाशीकरशीतलैः पीयूषकणशिशिरैः, वचोभिः कथनैः, आल्हादयति आनन्दयति, सौजन्मभूमयः=सौजन्यस्य सज्जनतायः, जन्मभूमयः उत्पत्तिस्थानानि, सज्जतनिर्माणशिल्पकला इव—सज्जनानांनिमाणं विरचनं तस्मिन् शिल्पकलाः शिल्पविद्याः इव, भवाद्दश्यः त्वत्समानाः भूयसा, प्रचुरेण, शुभेन पुण्येन्; दृश्यन्ते दृष्टिपथमायान्ति, अन्योऽन्यस्य मिथः, अभिलपनं वार्तालापकरणम्, अभिजातैः सह उच्चकुलोत्पन्नं साकं, मिश्रिताः मिश्रीभूताः संगताः, दृशोऽपि दृष्टयोऽपि महतीं भूमिं आनन्दस्य चरमसीमानम् आरोपयन्ति प्रापयन्ति, अयं युवा एषो युवकः, भार्गववंशस्य प्रसिद्धस्यभृगुवंशस्य, भूर्भुवः स्वस्त्रितयतिलकस्य=भूः भूलोकः च भुवः पाताललोकः च, स्वः स्वर्गलोकः च इति तेषां तिलकं त्रिलोकं श्रेष्ठः यस्य च्यवनस्य अदभ्रप्रभावस्तम्भितजृम्भारिभुजस्तम्भस्य—अदभ्रेण प्रचुरेण, प्रभावेण स्तम्भितः व्यर्थीकृतः जृम्भारेः इन्द्रस्य, भुजः पाणिः, एव स्तम्भः येन सः तस्य, सुरासुरमुकटमणि-शिलाशयनदुर्ललितपादपङ्करुहस्य=सुरासुराणां देवराक्षाणां, मुकुटमणयः मुकुटस्यरत्नानि, एव शिलाशयनानि प्रस्तरपर्यङ्काः तैं दुर्ललितं पादपङ्करुहं पादपद्म यस्य सः तस्य च्यवनस्य, निजतेजः प्रसरप्लुष्टपुलोम्नः=निजस्य स्वस्य यः तेजः प्रसरः प्रतापवेगः तेन प्लुष्टः भस्मीकृतः पुलोमा शच्याः पिता पुलोमा नाम राक्षसः

येन सः तस्य च्यवनस्य च्यवननाम्नः प्रसिद्धस्य महर्षेः, बहिर्वृत्तिजीवितं बहिःस्थिता इव, दधीचो नाम दधीचेति नाम्ना प्रसिद्धः तनयः सुतः, अस्य युवकस्य जननी माता अपि, जितजगतः जितं स्वाधीनी कृतं जगत् संसारः येन सः तस्य, अनेकपार्थिवसहस्रानुयातस्य—अनेके बहवः ये पार्थिवाः भूपतयः, तेषां सहस्रं तेन नृपसमूहेन, अनुयातस्य सेवितस्य शर्यातस्य एतन्नाम्नः नृपतेः सुता आत्मजा, राजपुत्री राजदुहिता, त्रिभुवनकन्यारत्नं त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं तस्य लोकत्रयस्य, कन्यासु कुमारीसु, रत्नं रत्नमिव वर्तते, (तस्याः) नाम सुकन्येति प्रसिद्धमस्ति इति जानीहि।

शब्दार्थ—प्रियंवदता = प्रिय बोलना, कुलविद्या = उच्च कुल की विद्या, सुधाशीकरशीतलैः = अमृत के किरणों के समान शीतल, आह्लादयति = आनन्दित करता है। सौजन्यभूमयः = सज्जनता का उत्पत्ति स्थान, सज्जननिर्माणशिल्पकला इव = सज्जनता की रचना करने वाली शिल्पकला के समान, भवादृश्यः = आप जैसी, भूयसा = विशाल, शुभेन = पुण्य से, दृश्यन्ते = दिखाई पड़ती है, अन्योऽन्यस्त = परस्पर, अभिलपनम् = बातचीत करना, अभिजातैः सह = उच्चकुलोत्पन्न लोगों के साथ, दृशोऽपि = आंखें भी, मिश्रीभूतः = मिलते ही, महतीं भूमि = (आनन्द की) चरम सीमा को, आरोपयति = पहुंचा देती है, श्रूयतां = सुनिये, भूर्भुवःस्वस्त्रितयतिलकस्य = भूलोक, पाताललोक, स्वर्गलोक में श्रेष्ठ, अप्रतिमप्रभावस्तम्भितजम्भारिभुजस्तम्भस्य = अप्रतिम (तपस्या के) प्रभाव से इन्द्र के हाथों की शक्ति को स्तम्भित (रोकने) वाले, सुरासुरमुकुटमणिशिलाशयनदुर्ललितपादपङ्केरुहस्य = देवता और राक्षसों के मुकुट रूपी शय्या पर शयन करने वाले चरणकमल वाले अर्थात् देवता और राक्षसों के द्वारा प्रणाम किये जाने वाले चरणकमलों से युक्त, निजतेजः प्रसरप्लुष्टपुलोम्नश्च्यवनस्य = अपने तपोबल के तेज के वेग से पुलोमा नामक राक्षस को भस्म करने वाले च्यवनमहर्षि का, बहिर्वृत्तिजीवितं = बाहर रहने वाला प्राण, जितजगतः = संसार को जीतने वाले, अनेकपार्थिवसहस्रानुयातस्य = अनेकों हजारों राजाओं से सेवित, शर्यातस्य = शर्याति नामक राजा की, त्रिभुवनकन्यारत्न = तीनों लोकों की कन्याओं में श्रेष्ठ।

तां खलु देवीमन्तर्वत्नीं विदित्वा वैजनने मासि प्रसवाय पिता प्रत्युः पार्श्वात्स्वगृहमानाययत्। असूत च सा तत्र देवी

दीर्घायुषमेनम् । अवर्धतानेहसा च तत्रैवायमानन्दितज्ञाति-वर्गोबालस्तारकराज इव राजीवलोचनो राजगृहे । भर्तृभवनमागच्छन्त्यामपि दुहितरि नासेचनकदर्शनमिममुञ्चन्माता-महो मनोविनोदनं नप्तारम् । अशिक्षतायं तत्रैव सर्वा विद्याः सकलाश्च कलाः । कालेन चोपारूढयौवनमिममालोक्याह-मिवासावप्यनुभवतु मुखकमलालोकनानन्दमस्येति मातामहः कथंकथमप्येनं पितुरन्तिकमधुना व्यसर्जयत् । मामपि तस्यैव देवस्य सुगृहीतनाम्नः शर्यातिस्याज्ञाकारिणं विकुक्षिनामानं भृत्यपरमाणुमवधारयतु भवती । पितुः पादमूलमायान्तं मया साभिसारमकरोत्स्वामी ।

अर्थ—उस सुकन्या नाम की देवी को गर्भवती जानकर दशवें मास में प्रसव के लिए पिता (शर्याति) ने पति (च्यवन) के पास से अपने घर बुला लिया । वहां उस देवी सुकन्या ने इस दीर्घायु (दधीच नामक पुत्र) को जन्म दिया वहीं राजा शर्यात् के घर कमल के समान आंखों वाला यह चन्द्र के समान भाई-बन्धुओं को आनन्दित करने वाला समय के अनुसार बढ़ने लगा। पति (च्यवन) के घर सुकन्या लड़की के जाते समय भी मन को प्रसन्न करने वाले, जिसके देखने में तृप्ति नहीं होती थी ऐसे इस अद्भुत नाती को वहीं प्रेषित किया । इसने वहीं सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओं की शिक्षा प्राप्त की; समय के अनुसार युवावस्था को प्राप्त इसे देखकर (राजा शर्याति ने सोचा कि) मेरे समान इसके पिता इस बालक के मुखकमल के दर्शन के आनन्द का अनुभव प्राप्त करें, ऐसा विचार कर इसके नाना ने अब किस प्रकार इसको पिता के समीप भेजा है । उसी सुगृहीत नाम वाले राजा शर्यात् की आज्ञा पालन करने वाला विकुक्षि नाम का तुच्छ सेवक मुझे आप समझें अर्थात् मैं भी शर्याति का एक साधारण सेवक हूं । मेरे साथ पिता के चरणकमलों में आने वाले इसका सहायक स्वामी (शर्यात्) ने मुझे बनाया है अर्थात् मुझे सहायता के रूप में प्रेषित किया है ।

संस्कृत-व्याख्या—तां सुकन्या, देवीम् अन्तर्वत्नीं गर्भवतीं विदित्वा विज्ञाय, वैजनने मासि=दशमे मासि, प्रसवाय पुत्रोत्पादयितुं, पत्युः भर्तुः, च्यवनस्य, पार्श्वात् समीपात्, स्वगृहम् आनाययत् आनाययामास। तत्र शर्यातस्य सदने, सा देवी, सुकन्या, एमम् इमम् दीर्घायुषम् आयुष्मन्तम्, असूत जनयामास। अनेहसा समयेन तत्रैव राजभवने, आनन्दितज्ञातिवर्गः=आनन्दितः ज्ञातीनां बन्धुनां वर्गः समूहः येन सः तारकराज इव=तारकानां नक्षत्राणां राजा स्वामी चन्द्रः तद्वत् राजीवलोचनः कमलनयनः अयम् शिशुः अवर्धत वृद्धिप्राप्तः, भर्तृभवनं पतिगृहम्, आगच्छन्त्याम आयान्त्यामपि, दुहितरि सुतायाम्, आसेचनकदर्शनम् आनन्दायकं, मनोविनोदं मनोरञ्जकम्। इमम् एनम्, आलोक्य, विलोक्य, अहमिव शर्यात इव, असौ च्यवननामा, पिताऽपि अस्य स्वात्मजस्य, मुखकमलावलोकनानन्दं=मुखम् आननमेव, कमलं, तस्य मुखकमलस्य, अवलोकने दर्शने यत् आनन्द तद् आनन्दम् अनुभवतु। इति कथं कथमपि कथञ्चित्, महतायासेन, मातामहः, एनम् दधीच. अधुना साम्प्रतं पितुः च्यवनस्य राज्ञः। आज्ञाकारिणम् आज्ञापालकं, विकुक्षिनामानम् एतन्नामकं भृत्यपरमाणुं साधारणभृत्यं, भवती, अवधारयतु अभिजानातु पितुः च्यवनस्य पादमूलं चरणसमीपम् आयान्तम् आगच्छन्तं, मया, साभिसारम् अनुगामिनं स्वामी शर्यातिनामा नृपः अकरोत चकार।

शब्दार्थ—अन्तर्वत्नीं=गर्भवती, विदित्वा=जानकर, वैजनने मासि=दशवें मास में, प्रसवाय=सन्तान उत्पन्न करने के लिये, असूत=उत्पन्न किया, दीर्घायुषम्=चिरञ्जीवी को, अनेहसा=समय के अनुसार, अवर्धत=बढ़ने लगा। आनन्दितबन्धुवर्गः=भाई-बन्धुओं को प्रसन्न करने वाला, तारक-राज इव=चंन्द्रमा के समान, राजीवलोचनः=कमल नेत्र, भर्तृगृहं=पति के घर, आगच्छन्त्यामपि=आने पर भी, दुहितरि=पुत्री के, आसेचनकर्शनं=जिसको देखने में तृप्ति न हो रही हो, अर्थात् जिसे निरन्तर देखने की इच्छा बनी रहे ऐसे आनन्ददायक, मनोविनोदनं=मनोरंजन करने वाले, नप्तारं=नाती को, मातामहः=नाना ने, अमुञ्चत्=छोड़ा, उपारूढयौवनं=युवावस्था को प्राप्त, मुखकमलावलोकनानन्दम्=मुखरूपी कमल के देखने में आनन्द को, आन्तिकम्=पास को व्यसर्जयत्=भेजा, भृत्यपरमाणुम्=छोटा सेवक, साभिसारं=सहायक को।

तद्धि नः कुलक्रमागतं राजकुलम् उत्तमानां च चिरतनता जनयत्यनुजोविन्यपि जने कियन्मात्रमपि मन्दाक्षम्। अक्षीणः खलु दाक्षिण्यकोशो महताम् इतश्च गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम चत्ररथकल्पं काननं निवासः। तदवधिरेवेयं नो यात्रा। यदि च वो गृहीतक्षणं दाक्षिण्यमनवहेलं वा हृदयमस्माक-मुपरि भूमिर्वा प्रसादानामयं जनः श्रवणार्हो वा ततो न विमाननीयोऽयं नः प्रथमः कुतूहलस्य। वयमपि शुश्रूषवो वृत्तांतमायुष्मत्योः। नेयमाकृतिर्दिव्यतां व्यभिचरति। गोत्र-नामनी तु श्रोतुमभिलषति नो हृदयम्।

अर्थ—तो मैं इस राजकुल का परम्परागत सेवक हूं। सम्बन्ध प्राचीन हो जाने पर भी उत्तम श्रेणी के लोग अपने सेवक के प्रति कुछ न कुछ, लज्जा का अनुभव करते हैं, महापुरुषों की उदारता नष्ट नहीं होती है, इस कथन से च्यवन महर्षि का आश्रम तो कोश भर शोण नदी के तट पर स्थित है। जो आश्रम उन भगवान च्यवन महर्षि के नाम से ही प्रसिद्ध च्यावन नामक आश्रम कुवेर के चैत्ररथ नामक उद्यान के समान है। वहीं तक हम दोनों की यह यात्रा है अर्थात् हम दोनों का च्यवन के आश्रम तक ही जाना है। यदि आप दोनों का हमारे ऊपर थोड़ा भी सौजन्य है, अथवा आपके हृदय में किसी प्रकार की अवज्ञा का भाव नहीं है अथवा यदि यह जन आपकी कृपा के योग्य है, या सुनने के योग्य है, तो हमारे प्रणय में कुतूहल की उपेक्षा न कीजिये, हम लोग भी आप दोनों के समाचार को सुनने की इच्छा करते हैं। यह दिव्य आकृति देवपने का अतिक्रमण नहीं करती है अर्थात् आपकी यह आकृति ही देवत्व को सूचित कर रही है हम दोनों का हृदय (आप दोनों के) गोत्र और नाम सुनने की इच्छा करता है।

संस्कृत-व्याख्या—तत् प्रसिद्धं, राजकुलं, शर्यातनृपतेः वंशः; कुलक्रमागतं कुलपरम्परया प्राप्तं, उत्तमानां, चिरन्तनता प्राचीनता, मन्दाक्षं लज्जां, व्रीडां, अनुजीविनि—भृत्तेऽपि, जनपति उद्भावयति, दाक्षिण्यकोशः सौजन्यकोशः, इतः अस्मात् स्थानात्, गव्यूतिमात्रं क्रोशद्वय शोणं, पारे शोणनद्याः पारे, निर्मित-

व्यदेशं=निर्मितः कृतः व्यपदेशः नाम, यस्य तत्, चैत्ररथकल्पं कुबेरोद्यान-समानं, काननं वनं यदवधिः तत् वनमेव अवधिः सीमा यस्याः सा च्यवना-श्रमपर्यन्तेतिभावः, नो आवयोः, यात्रा प्रस्थानं, गृहीतक्षणं क्षयिकम् अल्पमपि दाक्षिण्यम् औदार्यम् अनवहेलनम् तिरस्कारशून्यं, हृदयं चित्तं, वा, अथवा, अयम् एषः, जनः, प्रसादानां कृपाणाम्, भूमिः भाजनं स्थानं, वा, श्रवणार्हः श्रोतुं योग्यः, कुतूहलस्य आश्चर्यस्य प्रथमः प्रथमं अनुरोधः, न विमाननीयः उपेक्षितु न योग्यः, आयुष्मत्योः युवयोः वृतान्तं समाचारं, शुश्रूषवः श्रोतु-मिच्छवः स्म । आकृतिः, दिव्यतां देवत्वं, न व्यभिचरति अन्यथा नभवति । नौ आवयोः, हृदयम् चित्तं, गोत्रनामनी=गोत्र च नाम च=गोत्रनामनी वंश-नामनी, श्रोतुम् आकर्णयितुम्, अभिलषति वाञ्छति ।

शब्दार्थ—नः=हमारे कुलक्रमागतं=वंश परम्परा से प्राप्त, चिरन्तनता =प्राचीनता, अनुजीविन्यपि=भृत्य में भी; मन्दाक्ष=लज्जा को, जनयति= उत्पन्न कर देती है, महतां=बड़े लोगों की, दाक्षिण्यकोशः=उदारता का कोश, अक्षीणः=अनश्वर, इतः=यहाँ से, गव्यूतिमात्रं=दो कोश, पारे शोणं =शोण नदी के पार; स्वनाम्ना=अपने नाम से, निर्मितव्यपदेशं=नाम रखा गया है, च्यावनं=च्यावन के नाम से प्रसिद्ध । चैत्ररथकल्पं=कुबेर के चैत्ररथ नामक उद्यान के समान, इयं=यह, यात्रा=गमन, नौ=हम दोनों का, तद-वधि=वहीं तक, दाक्षिण्यम्=उदारता, अनवहेलनं=अवज्ञा न हो, प्रसादानां =कृपा का, भूमि=स्थान योग्य, श्रवणार्हं=सुनने योग्य, ततो=तो, कुतू-हलस्य=उत्कण्ठा का, प्रणयः=अनुरोध, न विमाननीय=तिरस्कृत न कीजिये, आयुष्मत्योः=आप दोनों का शुश्रुषवः—सुनने को इच्छा करते हैं, दिव्यतां= देवत्व को, न व्यभिचरति=निषेध नहीं करती है, अर्थात् सूचित करती है, गोत्रनामनी=वंश और नाम को ।

तत्कथय कतमो वंशः स्पृहणीयतां जन्मना नीतः । का चेयमत्रभवती भवत्याः समीपे समवाय इव विरोधिनां पदार्थानाम् । तथाहि । सन्निहितबालान्धकारा भास्वन्मूर्तिश्च, पुण्डरीकमुखी हरिणलोचना च, बालातपप्रभाधरा कुमुदहा-सिनी च, कलहंसस्वना समुन्नतपयोधरा च कमलकोमलकरा हिमगिरिशिलापृथुनितम्बा च, करभोरुर्विलम्बितगमना च

च अमुक्तकुमारभावा स्निग्धतारका च इति । सा त्ववादीत्—"श्रोष्यसि कालेन । भूयसो दिवसानत्र स्थातुमभिलषति नौ हृदयम् । अल्पीयांश्चायमध्वा परिचय एव प्रकटीकरिश्यति । आर्येण न विस्मरणीयोऽयमनुषङ्गदृष्टो जनः" इत्यभिधातूष्णीमभूत् ।

अर्थ—तो कहो, किस कुल को अपने जन्म से धन्य (सुशोभित) किया है, आपके पास यह कौन है, जो अनेक परस्पर विरोधी पदार्थों की राशि के समान प्रतीत हो रही है, अनेक अन्धकार से युक्त हैं फिर भी सूर्य के समान इसकी आकृति (मूर्ति) तेज से चमक रही है, कमलमुखी, मृगनयनी और प्रातःकालीन सूर्य की कान्ति को धारण करने वाली है फिर भी कुमुद पुष्प के समान इसकी हंसी है । राजहंस के समान स्वर वाली है । फिर भी ऊंचे स्तनों से (मेघों से) युक्त है, कमल के समान कोमल हाथों वाली है । फिर भी हिमालय पर्वत की शिला के समान विशाल नितम्व वाली है । हाथी की सूड़ के समान जांघों वाली और धीरे-धीरे गमन करने वाली है । अभी कुमारत्व के भाव को नहीं छोड़ा है । फिर भी नेत्रों की चञ्चलता प्रेम-भाव को व्यक्त कर रही है । (यह सुनकर) उस (सावित्री) ने कहा कि समय आने पर सुनोगे अर्थात् सब ज्ञात हो जायेगा । हम दोनों का हृदय यहाँ बहुत दिनों तक ठहरने की इच्छा करता है और यह रास्ता भी थोड़ा (शेष) है । परिचय ही (सब समाचार को) प्रकटित कर देगा । आप प्रसंगवश देखे हुए हम लोगों को न भूलें, वह कहकर चुप हो गयी ।

संस्कृत-व्याख्या - तत, कथय ब्रूहि, जन्मना, कतमः कःवशः कुलं स्पृहणीयतां नीतः कृतार्थीकृतः, सुशोभितः, भवत्याः तव, समीपे पार्श्वे, अत्रभवती आदरणीया, इयम् एषा, का अस्ति, यां च, विरोधिनां पदार्थानां वस्तूनां, समवाय इव राशिरिव अस्ति । तथाहि सन्निहितवालान्धकारा= सन्निहितः निकटस्थः वालैः कचैः, अन्धकारः तमः, तस्याः सा भास्वन्मूर्ति भास्वतः सूर्यस्य, मूर्तिः प्रतिमा, च, पुण्डरीकमुखी, सरोजवदना, हरिणलोचना मृगनेत्रा, वालातपप्रभाधरा=वालातपस्य प्रातःकालीनसूर्यातपस्य, प्रभायाः तेजसः धरा दधाना, कुमुदहासिनी कुमुदपुष्पतुल्यहासिनी, च कलहंसस्वना=कलहंसस्य राजहंसस्य इव स्वनः शब्दः यस्याः सा, समुन्नतपयोधरा=समुन्नतौ अत्युच्चौ

पयोधरौ स्तनौ, यस्याः सा, च कमल कोमलकरा=कमलमिव कोमलौ करौ पाणी यस्याः सा, हिमगिरिशिलापृथुनितम्बा=हिमगिरिः हिमालयः, तस्य शिला तद्वत् पृथुः विस्तृतः, नितम्बः पृष्ठभागः यस्याः सा, च करभोरुकरभ इव हस्तिशुण्ड इव ऊरू जघनस्थलौ, यस्याः सा, विलम्बितगमना=विलम्बितं मन्दं, गमनं यस्याः सा, अमुक्तकुमारभावा=न मुक्तः अमुक्तः अपरित्यक्तः कुमारभावः यया सा, स्निग्धतारका=स्निग्धे तारके पुत्तलिके, यस्याः सा, इति। सा सावित्री तु, अवादीत प्रत्युवाच, कालेन समयेन, श्रोष्यसि आकर्णयिष्यसि, अत्र, नौ अवयोः हृदयं चेतः, भूयसः बहून दिवसान्, दिनानि स्थातु निवसितुम्, अभिलषति=वाञ्छति। अयम्. अध्वा पन्था, अल्पीयान् स्वल्प एव वर्तते, च परिचय एव प्रकटीकरिष्यति, कथयिष्यति, आर्येण श्रीमता, अनुषङ्गदृष्टः=अनुषङ्गेन प्रसङ्गेन, दृष्टः अवलोकितः अयं, जनः न नैव, विस्मरणीयः विस्मर्तुम् योग्यः, इति अनेन प्रकारेण अभिधाय कथयित्वा, तूष्णीमभूत् शान्ताऽभवत्।

शब्दार्थ—कतमः=कौन, स्पृहणीयतां=धन्य, सुशोभित, नीतः=किया, समवाय इव=समूह के समान, सन्निहितबालान्धकारा=नवीव अन्धकार से युक्त, भास्वन्मूर्तिः=सूर्य के समान कान्तिमयी मूर्ति से युक्त, पुण्डरीकमुखी= कमलमुखी, हरिणलोचना=मृगनयनी, बालतप्रभाधरा=प्रातःकालीन सूर्य की कान्ति को धारण करने वाली, कुमुदहासिनी=कुमुद फूल के समान हंसी हंसने वाली, कलहंसस्वनः=राजहंस के समान आवाज वाली, समुन्नतपयोधरा =ऊंचे स्तनों वाली, कमलकोमलकरा=कमल के समान कोमल हाथों वाली, हिमगिरिशिलापृथुनितम्बा=हिमालय की शिला के समान विशाल नितम्बों वाली, करभोरुविलम्बितगमना=हाथी की सूंड के समान जाँघों वाली और धीरे-धीरे चलने वाली, अमुक्तकुमारभावा=बाल्यावस्था के भाव को न छोड़ने वाली, स्निग्धतारका=आँखों से प्रेम प्रदर्शित करने वाली, कालेन=समय से, श्रोष्यसि=सुन लोगे, नौ=हम दोनों का, भूयसः=अधिक, स्थातु=रहने को, अध्वा=मार्ग, अल्पीयान्=थोड़ा, प्रकटीकरिष्यति=प्रकट कर देगा, आर्येण=आपको, अनुषङ्गदृष्टः=प्रसंगवश देखते हुए, न विस्मरणीय=नहीं भूलना चाहिए, इति=यह, अभिधाय=कहकर, तूष्णीमभूत्=चुप हो गई।

दधीचस्तु नवाम्भभीरगम्भोराम्भोधरध्वाननिभया भार-

त्याननर्तयन्वनलताभवनभाजो भुजगभुजः सुधीरमुवाच—"आर्य, करिष्यति प्रसादमार्याराध्यमाना। पश्यामस्तावत्तातम। उत्तिष्ठ। व्रजामः" इति। तथेति च तेनाभ्यनुज्ञातः शनकैरुत्थाम कृतनमस्कृतिरुच्चचाल। तुरगारूढं च तं प्रयान्तम् सरस्वती सुचिरमुत्तम्भितपक्ष्मणा निश्चलतारकेण लिखितेनेव चक्षुषा व्यलोकयत्। उत्तीर्य शोणमचिरेणैवकालेन दधीचः पितुराश्रमपदं जगाम। गते च तस्मिन् सा त मेव दिशमालोकयन्ती सुचिरमतिष्ठत्। कृच्छ्रादिव च सञ्जहार दृशम्।

अर्थ– (सावित्री के चुप हो जाने पर) नवीन मेघ के समान गम्भीर ध्वनि से लताओं के भवनों में रहने वाले मोरों को बहुत देर तक नचाते हुए दधीच जी बोले! श्रीमन् यह आराधना की जाती हुई, अवश्य कृपा करेंगी अर्थात् प्रसन्न होकर अपना वृतान्त कहेंगी। तो हम तब तक पिता के दर्शन करें, उठो (आओ) चलें। ऐसे ही हो यह कहकर उसकी अनुमति प्राप्त करते हुए धीरे से उठकर नमस्कार किया और चल पड़े। घोड़े पर सवार जाते हुए उस दधीच को सरस्वती जी ने एकटक, चित्रस्थित नेत्रों के समान कनीनिका वाली आंखों से बड़ी देर तक देखा। थोड़ी ही देर में शोण को पार करके दधीच पिता (च्यवन) के आश्रम में पहुंच गया। उसके चले जाने पर वह (सरस्वती) उसी दिशा की ओर बड़ी देर तक देखती रही और बड़ी कठिनता से अपनी दृष्टि को उस ओर से हटाया।

संस्कृत-व्याख्या—नवाम्भोभरगम्भीराम्भोधरध्वाननिभया=नवानाम् अभिनवानाम् अम्भसां जलानां, भरेण भारेण, गम्भीरः, यः अम्भोधरः जलधरः, मेघ, तस्य मेघस्य, ध्वानेन गर्जनस्वरेण, निभा सदृशा, तया, भारत्या वाचा, वनलताभवनभाजः=वनलतानां काननवल्लरीणां, भवनानि गृहाणी भजन्तीति सेवन्त इति, तान्, भुजगभुजः=भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजगाः=सर्पाः. तान् सर्पान्, भुञ्जन्ते खादन्ति इति भुजंगभुजः मयूराः, सुधिरं गम्भीरतापूर्वकम् उवाच प्राह। आर्य! श्रीमन्! आराध्यमाना सेवमाना सति (इयं) प्रसादं कृपां, करिष्यति (नात्रसशीतिः) तावत् (वयम्) तातम् पितरं जनकं च्यवनं,

पश्याम: अवलोकयाम: तथेति तथास्तु, इति तेन वृद्धपुरुषेण, अभ्यनुज्ञात: अनुमत: सन्, कृतनमस्कृति: कृताभिवादन: शनकै: मन्दं मन्दं, यथास्यात्तथा, उत्थाय आसन परित्यज्य उच्चचाल प्रतस्थे। तुरगारूढम् अश्वारूढं, प्रयान्तं गच्छन्तं, तं दधीचं, सरस्वती शारदादेवी, उत्तम्भितपक्ष्मणा=उत्तम्भितानि; उपरि स्थापितानि, पक्ष्माणि येन स: तेन निश्चतारेण=निश्चले शान्ते तारके कनीनिके, यस्य स: तेन शान्तनेत्रेण, लिखितेनेव चित्राङ्कितेनेव, चक्षुषा नेत्रेण; सुचिरं दीर्घकालं, व्यलोकयत:, आलोकिवती। अचिरेणैव कालेन अत्यल्पकालेनैव, शोणं–शोणनामकं नदम्, उत्तीर्य, पारं कृत्वा, पित: जनकस्य, आश्रमपदं, जगाम, ययौ। तस्मिन दधीचे, गते प्रयाते सति, सा सरस्वती, तामेव दिशं, आलोकयन्ती पश्यन्ती सती सुचिरं दीर्घकालम्, अतिष्ठित् तस्थौ, च, कृच्छ्रादिव महता कष्टेन, इव, दृशं दृष्टिं, सञ्जहार पृथगकरोत्।

शब्दार्थ—नवाम्भोभरगम्भीम्भोरघरध्वाननिभया=नवीन मेघ के गम्भीर गर्जन के समान, भारत्या वाणी से, वनलताभवनभाज:=वन की लताओं के घरों में रहने वाले, भुजगभुज:=साँपों के खाने वाले अर्थात् मोरों को, नर्त=नचाता हुआ, सुधीरं=गम्भीरतापूर्वक, आर्या=आदरणीया, आराध्यमाना=सेवा की जाती हुई, प्रसाद=कृपा, अभ्यनुज्ञात:=अनुमति प्राप्त करके, शनकै:=धीरे से, उत्थाय=उठकर, कृतनमस्कृति:=नमस्कार करके, उच्चचाल=चल दिया। तुरङ्गारूढं=घोड़े पर सवार, प्रायन्तं=प्रस्थान करते हुए, सुचिरं=वड़ी देर तक, उत्तम्भित्तपक्ष्मणा=खुली पलकों वाली, निश्चलतारकेण=शान्त (एकटक) दृष्टि वाली, लिखितेनेव=चित्रखचित के समान, चक्षुषा=आँखों से, व्यलोफयत्=देखा, अचिरेणैव कालेन=शीघ्र ही, कृच्छ्रादिव=बड़ी कठिनता से, दृशं=दृष्टि को, सञ्जहार=हटाया।

अथ मुहूर्तमात्रमिव स्थित्वा स्मृत्वा च तां नस्य रूपसंपदं पुन:-पुनर्व्यस्मयतास्या हृदयम्। भूयोऽपि चक्षुराचकाङ्क्ष, तद्दर्शनम्। अवशेव केनाप्यनीयत तामेव दिशं दृष्टि:। अप्रहितमपि। मनस्तेनैव सार्धमगात्। अजायत च नवपल्लव इव बालवनलताया: कुतोऽप्यस्याअनुरागश्चेतसि। तत: प्रभृति

च सालस्येव शून्येव सनिद्रेव दिवसमनयत् । अस्तमुपयाति च प्रत्यक्पर्यस्तमण्डले लाङ्गलिकास्तबकताम्रत्विषि कमलिनीकामुके कठोरसारसशिरःशोणशोचिषि सावित्रे त्रयीमये तेजसि तरुणतरतमालश्यामले च मलिनयति व्योम व्योमव्यापिनि तिमिर सञ्चये, सञ्चरतिसिद्धसुन्दरीनूपुररवानुसारिणि च मन्दं मन्दं मन्दाकिनीहंस इव समुत्सर्पति शशिनि गगनतलम् कृतसंध्याप्रणामा निशामुख एव निपत्य विमुक्ताङ्गी पल्लवशयने तस्थौ । सावित्र्यपि कृत्वा यथाक्रियमाणं सायंतनं क्रियाकलापमुचिते शयनकाले किसलयशयनमभजत । जातनिद्रा च सुष्वाप ।

अर्थ—इसके बाद (दधीच के चले जाने के बाद) थोड़ी देर तक स्थित होकर उस (दधीच) की रूप सम्पत्ति का स्मरण करके, इसका (सरस्वती का) हृदय बार-बार आश्चर्य करने लगा । बार-बार सरस्वती के नेत्र उसी को देखने के लिये उत्कण्ठित होने लगे । परवशता को प्राप्त हुई के समान सरस्वती की दृष्टि को कोई उसी दिशा की ओर मानो (बलात्) ले जा रहा था, न भेजा हुआ मन दधीच के साथ चला गया था, कहीं से इस सरस्वती के हृदय में प्रेम उत्पन्न होने लगा था, मानों वन की नवीन लताओं में कोंपल पत्ते उत्पन्न हो गये हों । उसी समय से वह आलस्य से युक्त सी, शून्य सी, निद्रित सी, होकर दिन को बिताया । पश्चिम दिशा की ओर ढलते हुए मण्डल वाले, लाङ्गलिका नामक फूलों के गुच्छे के समान लाल प्रकाश वाले, कमलिनी के प्रिय, वृद्ध सारस पक्षी के सिर के समान लाल वर्ण वाले सूर्य का वेदमय तेज अस्त हो रहा था । पूर्ण सम्पन्न तमाल वृक्ष के समान काला, आकाश में व्याप्त होने वाला, घनघोर अन्धकार गगनमण्डल को मलिन कर रहा था । जाती हुई सिद्धरमणियों के नूपुरों (पायजेब नामक आभूषणों) की आवाज उदय होने पर, अर्थात् चन्द्र के निकलने पर सन्ध्या वन्दन करके सायंकाल के समय ही पत्तों के विस्तर पर गिरकर (लेटकर) शरीर के अंगों का ध्यान न करती हुई पड़ गई ।

सावित्री भी सायंकालीन क्रिया-कलापों को करके सोने के समय पत्तों के विस्तर पर गई और निद्रा आते ही सो गई।

संस्कृत-व्याख्या —अथ दधीचगमनानन्तरम्, मुहूर्तमात्रमिव किञ्चित्कालमिव स्थित्वा उपविश्य। तस्य दधीचस्य, ताम् अनुपमां, रूपसम्पदं सौन्दर्यसम्पत्तिम्, अस्याः सरस्वत्याः, हृदयं चित्तं, पुनः पुनः भूयोभयः, व्यस्मयंत आश्चर्ययुक्तमकरोत्। अवशेव पराधीनेव, केनापि, तामेव, दिशं दधीचप्रस्थितदिशामेव, दृष्टिः चक्षुः, अनीयत नियतेस्म। अप्रतिहतमपि अप्रेषितमपि, मनः चित्तं, तेनैव दधीचेनसार्धम् सह, अगात् प्रस्थितमस्ति। कुतोऽपि, अस्याः सरस्वत्याः चेतसि हृदये, वालवनलतायाः नूतनकाननवल्लर्याः, नवपल्लव इव नूतनकिसलय इव, अनुरागः स्नेहः, अजायत अजनि, ततः प्रभृति तदारम्य, सालस्येव आलस्यग्रसितेव, दिवसम् अहः, दिनं, अनयत् व्यतीतवती, प्रत्यक् प्रतीच्यां दिशि, पर्यस्तमण्डले=पर्यस्तं पतितं, यातं, मण्डलं विम्बं यस्य सः तस्मिन्, लाङ्गलिकास्तवकताम्रत्विषि=लाङ्गलिकायाः एतन्नामकस्य पुष्पस्य स्तवक इव गुच्छ इव, ताम्रा रक्तवर्णा, त्विट् प्रभा, कान्तिः यस्य तत् तस्मिन्, कमलिनीकामुके—कमलिन्याः नलिन्याः कामुके प्रिये कठोरसारसशिरः शोणशोचिषि =कठोरः कठिनः, यः सारसः पक्षिविशेषः तस्य शिरः इव शोणं रक्तवर्णं शोचिः, कान्तिः यस्य सः तस्मिन्, त्रयीमये वेदमये सावित्रे तेजसि सूर्यसम्वन्धिनि प्रकाशे, व्योमव्यापिनी, गगनमण्डलव्यापिनि तिमिरसंचये अन्धकारसमूहे. तरुण तरतमालश्यामले नूतनतमालवृक्षस्येवकृष्णे मलिनयति मलिनतां प्रापयति सति, सञ्चरत्सिद्धसुन्दरीनूपुररवानुसारिणि—सञ्चरन्त्यः व्रजन्त्यः, याः सिद्धसुन्दर्यः सिद्धरमण्यः, तासां सिद्धरमणीनां, नूपुराणाम् आभूषणविशेषाणां, रवान् शब्दान्, अनुसरतीति तस्मिन्, मन्दाकिनीहंस इव आकाशगङ्गाहंस इव, समुत्सर्पति निष्क्रान्ते सति, शशिनि चन्द्रमसि, कृतसन्ध्याप्रणामा=कृतः सन्ध्यायां सायं काले, प्रणामः अभिवादनं यया सा, निशामुख एव सायंकाल एव, निपत्य, विमुक्ताङ्गी=विमुक्तानि अङ्गानि यस्या सा परित्यक्तशरीरध्याना, पल्लवशयने, तस्थौ अतिष्ठत्, यथाक्रियमाणं विधिपूर्वकं, सायन्तनं सायंकालीनं, क्रियाकलापं कार्यनिकरं, कृत्वा, किसलयशयनं पल्लववास्तरणम् सावित्र्यपि, अभजत असेवत, च, जातनिद्रां प्राप्तनिद्रा, सुष्वाप अस्वपत्, निद्रामवाप इत्यर्थः।

शब्दार्थ—रूपसम्पदं=सौन्दर्य को, व्यस्मयंत=आश्चर्य करने लगा; आचकांक्ष=इच्छा की, अवशेव=पराधीन सी, अप्रतिहतमपि=विना प्रेषित

किये हुए भी, अगात्=चला गया, अजायत=उत्पन्न हो गया, अस्तमुपयाति =अस्त हो जाने पर, प्रत्यक्=पश्चिम दिशा में, पयस्तमण्डले=सूर्य मण्डल के ढलने पर, लाङ्गलिकास्तवकताम्रत्विषि=लाङ्गलिका नामक पुष्प के गुच्छे के समान, लाल कान्ति वाले, कमलिनीकामुके=कमलिनी के प्रिय (सूर्य), कठोरसारसशिरःशोणशोचिषि=बूढ़े सारस पक्षी के शिर की लाल कान्ति के समान लाल कान्ति वाले, सावित्रे=सूर्य के, तेजसि=प्रकाश के, त्रयीमये वेद-मय, तरुणतरश्यामले=नवीन तमाल पेड़ के समान काले, व्योम व्यापिनी= आकाश में व्याप्त, तिमिरसंचये=अन्धकार के समूह के, सञ्चरत्सिद्धसुन्दरी नूपुररवानुसारिणि=चलती हुई सिद्ध कामिनियों के, नूपुर=(पायजेब) के शब्द का अनुसरण करने वाले, मन्दाकिनीहंस इव=आकाश गंगा के हंस के समान, समुत्सर्पति=निकलने होने पर, कृतसन्ध्याप्रणामा=सायं कालीन संध्या वन्दन करके, निशामुख एव=सांयकाल के समय में ही, पल्लवशयने= नये पत्तों के बिस्तर पर, निपत्य=गिरकर, लेटकर के, विमुक्ताङ्गी=शरीर के अंगों का ध्यान छोड़कर, तस्थौ=पड़ गई, यथाक्रियमाणं=विधिपूर्वक किये जाने वाले, सायंतनं=सायं कालीन, क्रियाकलापं=कार्य समूह को, किसलय-शयनम्=नूतन पत्तों के बिस्तर पर, अभजत=लेट गई, जातनिद्रा=निद्रा आते ही, सुष्वाप=सो गई।

इतरा तु मुहुर्मुहुरङ्गबलनैर्विलुलितकिसलयशयनतला निमीलतनयनापि नालभत निद्राम्। अचिन्तयच्च—'मर्त्य-लोकः खलु सर्वलोकानामुपरि, यस्मिन्नेवंविधानि भवन्ति त्रिभुवनभूषणानि सकलगुणग्रामगुरूणि रत्नानि। तथा हि— तस्य मुखलावण्यप्रवाहस्य निष्यन्दबिन्दुरिन्दुः। तस्य च चक्षुषो विक्षेपाः कुमुदकुवलयकमलाकाराः। तस्य चाधर-मणोर्दीधितयो विकसितबन्धूकवनराजयः। तस्य चाङ्गस्य परभागोपकरणमनङ्गः। पुण्यभाञ्जि तानि चक्षूंषि चेतांसि यौवनानि वा स्त्रणानि येषामसावविषयो दर्शनस्य। क्षणं नु दर्शयता च तमन्यजन्मजनितेनेव मे फलितमधर्मेण। का

प्रतिपत्तिरिदानीम् ?" इति चिन्तयन्त्येव कथंकथमप्युपजात-निद्रा चिरात्क्षणमशेत। सुप्तापि च तमेव दीर्घलोचनं ददर्श।

अर्थ—परन्तु दूसरी (सरस्वती) ने तो वार-वारं कोमल पत्तों के विस्तर को करवटें वदलने के द्वारा मलिन कर दिया, और नेत्र बन्द करने पर भी निद्रा नहीं प्राप्त कर सकी, तथा सोचने लगी कि निश्चय ही मर्त्यलोक समस्त लोकों में श्रेष्ठ है, जिसमें ऐसे तीनों लोकों की शोभा बढ़ाने वाले, समस्त गुणों के समूह रूप गरिमा युक्त रत्न उत्पन्न होते हैं, क्योंकि उसके मुख के सौन्दर्य की धारा से टपका हुआ बूंद ही (तो) चन्द्रमा है, और उसके नेत्रों के दृष्टि-पात के ही कुमुद, नील कमल तथा लाल कमल आकार हैं अर्थात् उसके नेत्रों की दृष्टिक्षेप से ही कुमुद सफेदी को नीलकमल नीलिमा को, लालकमल लालिमा को प्राप्त कर उत्पन्न हुये हैं और उसके ओठ रूपी मणि की किरणों से ही वन्धूक (दोपहरी) नामक पुष्पों की वन पंक्तियाँ विकसित हुई हैं, कामदेव तो उसके अंगों की शोभा का साधन मात्र है, वे आँखें, वे हृदय, वे स्त्रियाँ पुण्यशालिनी हैं जिनके दर्शन का यह विषय हो चुका है, अर्थात् वे आँखें, स्त्रियाँ हृदय धन्य हैं जिन्होंने इन महानुभाव का दर्शन प्राप्त किया है। (मैं जानती हूं कि) मेरे पूर्वजन्म में उत्पन्न अधर्म (पाप) का फल उदय हो गया हो जिसके कारण थोड़ी देर के लिये उन महानुभाव का दर्शन प्राप्त किया। अब (इस विषय में) क्या उपाय करूं ? यह सोचते-सोचते किसी प्रकार वडी कठिनता से निद्रा प्राप्त की और थोड़ी देर के लिये सो गई, सोई हुई भी (सरस्वती) ने विशाल नेत्र वाले उन्हीं (दधीच) को देखा।

संस्कृत-व्याख्या—इतरा द्वितीया, सरस्वती, मुहुर्मुहुः पुनः पुनः, अङ्गवलनैः शरीराङ्गपरिवर्तनैः, विलुलितकिसलयशयनतला=विलुलितं मर्दितं, किसलयानां नूतनपल्लवानां, शयनतलम् पर्यङ्कतलं यया सा तथा भूतेयं सरस्वती, निमीलितनयनाऽपि=निमीलिते पिहिते, नयने नेत्रे, यया सा, निद्राम्, नालभत न लेभे च, अचिन्तयत् व्यचारयत्, सर्वलोकानां लोकत्रयाणाम् उपरि श्रेष्ठः, मर्त्यलोक भूलोकः, खलु निश्चयेन, अस्ति, यस्मिन् भूलोके, एवंविधानि एतादृशानि, त्रिभुवनभूषणानि त्रैलोक्यालङ्करणानि, सकलगुणग्रामगुरुणि=सकलाः निखिलाश्च, ये गुणाः तेषां दयादाक्षिण्यादिगुणानां, ग्रामाः निकराः, तैः गुण-समूहैः, गुरुणि महान्ति, रत्नानि भवन्ति जायन्ते, तथाहि यस्यैव, तस्य दधीच-

स्यः, मुखलावण्यप्रवाहस्य=मुखस्य आननस्य, यत् लावण्यं सौन्दर्यं तस्य प्रवाहः वेगः, तस्य मुखसौन्दर्यप्रवाहस्य, निष्यन्दबिन्दुः निपतितबिन्दु एव इन्दुः चन्द्रोऽस्ति, इति, तस्य, च, चक्षुषः नेत्रस्य, विक्षेपाः दृष्टिपाताः, (एव) विकचकुमुदकुवलयकमलाकराः=विकचितानि, प्रफुल्लानि, कुमुदानि कुमुदपुष्पाणि कुवलयानि नीलकमलानि कमलानि रक्तकमलानि, तेषाम् आकाराः समूहाः तस्य, च, अधरमणेः=अधरमेव मणिः तस्य ओष्टरत्नस्य, दीधितयः किरणाः, विकसितबन्धूकवनराजयः=विकसितानां प्रफुल्लितानां बन्धूकानां पुष्पविशेषाणां, वनानां काननानां, राजयः पङ्क्तयः, तस्य, च, अङ्गस्य शरीरावयवस्य, अनङ्गः कामदेवः, परभागोपकरण=परभागस्य शोभातिशयस्य, उपकरणं साधनं, पुण्यभाञ्जि पुण्यवन्ति, तानि, चक्षूंषि नेत्राणि, चेतांसि हृदयानि, यौवनानि तारुण्यानि, वा अथवा स्त्रैणानि स्त्रीत्वानि, येषां जनानां दर्शनस्य असौ अयम् विषयः दृष्टिगोचरविषयः, जातोऽस्ति, क्षणं क्षणमात्रं, न खलु, अन्यजन्मजनितेनेव अपरजन्मोद्भवेनेव, मे अधर्मेण पापेन, त दधीचं, दर्शयता दृष्टिपथमानयता, फलितम् साफल्यमवाप्तमिति, इदानीम् साम्प्रतं, का प्रतिपत्तिः प्रतीकारः ? इति इत्येवं प्रकारेण, चिन्तवन्ती विचारयन्ती एव कथंकथमपि कथञ्चित्प्रकारेण-उपजातनिद्रा=उपजाता प्राप्ता, निद्रा, यया, सा प्राप्तनिद्रा, अचिरात् शीघ्रमेव, क्षणं क्षणमात्रम्, अशेत शिष्ये। सुप्ताऽपि निद्राधिगताऽपि तमेव दधीचमेव, दीर्घलोचनं विशालनेत्रं, ददर्श अपश्यत्।

शब्दार्थ—इतरा=दूसरी (सरस्वती), अङ्गवलनैः=करवटें बदलने से, विलुलितकिसलयशयनतला=मर्दित कर दिया है कोपल पत्तों के बिस्तर को जिसने वह, निमीलितनयनाऽपि=आँखें बन्द किए हुए भी, त्रिभुवनभूषणानि =तीनों लोकों के अलंकार, सकलगुणग्रामगुरुणि=समस्त गुणों के समूह में श्रेष्ठ, मुखलावण्यप्रवाहस्य=मुख की सुन्दरता के प्रवाह के, निस्यन्दबिन्दुः= टपका हुआ बूंद, इन्दुः=चन्द्रमा, विक्षेपाः=दृष्टिपात, विकचकुमुदकुवलयकमलाकराः=खिले हुए कुमुद, नील कमल, और लाल कमलों की खानें, दीधितयः=किरणें, विकसितबन्धूकवनराजयः=खिले हुए बन्धूक नामक पुष्पों की वन पंक्तियाँ, अनङ्गः=कामदेव, परभागोपकरणं=शोभातिशय का साधन, अन्यजन्मजनितेनेव=पूर्व जन्म में उत्पन्न, प्रतिपत्तिः=उपाय, उपजातनिद्रा= नींद को प्राप्त हुई, अचिरात्=थोड़ी देर के लिये, अशेत=सो गई, सुप्तापि सोई हुई भी, तमेव=उसी को, ददर्श=देखा।

स्वप्नासादितद्वितीयदर्शना चाकर्णाकृष्टकामुकेण मनसि निर्दयमताड्यत कमरकेतुना । प्रतिबुद्धाया मदनशराहतायाश्च तस्या वार्तामिवोपलब्धुमरतिराजगाम । तथा हि—ततः प्रभृति कुसुमधूलिधवलाभिर्वनलताभिरताडितापि वेदनामधत्त । मन्दमन्दमारुतविधुतैः कुसुमरजोभिरदूषितलोचनाप्यश्रुजलं मुमोच । हंसपक्षतालवृन्तवातव्रातविततैः शोणशीकरैरसिक्ताप्यार्द्रतामगात् । प्रेङ्खत्कादम्बमिथुनाभिरनूढाप्यघूर्णत वनकमलिनीकल्लोलदोलाभिः । विघटमानचक्रवाकयुगलविसृष्टैरस्पृष्टाहि श्यामतामाससाद विरहनिःश्वासधूमैः । पुष्पधूलिधूसरैर दष्टापि व्यचेष्टत मधुकरकुलैः ।

अर्थ—(सरस्वती ने) स्वप्न में दूसरी बार दधीच का दर्शन प्राप्त किया तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो कामदेव ने कानों तक धनुष की डोरी खींचकर बड़ी निर्दयता के साथ उसके (सरस्वती के) हृदय स्थल पर प्रहार किया, तब कामदेव के बाण से ताडित सरस्वती की नींद टूट गई तो मानो सरस्वती के समाचार को जानने के लिये अरति (वैराग्य) उसके पास आ गई, उस समय से वह सरस्वती पुष्प पराग से सुशोभित (उज्ज्वल) वन में उत्पन्न लताओं के द्वारा आहत न होते हुए भी पीड़ा का अनुभव करने लगी। मन्द वायु से काँपते हुये पुष्प पराग के कणों के आँखों में न गिरने पर भी आँसुओं को गिराने लगी, हंसों के पंखों की वायु से उड़ने वाले शोण नदी के जल कणों से सिक्त न होने पर भी वह आर्द्र रहती थी अर्थात् स्वेद बिन्दुओं से आर्द्र रहती थी, हंसों के जोड़ों से युक्त वन की कमलिनी के झूले पर न बैठने पर भी उसे चक्कर आने लगे, (सायंकाल के समय) अलग होने वाले चक्रवाकों के विरह जन्य श्वास रूपी धूम के स्पर्श के न होने पर भी वह श्यामता प्राप्त करने लगी। पुष्प पराग में लोटने वाले भौंरों से न काटे जाने पर भी व्याकुल होने लगी। यहाँ विरोधाभास और उत्प्रेक्षालंकार की छटा दर्शनीय है।

संस्कृत-व्याख्या—स्वप्ने, आसादितं लब्धं, दृष्टं, द्वितीयं द्वितीयवारं,

दर्शनम् साक्षात्कारः यया सा, एवम्भूता सरस्वती, आकर्णाकृष्टकार्मुकेण= आकर्णं कर्णपर्यन्तम्, आकृष्टं आकृष्टकर्ण प्रापितं, कार्मुकं धनुः, येन सः तेन तथाभूतेन, मकरकेतुना कामदेवेन. मनसि चित्ते, अताड्यत् ताड्यतेस्म, प्रतिबुद्धायाः त्यक्तनिद्रायाः, मदनशरेण, पीडितायाः सरस्वत्याः, वार्तामिव वृत्तमिव, उपलब्धुम् प्राप्तुमः, वैराग्यम, आजगाम कुसुमधूलिधवलाभिः =कुसुमानां, पुष्पानां, धूलिभिः परागकर्णैः, धवलाभिः श्वेताभिः (१ ततः प्रभृति तदारभ्यैव, अहताऽपि अताडिताऽपि, वेदनां पीडाम् अधत्त दधार। मन्दमन्दमारुतविधुतैः=मन्दं, मन्दं वायुना पवनेन, विधुतैः कम्पितैः, कुसुम-रजोभिः पुष्पपरागकणैः अदूषिताऽपि रहिताऽपि, सा, अश्रुजलं वाष्पम मुमोच अमुञ्चत्। हंसपक्षतालवृन्तवातव्रातविततैः=हंसानां पक्षाः एव तालवृतानि व्यजानि, तेषां व्यजनभूतानां, वाताः वायवः तेषां वासुनां, व्राताः समूहाः, तैः वायुसमूहैः, शोणशीकरैः शोणस्य एतनाम्न, नदस्य, शीकरैः जलकणैः असिक्तापि अनार्द्राऽपि, आर्द्रतां जलार्द्रताम् अगात् प्राप्तवती, विरोधपरिहारार्थम् जलकणैः असिक्ताऽपि, स्वेदविन्दुसिक्ताऽऽसीदिति विरोधपरिहारः, प्रेंखत्कादम्बमिथुलाभिः=प्रेंखन्ति इतस्ततः भ्रमन्ति, यानि, कादम्बानां कलद हंसानां, मिथुनानि युगलानि यासु ताः एवंभूताभिः वन-कमलिनि कल्लोलदोलाभि=वनेषु जलेषु, याः कमशिलन्यः. ता एव कल्लोल-दोलाः वीचिदोलाः ताभिः एवम्भूताभिः दोलाभिः अनूढाऽपि न उपविष्टाऽपि, अघूर्णत अभ्रमत् भ्रमिमवाप इत्यर्थः। विघटमानचक्रवाकयुगलविसृष्टैः= परित्यक्तैः विरहश्वासनिःश्वासधूमैः अस्पृष्टाऽपि अप्रभाविताऽपि, श्यामतां कृष्णताम्। आससाद प्राप्तवती पुष्पधूलिधूसरैः पुष्पाणां कुसुमानां, धूलिभिः रजकणैः, धूसरैः मलिनैः, मधुकरकुलैः मधुकराणां भ्रमराणां कुलैः समूहैः अदष्टाऽपि स्पर्शशून्याऽपि, व्यचेष्टत व्याकुलताम् प्राप्तवती।

शब्दार्थ—स्वप्नासादितद्वितीयदर्शना=स्वप्न में दूसरी बार (दधीच का) दर्शन प्राप्त करने वाली, आकर्णाकृष्टकार्मुकेण=कानों तक खींचे हुए धनुष वाले, मकरकेतुना=कामदेव के द्वारा निर्दयम्=निर्दयतापूर्वक, प्रतिबुद्धायाः=जगी हुई, मदनशरहतायाः=कामदेव के वाणों से आहत, तस्याः=सरस्वती के, वार्ता=समाचार को, उपलब्धुमिव=मानो प्राप्त करने के लिए, अरतिः=वैराग्य, आजगाम=आ गई, कुसुमधूलिधवलाभिः=

पुष्प पराग से उज्ज्वल. अधत्त=धारण किया, प्राप्त किया, मन्द मन्दमारुतविधूतैः=धीरे-धीरे चलने वाले वायु से कांपने वाले, कुसुमरजोभिः=पुष्प पराग कणों से, अदूषितलोचनाऽपि=अदूषित आँखों वाली होने पर भी, मुमोच=छोड़ रही थी। हंसपक्षतालवृन्तवातव्रातविततैः=हंसों के पंख रूपी पंखे की हवा से उड़ाये हुए, शोणशीकरैः=शोण नदी के जल कणों से, असिक्ताऽपि=आर्द्र (भीगी) न होने पर भी, आर्द्रताम्=भीगी हुई, अगात्=हो गई। प्रेङ्खत्कादम्बमिथुनाभिः=इधर-उधर चलते हुए हंसों के जोड़ों के द्वारा, वनकमलिनीकल्लोलदलाभिः=जल में (स्थित) कमलिनी रूपी झूले पर, अनुढाऽपि=न बैठी हुई भी, अघूर्णत=चक्कर खा रही थी, विघटमानचक्रवाकयुगलविसृष्टैः=अलग होते हुए चक्रवाक जोड़ों से छोड़े हुए, विरहनिःश्वासधूमैः=विरहजन्य श्वास रूपी धुएं से, अस्पृष्टाऽपि=न छुई जाती हुई भी, श्यामतां=कालिमा को। आससाद=प्राप्त हो गई, पुष्पधूलिधूसरैः=पुष्पपराग कणों से मलिन, मधुकरकुलैः=भ्रमर समूहों से, अदष्टाऽपि=न काटी हुई भी, व्यचेष्टत=व्याकुलता को प्राप्त हो गई।

अथ गणरात्रापगमे निवर्तमानस्तेनैव वर्त्मना तं देशं समागत्य तथैव निवारितपरिजनश्छत्रधारद्वितीयो विकुक्षिरुढौके। सरस्वती तु तं दूरादेव संमुखमागच्छन्तं प्रीत्या ससंभ्रममुत्थाय वनमृगीवोद्ग्रीवा विलोकयन्ती मार्गपरिश्रांतमस्नपयदिव धवलितदशदिशादृशा। कृतासनपरिग्रहं तु तं प्रीत्या सावित्री पप्रच्छ—आर्य, कच्चित्कुशली कुमारः ?' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मति, कुशली। स्मरति च भवत्योः। केवलममीषु दिवसेषु तनीयसीमिव तनुं बिभर्ति। माननिमित्तां च शून्यतामिवाधत्ते।

अर्थ—कई रातों के बीतने पर एक दिन उसी मार्ग से लौटता हुआ उसी देश में आकर सेवकों को दूर करके अर्थात् बाहर ही रोक करके, छत्रधारण करने वाले सेवक के साथ विकुक्षि (वहां) पहुंचा (आया) सरस्वती तो उसे दूर से ही सामने आते हुए को (देखकर) प्रेम से सहसा उठकर वनमृगी के समान

गर्दन ऊपर उठाये हुए मार्ग के परिश्रम से थके हुये विकुक्षि को दिशाओं को सफेद करने वाली दृष्टि से स्नान (सी) कराने लगी। उस विकुक्षि के आसन पर बैठ जाने पर सावित्री ने प्रेमपूर्वक उससे पूछा। श्रीमन् क्या कुमार (दधीच) कुशल से हैं? तो उसने कहा चिरञ्जीविनि! (हाँ) वह कुशल ही हैं और आप दोनों का स्मरण कर रहे हैं, केवल (आजकल) इन दिनों उनका शरीर (क्रमशः) दुर्बल होता जा रहा है, विना कारण के ही वह शून्यता को धारण कर रहा है अर्थात् नहीं मालूम क्यों वे शून्य से रहते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—अद्य सम्प्रति, गणरात्रापगमे=गणरात्रं वहुरजन्यः तस्य अपगमे व्यतीते सति, तेनैव पूर्वोक्तेनैव, वर्त्मना पथा, निवर्तमानः प्रत्यागच्छन्, तं, देशं, शोणतटप्रदेशं, तथैव, समागत्य समेत्य, निवारितपरिजनः निवारितः दूरिकृतः, परिजनः सेवकसमूहः, येन सः, छत्रधारद्वितीयः छत्रं धारयतीति छत्रधारः द्वितीयः यस्य सः एवम्भूतः, विकुक्षिः एतन्नामा कश्चित् शर्यातस्य सेवकः डुढौके आजगाम। सरस्वती, तु तं विकुक्षिं, दुरादेव, सम्मुखम् आगच्छन्तम् आयान्तं प्रीत्या प्रेम्णा, ससंम्भ्रमम् सहसा उत्थाय आसनादुत्थाय, वनमृगीव=वनस्य काननस्य मृगीव हरिणीव, उद्ग्रीवासमुन्नतकन्धरा, मार्गपरिश्रान्तं—मार्गे पथि, परिश्रान्तं, धवलितदशदिशा=धवलिताः उज्ज्वलीकृताः, दश दिशः, यया, सा तया, दृशा दृष्ट्या, अस्नपयत् स्नापयामास। कृतीसनपरिग्रहः=कृतः आसनस्य परिग्रहः स्वीकारः येन सः, तम् विकुक्षि, प्रीत्या प्रेम्णा सावित्री, पपृच्छ अपृच्छत्। आर्य श्रीमन्, कच्चित् कुमारः दधीचः कुशलो आनन्दपूर्वकमास्ते? इति, सः विकुक्षि, अब्रवीत् प्रत्युवाच, आयुष्मति? सावित्रि! कुशली सः सानन्दोऽपि भवत्योः युवयोः द्वयोः च स्मरात, केवलम् अमीषु, एतेषु, दिवसेषु दिनेषु, तनीयसीमेव कृशामेव, तनुं शरीरं विभर्ति दधाति, अविज्ञायानानमित्तां अज्ञातकारणमं, शून्यतामिव स्तब्धतामिव आधत्ते दधाति।

शब्दार्थ—गणरात्रापगमे=रातों के बीतने पर, वर्त्मना=मार्ग से, निवर्तमानः=लौटता हुआ, निवारितपरिजनः=सेवकों को रोक दिया है जिसने, छत्रधारद्वितीयः=छत्र (छाता धारण करने वाले सेवक सहित) विकुक्षिः=नामक शर्यात का सेवक, डुढौके=आया। ससंम्भ्रमं=सहसा, वनमृगीव=वन की हरिणी के समान, उद्ग्रीवा=गर्दन ऊपर किए हुए, मार्गपरिश्रान्तं=

मार्ग में थके हुए को, अवलितदशादिशा=दशों दिशाओं को सफेद करने वाली, दृशा=दृष्टि से, अस्नपयत् इव=मानो स्नान कर रही थी। कृतासनपरिग्रहं =आसन ग्रहण करने वाले, पप्रच्छ=पूंछा, भवत्योः=आप दोनों को, अमीषु =इन, तनीयसीम्=दुर्बले, बिभंति=धारण कर रहा है, अविज्ञायमान-निमित्तां=प्रतीत न होने वाले कारण से युक्त, शून्यतां=सूनेपन को, आधत्ते= धारण कर रहा है।

अपि च। अन्वक्षमागमिष्यत्येव मालतीति नाम्ना वाणिनी वार्तां वो विज्ञातुम् उच्छ्वसितं हि सा कुमारस्य' इति। तच्छ्रुत्वा पुनरपि सावित्री समभाषत—'अतिमहानुभावः खलु कुमारो येनैवमविज्ञायमाने क्षणदृष्टेऽपि जने परिचिन्त-मनुबध्नाति। यस्य हि गच्छतो यदृच्छया कथमप्यंशुकमिव मार्गलतासु मानसमस्मासु मुहूर्तमासक्तमासीत्। अशून्यं हि सौजन्यमाभिजात्येन वः स्वामिसूनोः। अलसः खलु लोको यदेवं सुलभसौहार्द्राणि। येन केनचिन्न क्रीणाति महतां मनांसि। सोऽयमौदार्यातिशयः कोऽपि महात्मनामितरजन-दुर्लभो येनोपकरणीकुर्वन्ति त्रिभुवनम्' इति। विकुक्षिस्तूच्चा-वचैरालापैः सुचिरमिव स्थित्वा यथाभिलषितं देशमयासीत्।

अर्थ—और भी—आप लोगों के समाचार को जानने के लिये मालती नामक दूती (आपके) सामने आयेगी अर्थात् आने ही वाली है, वह मालती कुमार दधचि की प्राण है, यह सुनकर सावित्री फिर बोली, निश्चय ही कुमार दधीच अत्यन्त सज्जन महानुभाव हैं, जो इस प्रकार अपरिचित क्षणमात्र के देखे हुए व्यक्ति में भी परिचय मान रहे हैं, जाते हुए दधीच का मन स्वेच्छा से क्षण भर के लिए हम लोगों में इस प्रकार आसक्त हो गया, जिस प्रकार मार्ग स्थित लताओं में अंशुक (वस्त्र) उलझ (आसक्त हो) जाता है, आपके स्वामी के पुत्र दधीच में उच्च कुल के साथ-साथ सौजन्यता भी हैं अर्थात् जैसे वे उच्च कुलोत्पन्न हैं वैसे ही सज्जनता से युक्त हैं, ये संसार के लोग निश्चय ही बड़े

आलसी होते हैं, जो इस प्रकार सरलता से प्राप्त—सौहार्द्र से युक्त महापुरुषों के मन को जिस किसी वस्तु के द्वारा खरीद नहीं लेते हैं, महान् आत्मा वाले महापुरुषों में ही कोई अनुपम उदारता की अधिकता प्राप्त होती है जो उदारता अन्य लोगों में नहीं प्राप्त होती है जिस उदारता के द्वारा ही तीनों लोकों का उपकार करते हैं, अथवा तीनों लोकों को वश में कर लेते है। विकुक्षि ने तो बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें करते हुए बड़ी देर तक बैठकर अपने प्रिय स्थान (स्वदेश) की ओर प्रस्थान किया अर्थात् अपने स्थान पर लौट गया।

संस्कृत-व्याख्या—क्षपि च, व: युवयो:, वार्तां, समाचारं, विज्ञातुम अवगन्तुं, मालतीति, नाम्ना अभिधेयेन, वाणिनि दूती, अन्वक्षम्=अक्षणाम् अनु =अन्वक्षम प्रत्यक्षम, अगमिष्यत्येव उपस्थिता भविष्यत्केव, हि निश्चयेन, सा मालती, कुमारस्य दधीचस्य, उच्छ्वसितं प्राणभूतेति अस्ति, तछ्रुत्वा तदाकर्ण्य, सावित्री, पुनरपि—भूयोऽपि, समभाषत प्राह खलु निश्चयेम, कुमार: दधीच:, अतिमहानुभाव: अतीवोदारहृदय:, अस्ति, येन औदार्येण, अविज्ञायमाने अपरिचितं, क्षणदृष्टेऽपि जने क्षणमात्रपरिचिते जनेऽपि, परिचितं परिसम्बन्धम्, अनुबध्नाति दृढी करोति स्वीकरोति, हि यत:, गच्छत: व्रजत:, तश्य दधीचस्य, यदृच्छया अनायासेनैव, अस्मासु, मानसं मन:, मुहुर्त्तम् क्षणमात्रम्, मार्गलतासु मार्गस्थितव्रततिषु, कथमपि, अंशुकमिव, वस्त्रमिव, आसक्तम् लग्नम्, आसीत्, व: भवत:, स्वामिसूनो: स्वामिसुतस्य, अभिलात्येन कौलीन्येन, अशून्यं विरहितम् अस्ति, लोक: संसारोऽयं, खलु किल, अलस: दीर्घसूत्री अस्ति, यत् यत्, एवम् सुलभसौहार्द्राणि=सुलभमित्राणि, महतां महानुभावानां, मनांसि चेतांसि, येन केनचित् वस्तुना न मैव, क्रीणाति, महात्मनां सज्जनानां, सोऽयम्, कोऽपि अलौकिक:, औदार्यातिशय: सौजन्याधिक्य:, इतरजनदुर्लभ:=इतरजनेषु अन्य जनेषु, दुर्लभ: लब्धुमशक्य: येन औदर्यातिशयेन, त्रिभुवनं भुवनत्रयम् उपकरणीकुर्वन्ति आत्मीकुर्वन्ति, उच्चावचै: अनेकप्रकारै: आलापै: वार्तालापै:, सुचिरं चिरसमयं, स्थित्वा उपविश्य, यथाभिलषितं स्वेप्सितं देशम् स्थानम्, अयासीत्-जगाम।

शब्दार्थ - व: =तुम लोगों के, वार्ता=समाचार को, विज्ञातुम=जानने के लिए, वाणिनी=दूती, अन्वक्षं=सामने, उच्छ्वसितं=प्राण, अविज्ञायमाने =अपरिचित, आभिजात्येन=कुलीन, सौजन्यं=सज्जनता, अलस:=आलसी,

सुलभसौहृदानि=सरलता से प्राप्त मित्र, क्रीणाति=खरीदता है, इतरजन-दुर्लभः=अन्य लोगों के लिये प्राप्त होता कठिन, उपकरणीकुर्वन्ति=वश में कर लेते हैं, उच्चावचैः=ऊँचे-नीचे, लम्बे-चौड़े, सुचिर=बड़ी देर तक, अयासीत्=चला गया।

अपरेद्यु रुद्यति भगवति द्यु मणावुद्दामद्यु तावभिद्रुततारके तिरस्कृततमसि तामरसव्यासव्यसनिनि सहस्ररश्मौ शोणमुत्ती-र्यायान्ती, तरलदेहप्रभावितानच्छलेनात्यच्छं सकलं शोण-सलिलमिवानयन्ती, स्फुटितातिमुक्तककुसुमस्तबकसमत्विषि सटाले महति मृगपताविव गौरी तुरंगमे स्थिता, सलील-मुरोबन्धारोपितस्य तिर्यगुत्कर्णतुरगाकर्ण्यमाननूपुरपटुरणित-स्यातिबहलेन पिण्डालक्तकेन पल्लवितस्य कुङ्कुमपिञ्जरित-पृष्ठस्य चरणयुगलस्य प्रसरद्भिरतिलोहितैः प्रभाप्रवाहैरुभय-तस्ताडनदोहदलोभागतानि किसलयितानि रक्ताशोकवनानी-वाकर्षयन्ती, सकलजीवलोकहृदयहठहरणाघोषणयेव रशनया शिञ्जानजघनस्थला, धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेणा-प्रपदीनेन कंचुकेन तिरोहिततनुलता, छातकंचुकान्तरदृश्यमानै-राश्यानचन्दनधवलैरवयवैः स्वच्छसलिलाभ्यन्तरविभाव्यमान-मृणालकांडेव सरसी, कुसुम्भरागपाटलं पुलकबन्धचित्रं चन्डातकमन्त.स्फुटं स्फटिकभूमिरिव रत्ननिधानमादधाना, हारेणामलकीफलनिस्तुलमुक्ताफलेन स्फुरितस्थूलग्रहगणशारा, शारदीव श्वेतविरलजलधरपटलावृता द्यौः।

अर्थ—दूसरे दिन आकाश रत्न, अत्यन्त उत्कट कान्ति वाले, नक्षत्रसमूह को भगा देने वाले, अन्धकार को दूर (नष्ट) करने वाले, कमलों को विकसित करने वाले भगवान् सूर्य से उदय होने पर शोण नद पार करके आती हुई

मालती दिखाई पड़ी। वह अपने शरीर की चंचल कान्ति के विस्तार के ब्याज से सम्पूर्ण शोण नद के जल को अत्यन्त निर्मल बना रही थी, वह एक विशाल अश्व पर सवार थी, जिस अश्व का रंग माधवी लता के पुष्प समूह के समान था, स्कन्ध के केशों (सटा) से सुशोभित सिंह पर सवार पार्वती के समान प्रतीत हो रही थी। लीलापूर्वक मालती अपने पैर रकाब में रखे हुई थी, जब उसके चरणों के नूपुर बजते थे तो मालती का अश्व अपने कान खड़े करके गर्दन टेढ़ी किये हुए सुनता था, उसके चरणों में आलक्त का रंग लगा हुआ था, उसके दोनों तलुवों में कुंकुम लगा हुआ था, उसके चरणों की लाल कान्ति दोनों ओर फैल रही थी, वह मालती (पाद) प्रहार की इच्छा से, रक्ताशोक के हरे-भरे को अपनी ओर आकर्षित करती हुई आ रही थी, उसकी कमर में बंधी हुई करधनी ऐसी बज रही थी, मानो वह करधनी संसार के समस्त जीवों के मन को बलात् हरण करने की घोषणा कर रही हो। उसका सम्पूर्ण शरीर धुले हुए श्वेत रेशमी वस्त्र से बने हुए साँप की केंचुल के समान बारीक पैरों तक लटकने वाले कचुक वस्त्र से ढका हुआ था। जिस सूक्ष्म कंचुक वस्त्र के अन्दर चन्दन लेप के सूख जाने पर उसके चमकने वाले गोरे अंग ऐसे दिखाई पड रहे थे, जैसे जलाशय के निर्मल जल के अन्दर कमल नाल (भसीडे) दिखाई देते हैं। कंचुक वस्त्र के नीचे सुसुम्भी रंग के लाल चण्डातक नामक वस्त्र विशेष (लहँगे) पर अनेक रंगों की बुंदकियाँ पड़ी हुई थीं, जिससे वह लहँगा ऐसा प्रतीत होता था मानो स्फटिक भूमि रत्नों के भण्डार को धारण किए हुए हो और आँवले के फल के समान बड़े-बड़े मोतियों की माला को गले में धारण किये हुए थी, वह मोतियों का हार चमकते हुए नक्षत्रों के समूह से परिपूर्ण शरत्काल के आकाश के समान प्रतीत हो रहा था, जिस शरत्काल में कहीं कहीं श्वेत बादलों के टुकड़े छाये रहते हैं। इसमें उपमा उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों का एक साथ वर्णन बाण की अद्भुत प्रतिभा का परिचायक है।

संस्कृत-व्याख्या—अपरेद्युः अपरस्मिन् दिने, (मालती समदृश्यत इति दूरेण अन्वयः) द्युमणौ आकाशरत्ने, उद्दामद्युतौ=उद्दाम्नी अनभिभवनीया, द्युतिः कान्तिः, यस्य सः तस्मिन् सूर्ये, अभिद्रुततारके=अभिद्रुताः तिरस्कृताः, दूरीकृताः तारकाः नक्षत्राणि, येन सः तस्मिन् तिरस्कृततमसि=तिरस्कृतं दूरीकृतं तमः अन्धकारः येन सः तस्मिन्, तामरसवनसब्रह्मचारिणि=ता मरसं

कमलं, तस्य रक्तकमलस्य, व्यासः विस्तारः, तत्र व्यसनम् आसक्तिः, अस्य अस्तीति तस्मिन्, सहस्ररश्मौ सूर्ये, उद्यति सति उदिते सति, तरल देहप्रभाविता नच्छलेन=तरला चञ्चला, या देहस्य शरीरस्य, प्रभा कान्तिः, तस्याः कान्तेः वितानः विस्तारः, तस्य, छलेन व्याजेन, अत्यच्छम् अतिस्वच्छं, सकलं निखिलं, शोणसलिलमिव शोणजलमिव आनयन्ती सहानयन्ती मालती समदृश्यत। स्फुटितातिमुक्तककुसुमस्तवकसमत्विषि=स्फुटितानि प्रफुल्लितानि, यानि, अतिमुक्तककुसुमानि एतन्नामकानि पुष्पाणि, तेषां, स्तवकेन गुच्छेन, समा तुल्या, त्विट् प्रभा, यस्य सः तस्मिन्, सटाले जटासमूहे, मृगपतौ सिंहे, गौरीव पार्वतीव महति, तुरंगमे अश्वे, स्थिता विराजमाना सलीलं विलासपूर्वकम्, उरोबन्धारोपितस्य=उरोबन्धः पादस्थापनार्थं शिक्यं लौहनिर्मित यन्त्रं (रकावाख्यं), तत्र, आरोपितस्य स्थापितस्य, तिर्यगुत्कर्णतुरगाकर्ण्यमाननूपुरपटुरणितस्य = तिर्यक्, उद् उपरि, कर्णौ, यस्य, सः, तेन तुरगेण अश्वेन, आकर्ण्यमान श्रूयमाणं निशम्यमानं, नूपुराणाम् आभूषणविशेषाणां, पटु मनोहरं, रणित शब्दः, यस्य सः तस्य अतिबहलेन अतिगाढेन, पिण्डालक्तकेन लाक्षारसेन, पल्लवितएव नवकिसलयवदारक्तः, कुङ्कुमपिञ्जरितपृष्ठस्य=कुङ्कुमेन पिञ्जरितं रक्तवर्णीभूतम्, पृष्ठं यस्य सः, तस्य अश्वस्य, चरणयुगलस्य, पादद्वयस्य, प्रसरद्भिः व्याप्तैः, अतिलोहितैः अतिरक्तवर्णैः प्रभाप्रवाहैः कान्तिधाराभिः उभयतः उभयदिशि, ताडनदोहदलोभागतानि=ताडनस्य पाद प्रहारस्य, दोहदः विशेषाभिलाषः, तस्य दोहदस्य लोभेन, आगतानि प्राप्तानि, किसलयितानि नवपल्लववदार्चितानि, रक्ताशोकवनानि=रक्ताशोकानाम् एतन्नामकानां वृक्षाणां, वनानि काननानि, इव, आकर्षयन्ती, सकलजीवलोकहृदयहठहरणाघोषणयेव=सकलानां निखिलानां, जीवलोकानां जीवानां, हृदयानि चेतांसि, हठेन बलात् हरणम् आकर्षणं, तस्य, आ समन्तात्, घोषणा गर्जनं, यस्यां, सा, तया, इव, रशनया कटिसूत्रेण, मेखलया धौत-धवलनेत्रनिर्मितेन=धौतं क्षालितं, यद्धवलं श्वेतं, यत्, नेत्रं वस्त्रं तेन निर्मितं रचितं, तेन वस्त्रेण, निर्मोकलघुतरेण= निर्मोक इव, सर्पकञ्चुकम् इव, लघुतरेण अतिसूक्ष्मेण, आप्रपदीनेन=आप्रपदम् आप्नोतीति तेन, कंचुकेन वस्त्रविशेषणेन, तिरोहिततनुलता=तिरोहिता आच्छादित, तनुलता शरीरं वल्लरी, यस्याः सा, छातकंचुकान्तरदृश्यमानैः=छातः लघुतरः, कञ्चुकः वस्त्रं, तस्य, अन्तरेषु मध्यभागेषु, दृश्यमानैः अवलोक्यमानैः

आश्यानचन्दनधवलैः=आश्यानि किञ्चित् शुष्काणि, यानि, चन्दनानि, तैः धवलानि श्वेतानि, तैः, अवयवैः अङ्गैः, स्वच्छसलिलाभ्यन्तरविभाव्यमान-मृणालकाण्डेव=स्वच्छं निर्मलं यत् सलिलं जलं तस्य अभ्यन्तरे अन्तः भागे, विभाव्यमानः प्रतीयमानः मृणालकाण्डः कमलकाण्डः, यस्यां सा एवम्भूता, सरसीव जलाशय इव, कुसुम्भरागपाटलं=कुसुम्भरागेण, पाटलं रक्तश्वेतवर्णपुलकबन्धचित्रम्=पुलकबन्धेन विविधवर्णविन्दु रचनया, चित्रं कर्बुरं, चण्डातकम् एतन्नामकं नारीणाम् वस्त्रविशेषः, अन्तःस्फुटं, स्फटिकभूमिरिव, रत्ननिधानम् रत्नभण्डारम्, आदधाना धारयन्ती, आमलकीफलनिस्तुलमुक्ताफलेन=आमलकीफलानि इव, निस्तुलानि उपमारहितानि, मुक्ताफलानि मुक्ताः फलानि यस्मिन् सः तेन, तेन हारेण मुक्ताहारेण, स्फुरितस्थूलग्रहणशारा=स्फुरिताः देदीप्यमानाः, स्थूलाः, ये ग्रहगणाः तारासमूहाः, तैः शारा विचित्रा, श्वेतविरलजलधरपटलावृता=श्वेता शुभ्रवर्णाः विरलाः, प्रकीर्णः व्याप्ताः, ये, जलधारा पयोदाः, तेषां मेघानां पटलानि समूहाः, तैः, आवृता आच्छादिता, शारदी, द्यौः इव आकाशमण्डलम् इव ।

शब्दार्थ--उद्यति=निकलने पर, द्युमणौ=आकाश मण्डल के रत्न, उद्दामद्युतौ=उत्कट कान्ति वाले, अभिद्रुततारके=नक्षत्रों के भागने वाले, तामरसव्यासव्यसनिनि=लाल कमलों को विकसित करने की आदत वाले, सहस्ररश्मौ=सूर्य के, उत्तीर्य=पार करके, आयान्ती=आती हुई, तरलदेह प्रभावितानच्छलेन=चमकती हुई शरीर की कान्ति के विस्तार के व्याज से, अत्यच्छं=अत्यन्त निर्मल, अनायन्ती=खींचती सी हुई, स्फुटितातिमुक्तककुसुमस्तवकसमत्विषि=खिले हुये अतिमुक्तक नामक पुष्प विशेष के गुच्छे के समान कान्ति वाले: सटाले=कन्धे की झालर, (अयाल) उरोबन्धारोपितस्य=रकाब पर रखे हुए, तिर्यक्=तिरछे. उत्कर्णतुरगाकर्ण्यमाननूपुररणरणितस्य=ऊपर को कान किए हुए अश्व को नूपुर (पायजेब) के सुन्दर शब्द को सुनाने वाले, अतिबहलेन=अत्यन्त गाढ़े, पिण्डालक्तकेन=महावर के रंग से, पल्लवितस्य= =कोंपल पत्ते के समान आचरण करने वाले, कुङ्कुमपिञ्जरितपृष्टस्य=कुङ्कुम की पराग के समान पीले वर्ण वाले तलुओं वाले, ताडनदोहदलोभागतानि=पाद प्रहार की विशेष इच्छा के लोभ से आये हुये, सकलजीवलोकहृदयहठहरणाघोषणयेव=समस्त प्राणियों के हृदय को बलात् हरण करने

की घोषणा के समान, रशनया=करधनी के द्वारा, शिञ्जान जघनस्थला=शब्द करती हुई जाँघों वाली, धौतधवलनेत्रनिर्मितेन=धुले हुए सफेद रेशमी वस्त्र से बने हुए, निर्मोकलघुतरेण=साँप की केंचुली के समान सूक्ष्म, आप्रपदीनेन=पैरों तक लटकने वाले, कंचुकेन=वस्त्र से, तिरोहिततनुलता=शरीर रूपी लता को ढके हुए, छातकंचुकांतदृश्यमाने=बारीक कंचुक वस्त्र के अन्दर दिखलाई पड़ने वाले, आश्यानचन्दनधवलै=कुछ सूखे चन्दन से सफेद हुए, अवयवैः=अंगों से, स्वच्छसलिलाभ्यन्तरविभाव्यमानमृणालकाण्डा=अत्यन्त निर्मल जल के अन्दर दिखलाई पड़ने वाले कमलनाल जल वाले, सरसीव=तालाब के समान, कुसुम्भरागपाटलं=कुसुम्भ पुष्प के समान लाल, पुलकबन्धचित्र=विविध प्रकार के रंग बुन्दकियों से कबुंर, चण्डातकं=सुन्दर स्त्रियों का अधो वस्त्र (लहंगा), आमलकीफलनिस्तुलमुक्ताफलेन=आँवले के फल के समान बड़े-बड़े अतुलनीय मोतियों के दानों से युक्त, स्फुरितस्थूलग्रहग्रहणशारा=चमकते हुए नक्षत्र के समान, चित्रविचित्र शोभा से युक्त, श्वेतविरलजलधरपटलावृता=सफेद कहीं-कहीं दिखाई पड़ने वाले बादलों के समूह से ढकी हुई, द्यौः=आकाश, इव=समान।

कुचपूर्णकलशयोरुपरि रत्नाप्रालम्बमालिकाभरुणहरितकिरणकिसकिसलनीं कस्यापि पुण्यवतो हृदयप्रवेशवनमालिकामिव बद्धां धारयन्ती, प्रकोष्ठनिविष्टस्यैकैकस्य हाटककटकस्य मरकतमकरवेदिकासनाथस्य हरितिकृतदिगन्ताभिर्मयूखसंततिभिः स्थलकमलिनीभिरिव लक्ष्मीशङ्कयानुगम्यमाना, अतिबहलताम्बूलकृष्णिकान्धकारितेनाधरसंपुटेन मुखशशिपं तं ससंध्यारागं तिमिरमिव वमन्ती, विकचसयनकुवलयकुतूहलालीनमानयालिकुलसंहत्या नीलांशुकजालिकयेव निरुद्धालवदना, नीलोरागनिहितीलिम्ना शितिगलशितिना वामश्रवणाश्रयिणा दन्तपत्रेण कालमेघपल्लवेन विद्युदिव द्योतमाना।

अर्थ—उस मालती के स्तन रूपी कलशों पर रत्नों की माला लटक रही थी, वह लाल-हरे रत्नों की किरणों से ऐसी प्रतीत होती थी मानो उसमें नवीन कोंपल पत्ते लगे हुए हों, (अतः) ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी पुण्यात्मा के हृदय में प्रवेश करने के स्वागतार्थं मङ्गलकलश में पुष्पों की माला बँधी हो उस मालती के एक हाथ की कलाई में सोने का कंगन पड़ा था, जिस कंगन में रत्न जड़े हुए थे, उस मरकत मणि की हरी किरणें दशों दिशाओं में फैल रही थीं। इससे ऐसा प्रतीत होता था मानो उसको स्थल कमलिनी समझकर लक्ष्मी जी उसका अनुगमन कर रही हों, चबाये हुए पान की गाढ़ी काली रेखा से अंकित उसका ओष्ठ ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उस मालती के मुखरूपी चन्द्रमा को पिये हुए सन्ध्याकालीन लालिमा के साथ अन्धकार को वमन कर रहा हो, भ्रमर-समूह मालती के लोचनों को विकसित नील कमल समझ कर आँखों पर ऐसे छाये हुए थे मानो उसका मुंह नीले रंग के वस्त्र के घूंघट से ढका हुआ हो, नीले रंग से ढके हुए नीले रंग वाले और शंकर जी के कण्ठ के समान सुन्दर बायें कान में धारण किये हुए कर्णाभूषण से सुशोभित था, इस प्रकार नील वर्ण वाली वह मालती ऐसी प्रतीत होती थी मानो विशाल रंग वाले बादलों में चमकने वाली बिजली के समान सुशोभित हो रही हो।

संस्कृत-व्याख्या— कुचपूर्णकलशयोः=कुचौ स्तनौ, एव, पूर्णकलशौ जलपूर्णकलशौ, तयोः कुचकलशयोः, रत्नप्रलम्बमालिकां रत्नस्रजम् अरुणहरितकिरणकिसलयिनीं=अरुणा शोणितवर्णा, हरिता हरिद्वर्णा, ये, किरणाः रश्मयः, तैः किरणैः, किसलयिनीम् उत्पन्नकिसलयां, कस्यापि, पुण्यवतः पुण्यात्मनः, हृदयप्रवेशवनमालिकाम्=हृदये चित्ते प्रवेशः, तत्र, वनमालिकाम्=पुष्पस्रजम् इव, बद्धां लग्नां, धारयन्ती दधाना, एकैकस्य केवलमेकस्य हाटककटकस्य स्वर्णकङ्कणस्य, मरकतमकरवेदिकासनाथस्य=करकतस्य एतन्नाम्न मणेः, मकरा मत्स्याकारा वेदिका तया सनाथस्य युक्तस्य, हरितीकृतदिगन्ताभिः=हरितीकृताः श्यामीकृताः दिगन्ता दिशान्ताः, याभिः ताभिः, मयूखसन्ततिभिः=मयूखानां किरणानां, सन्ततिभिः समूहैः स्थलकमलिनीभिः इव=स्थलोत्पन्ननलिनीभिरिव, लक्ष्मीशङ्कया लक्ष्मीसन्देहेन, अनुगम्यमाना अनुगच्छन्ती, अति बहलताम्बूलकृष्णिकान्धकारितेन=अतिबहलेन, भूयोभयः, चर्वितेन ताम्बूलेन, या, कृष्णिका श्यामवर्णरेखा, तया, कृष्णरेखया, अन्धकारितेन

उत्पन्नान्धकारेण, मुखशशिपीतं=मुखमेव शशि चन्द्रमा तेत पीतं निग-लितं, सन्ध्यारागं सन्ध्यारुणसहितं, तिमिरं तमः, इव, वमन्ती, उद्वमन्ती, विकचयनकुवलय कुतूहलालीनमानया=विकचे प्रफुल्ले, नयने लोचने, एव, कुवलये नीलकमले, तयोः, कुतूहलात्, आलीना आसक्ता, तया, अलिकुल, संहत्या=अलीनां भ्रमराणां कुलं समूहः, तस्य, संहत्या पङ्क्तया, नीलांकुश-जालिकया इव=नीलम् यत् अंशुकं वस्त्रं, तस्य किरणानां वा जालिका समूहः तया, निरुद्धार्थवदना=निरुद्धम् आगछन्नम्: अर्धवदनं मुखार्धभागः यस्याः सा, नीलीरागनिहितनीलीम्ना=नीलिरागेण नीलवर्णेन. निहितः कृतः, नीलिमा नीलीभावः, यस्मिन्, तेन, शितिगलशितिना=शितिः नीलः, गलः कण्ठः, यस्य सः शंकर इत्यर्थः, तस्य, इव, शितिना नीलवर्णेन, वामश्रवणाश्रयिणा=वामं, यत्, श्रवण कर्णः तम आश्रयतीति आश्रयं गृह्णातीति तेन, वामकर्णलग्नेन, दन्तपत्रेण कर्णाभूषणेन, कालमेघपल्लवेन=कालमेघस्य कृष्णमेघस्य, पल्लवेन समूहेन, विद्युत इव चपलेन, द्योतमाना संशोभमाना (मालती आयन्ती समदृश्यत)।

शब्दार्थ—अरुणहरितकिरणकिसलयिनीं=लाल और हरे रंग की किरणों से ऐसी प्रतीत होती थी मानो उसमें कोमल पत्ते निकल आये हो, हृदय प्रवेशवनमालिकाम इव=हृदय में प्रवेश करने के स्वागत की वनमाला (पुष्प माला) के समान, प्रकोष्ठनिविष्टस्य=कलाई में धारण किये हुए, हाटककटस्य=सोने के कंगन के, मरकतमकरवेदिकासनाथस्य=मरकत मणि से वनी हुई मछली के आकार की वेदिका से युक्त, मयूरखसन्ततिभिः=किरणों की पंक्ति से, हरितीकृतदिगन्ताभिः=किरणों से सभी दिशाओं को हरे रंग की बनाने वाली, स्थलकमलिनीभिरिव=स्थल कमलिनियों द्वारा, लक्ष्मीशङ्कया =लक्ष्मी के सन्देह से, अनुगम्यमाना=पीछा की जाती हुई, अतिबहलताम्बूल-कृष्णिकान्धकारितेन=वार-बार पान चवाने से पड़ने वाली काली रेखा से, अधरसंपुटेन=ओठ से, मुखशशिपीतं=मुखरूपी चन्द्र के द्वारा पिये हुये, ससंध्यारागम्=सन्ध्या की लालिमा के सहित, तिमिरमिव=मानो अन्धकार को, वमन्ती=वमन करती हुई, विकचयनकुवलयकुतूहलालीनया—विकसित नेत्ररूपी नील कमलों पर कौतूहल से बैठे हुए, अलिकुलसंहत्या=भौंरों के समूह से, नीलांशुकजालिकयेव=मानो नीले वस्त्र की किरणों से, निरुद्धार्ध-

रचना=आधे मुख को ढका हो, नीलीरागनिहितनीलिम्ना=नीले रंग के रंग से नीलरंग वाले, शितिगलशितिना=शंकर जी के कण्ठ के समान नीले रंग वाले, वामश्रवणाश्रयेण=बायें कान में धारण किये हुए, दन्तपत्रेण=कर्णाभूषणविशेष से (सुशोभित) काल, मेघपल्लवेन=काले रंग के मेघ समूह से, विद्युदिव=बिजली के समान, विद्योतमाना=चमकती हुई (मालती दिखाई पड़ी)।

बकुलफलानुकारिणीभीस्तिसृभिर्मुक्ताभिः कल्पितेन बालिकायुगलेनाधोमुखेनालोकजलवर्षिणा सिञ्चन्तीवातिकोमले भुजलते, दक्षिणकर्णावतंसितया केतकीगर्भपलाशलेखया रजनिकरजिह्वालतयेव लावण्यलोभेन लिह्यमानकपोलतला, तमालश्यामलेन मृगमदामोदनिष्यन्दिना तिलकबिन्दुना मुद्रितमिव मनोभवसर्वस्वं वदनमुद्वहन्ती, ललाटलासकस्य सीमन्तचुम्बिनश्चटुलतिलकमणेरुदञ्चता चटुलेनांशुजालेनेव रक्तांशुकेनेव कृतशिरोवगुण्ठना, पृष्टप्रेङ्खदनादरसंयमनशिथिलजूटिकाबन्धा नीलचामरावचूलिनाव, चूडामणिमकरिकासनाथा मकरकेतुपताकेव कलदेवतेव चन्द्रमसः।

अर्थ—मौलसिरी के फल का अनुकरण करने वाले तीन मोतियों से युक्त दो बालियों को कान में धारण किये हुये थी इन वालियों के कान्ति रूपी जल की वर्षा करने वाले निम्न भाग से (उसकी) अत्यन्त कोमल हाथ रूपी दो लताओं को मानो सींच रही थी। दाहिने कान में धारण किए हुए केवड़े के अन्दर के नुकीले पत्ते के आकार के कर्णाभूषण से ऐसा प्रतीत होता था मानो सौन्दर्य के लोभ से चन्द्रमा जिह्वा रूपी लता से उसके (मालती के) कपोल स्थल को चाट रहा हो, तमाल पत्र के समान श्यामवर्ण सुगन्धि की वर्षा करने वाले कस्तूरी के तिलक बिन्दु से मुद्रित (मुहर लगे हुए) कामदेव के सर्वस्व मुख को धारण कर रही थी। मस्तक पर नृत्य करने वाली लटकने वाली चटुलातिलक नामक मणि ऊपर को निकलने वाली किरणों से ऐसी प्रतीत होती थी मानो उसके शिर पर लाल रंग की पगड़ी बंधी हुई हो।

उसके पीठ पर ठीक से न बंधने के कारण शिथिल केशपाश (जूड़ा) लटक रहा था। उसमें मानो नीले चँवररूपी झण्डे के वस्त्र से युक्त, सिर में धारण किये हुये चूड़ामणि में बने हुये मछली के आकार से युक्त होने के कारण ऐसी प्रतीत होती थी जैसे वह कामदेव की ध्वजा हो और चन्द्र की कुलदेवी हो।

संस्कृत व्याख्या—वकुलफलानुकारिणीभिः, बकुफलाकारिभिः, तिसृभिः त्रिसंख्ययाभिः, मुक्ताभिः मौक्तिकैः, कल्पितेन निर्मितेन, वालिकायुगलेन बालिका (बाली) द्वयेन, अधोमुखेन निम्नभागेन, आलोकजलवर्षिणा=आलोकः प्रकाशः एव, जलं तद्वर्षिणा, अतिकोमले अतिमृदुनी, भुजलते=भुजे एव लते हस्तलते, सिञ्चतीव प्रतीयते स्म। दक्षिणकर्णावतंसया=दक्षिणकर्णे, अवतंसिता कर्णा-भरणवदारोपिता, तया केतकीगर्भपलाशलेखया=केतक्याः, गर्भपलाशस्य, लेखया, रेखया, रजनिकरजिह्वालतया=रजनिकरस्य चन्द्रस्य, जिह्वा रसना, एव, लता, तया लावण्यलोभेन=लावण्यस्य सौन्दर्यस्य लोभेन आकर्षणेन, मोहेन, लिह्यमानकपोलतला=लिह्यमानं कपोलतलं, यस्याः, सा एवम्भूता, सा, तमालशयामलेन तमालपत्रवत् कृष्णवर्णेन मृगमदामोदनिष्यन्दिता=मृगमदः कस्तूरिका, तस्य आमोदः सुगन्धिः तं, निष्यन्दते, इति, तेन, तिलकबिन्दुना स्थासकेन, मुद्रितम् प्रमाणीभूतम्, मनोभवगर्वस्वं, वदनं मुखम्, सद्गृहन्ती दधानाऽऽसीत्। ललाटलासकस्य ललटटे मस्तके, लासकः नतकः, तस्य, सीमन्त चुम्बिनः सीमन्तभागावलम्बिनः। चटुलतिलकमणेः आभूषणविशेषस्य, उदञ्चता उपरिगच्छता, चटुलेन चपलेन, अभितः निसरणशीलेन, अंशुजालेन=किरण-समूहेन, इव, रक्तांशुकेन रक्तवस्त्रेण, कृतशिरोऽवगुण्ठना=कृतं, शिरसि, अव-गुण्ठनम् आच्छादनं यया सा, पृष्ठप्रेंखदनादरसंयमनशिथिलजूटिकाबन्धा= पृष्ठे पृष्ठभागे, प्रेंखन् दोहायमानः वेणीसमूहः यस्या सा, नीलचामरावचूलि-नीव=नीलं नीलवर्णं, चामरं बालव्यजनमेव अवचूलं पताकावस्त्र, चिन्हं, वा तत् अस्याः अस्तीति एवम्भूता सा, मालती, चूडामणिमकरिकासनाथा=चूडायां शिरसि, या, मणेः रत्नस्य, मकरिका मत्स्यः, तया सनाथा समन्विता मकरकेतु-पताकेव=मकरकेतोः मन्मथस्य पताकेव ध्वजेव, चन्द्रमसः शशिनः कुलदेवतेव कुलाधिष्ठातृदेवीव।

शब्दार्थ—वकुलफलानुकारिणीभिः=मौलसिरी के फल के समान, तिसृभिः

=तीन, मुक्ताभि=मोतियों से, कल्पितेन=बने हुए, वालिकायुगलेन=दो (कान की) वालियों से, अधोमुखेन=नीचे की ओर से, आलीकजलवर्षिणा=कान्ति रूपी जल की वर्षा करने वाली, भुजलते=हाथ रूपी दो लताओं को, दक्षिणकर्णावतंसितया=दाहिने कान में धारण किये हुए, केतकीगर्भपलाशलेखया=केवड़े के अन्दर के पत्ते की नुकुली रेखा के समान, लावण्यलोभेन=सुन्दरता के लोभ से, रजनिकरजिह्वालतया=चन्द्रमा की जिह्वा रूपी लता से, लिह्यमानकपोलतला=चाटा जा रहा है कपोलस्थल जिसका ऐसी वह, तमालश्यामेन=तमालपत्र के समान श्याम रंग वाले, मृगमदामोदनिष्यन्दिना=सुगन्धित कस्तूरी से आर्द्र, मुद्रितमिव=मुहर लगे हुए, ललाटलासकस्य=मस्तक पर नृत्य करने वाले, सीमन्तचुम्बिन=मांग के भाग को स्पर्श करने वाले, चटुलतिलकमणेः=एक विशेष प्रकार के आभूषण की, चटलेन=चमकने वाली, उदञ्चता=ऊपर को फैलने वाली, अंशुजालेन किरणों के जाल से, रक्तांशुकेन=कपड़े से, कृतशिरोऽवगुण्ठना=सिर को ढके हुए, पृष्ठप्रेङ्खदनादरसंयमनशिथिलजूटिकाबन्धा=पीठ पर लटकने वाले यों ही बाँधने के कारण ढीले केशपाश (जूड़े) वाली, नीलचमारावचूलिनीव=मानो नीले रंग के चंवर रूपी झण्डा के वस्त्र से युक्त, चूडामणिमकरिकासनाथा=शिर के आभूषण विशेष में अंकित मछली के चिन्ह से सुशोभित, मकरकेतु-पताका=कामदेव का झण्डा।

पुनःसंजीवनौषधिरिव पुण्यधनुषः, वेलेव रागसागरस्य, ज्योत्स्नेव यौवनचन्द्रोदयस्य, महानदीवरतिरसामृतस्य, कुसुमोद्गतिरिव सुरततरोः, बालविद्येव वदग्ध्यस्य, कौमुदीव कान्तेः, धृतिरिव धैर्यस्य, गुरुशालेव गौरवस्य, बीजभूमिरिव विनयस्य, गोष्ठीव गुणानाम्, मनस्वितेव महानुभावतायाः, तृप्तिरिव तारुण्यस्य कुवलयदलदामदीर्घलोचनया पाटलाधारया कुन्दकुड्मलस्फुटदशनया शिरीषमालासुकुमारभुजयुगलया कमलकोमलकरया बकुलसुरभिनिःश्वसितया चम्पकावदातदेहया कुसुममय्येव ताम्बूलकरङ्कवाहिन्या महाप्रमाणतरा-

रुढयानुगम्यमाना, कतिपयपरिचारकपरिवृता मालती समदृश्यत ।

अर्थ—कामदेव को पुनः जीवित करने की वनस्पति (जड़ी) के समान, प्रेमरूपी समुद्र की वेला (तटी) के समान, यौवन रूपी चन्द्रोदय की चाँदनी के समान रतिक्रीड़ा के आनन्द रूपी अमृत की महानदी, रतिक्रीडा रूपी वृक्ष की पुष्पोत्पत्ति के समान, चतुरता की नवीन विद्या के समान, कान्ति की चाँदनी के समान की धृति (सन्तोष) के समान, गौरवता के विशाल घर के समान नम्रता की बीज भूमि के समान, गुणों की गोष्ठी के समान, महानुभावता (सज्जनता) की आधार भूमि के समान, युवावस्था की तृप्ति के समान थी, ऐसी मालती के साथ एक बड़े अश्व पर सवार मालती की ताम्बूलकरंकवाहिनी (पान की डिबिया धारण करने वाली दासी) अनुगमन कर रही थी, नील कमल की माला के समान उसकी बड़ी-बड़ी आँखें थीं, पाटल फूल के समान ओठों वाली कुन्द पुष्प की कली के समान स्वच्छ दाँतों वाली शिरीष फूलों की माला के समान कोमल दो हाथों वाली, कमल के समान कोमल हाथ वाली, मौलसिरी के फूल के समान सुगन्धित श्वास वाली, चम्पा पुष्प के समान चमकते हुए शरीर वाली साक्षात् फूलों का स्वरूप, ऐसी ताम्बूलकरंकवाहिनी दासी के द्वारा अनुगमन की जाने वाली मालती दिखाई पड़ी और जिस ताम्बूलकरंकवाहिनी के साथ कुछ सेवकगण और भी थे ।

संस्कृत-व्याख्या—पुष्पधनुषः कामदेवस्य, पुनः, भूयः, सञ्जीवनौषधिरिव=सञ्जीवनाय संजीवितुम्, औषधिरिव, रसायनमिव, रागसागरस्य प्रेम-समुद्रस्य, वेलेव तट प्रदेश इव, यौवनचन्द्रोदयस्य=यौवनं तारुण्यम् एव चन्द्रः शशी तस्य उदयः उत्पत्तिः, यस्य, ज्योत्स्नेन=चन्द्रिकेव रतिरसामृतस्य=रतेः अनुरागस्य, रस, आनन्दः, एव अमृतं सुधा; तस्य, महानदी महासरित्, सुरततरोः रतिक्रीडावृक्षस्य, कुसुमोद्गतिरिव पुष्पोत्पत्तिरिव, वैदग्ध्यस्य, नैपुण्यस्य, बालविद्येव अभिनवविद्येवः कान्तेः प्रभायाः, कौमुदीव चन्द्रिकेव, धैर्यस्य, धृतिरिव सन्तोष इव, गौरवस्य महत्तायाः गुरुशालेव विशालभवनमिव, विनयस्य नम्रतायाः, बीजभूमिरिव उत्पत्तिस्थानमिव, गुणानां शौर्यादीनां, गोष्ठीव सभेव, महानुभावतायाः सौजन्यस्य, मनस्वितेव पृष्ठभूमिरिव, तारुण्यस्य यौवनस्य, तृप्तिरिव, कुवलयदलदामदीर्घलोचनया=कुवलयानां नीलोत्पलानां यानि

दलानि पत्राणि तेषां दाम माला, तद्वत् दीर्घे विशाले, लोचने नेत्रे, यस्याः सा या, पाटलाधरया=पाटलः ईषत् श्वेतरक्तः अधरः यस्याः, सा, तया, कुन्दकुड्मलस्फुटदशनया=कुन्दस्य एतन्नाम्न, पुष्पस्य, कुड्मलवत् कलिकेव, स्फुटाः स्पष्टाः, दशना दन्ताः यस्याः, सा, तया शिरीषमालासुकुमारभुजयुगलया=शिरीषाणां शिरीषपुष्पाणां माला इव, कोमल मृदु, भुजयुगल हस्तद्वयं, यस्याः साः, तया, कमलकोमलकरया=कमले इव कोमलौ मृदु करौ हस्तौ यस्याः सा, तया, बकुलसुरभिनिःश्वासतया बकुल वत् सुरभि सुगन्धि, निःश्वसितं श्वासः यस्याः सा, तया, चम्पकावदातदेहया=चम्पकम् इव चम्पक्पुष्पमिव, अवदातः देदीप्यमानः, देहः शरीरः यस्या, सा, तया, कुसुममय्येव पुष्पभूतेव, ताम्बूलकरङ्कवाहिन्या=ताम्बूलस्य, करङ्कं भाजनं, वहतीति यता, ताम्बूलपत्रधारिण्या, महाप्रमाणाश्वतरारूढया=महाप्रमाणाः विशालकाय, यः, अश्वतरःश्रेष्ठाश्व तस्मिन् आरूढया, उपविष्टया परिचारिकया एकया, अनुगम्यमाना अनुस्त्रियमाणा, कतिपयपरिचारकपरिकरा=कतिपये बहवः, परिचारकाः भृत्याः परिकराः सहयोगिनः यस्याः सा एवम्भूता मालती समदृश्यत ददृशे, प्रत्यक्षमुपस्थितेति भावः।

शब्दार्थ पुष्पधनुषः=कामदेव की, पुनः सञ्जीवनौषधिरिव=पुनः जीवित करने की जड़ी के समान, रागसागरस्य=प्रेम रूपी समुद्र की, वेलेव=तटभूमि के समान, यौवनचन्द्रोदयस्य=यौवन रूपी चन्द्रमा के उदय की, ज्योत्स्नेव=चाँदनी के समान, रतिरसामृतस्य=विलास के आनन्द रूपी अमृत की, महानदीव=विशाल नदी के समान, सुरततरो=रतिक्रीड़ा रूपी वृक्ष की, कुसुमोद्गतिरिव=पुष्पोत्पत्ति के समान, वैदग्ध्यस्य=चतुरता की, बालविद्येव=नई विद्या के समाम, गौरवस्य—महत्ता के, गृहशालेव=विशालघर के समान, कुवलयदलदामदीर्घलोचनया=नीलकमल के पत्ते की माला के समान विशाल नेत्रों वाली, पाटलाधरया=लाल ओठ वाली, कुन्दकुड्मलस्फुटदशनया=कुन्द के फूल की कलिका के समान स्पष्ट दाँतों वाली, चम्पकावदातया=चम्पा के पुष्प के समान कान्ति वाली, महाप्रमाणाश्वतरारूढया=विशालकाय श्रेष्ठ घोड़े पर सवार, कतिपयपरिचारकपरिकरा=अनेक सेवकों से युक्त, समदृश्यत=दिखाई पड़ी।

दूरादेव च दधीचप्रेम्णा सरस्वत्या लुण्ठितेव मनोरथैः, आकृष्टेव कुतूहलेन, प्रत्युद्गतेवारिकलिकाभिः, आलिङ्गितेवो-

त्कण्ठया, अन्तः प्रवेशितेव हृदयेन स्नपितेवानन्दाश्रुभिः, विलुप्तेव स्मितेत, वीजीतेवोच्छ्वसितैः, आच्छादितेव चक्षुषा, अभ्यर्चितेव वदनपुण्डरीकेण, सखीकृतेवाशया तुविधमुपययौ। अवतीर्य च दूरादेवानतेन मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्। आलिङ्गिता च ताभ्यां सविनयमुपाविशत्। सप्रश्रयं ताभ्यां सभाषिता च पुण्यभाजनमात्मानममन्यत। अकथयच्च दधीचसंदिष्टं शिरसि निहितेनाञ्जलिना नमस्कारम्। अगृह्णाच्चाकारतः प्रभृत्यग्राम्यतया तैस्तैरतिपेशलैरालापैः सावित्रीसरस्वत्योर्मनसी।

अर्थ—सरस्वती जी ने मानो दधीच के प्रेम से मालती को दूर से ही अपने मनोरथों के द्वारा लूट लिया, मानो कौतूहल से मालती को आकृष्ट कर लिया, मानो कामविकार जनित स्मृतियों (उमंगों) से स्वागत किया, उत्कण्ठा से आलिङ्गन किया हृदय के अन्दर स्थापित कर लिया, आनन्द के आँसुओं से स्नान कराया, हंसी से मानो चन्दन का लेप लगाया अर्थात हँसी रूपी चन्दन से लिप्त किया, श्वासों से मानो पंखा करने लगी। आँखों से मानो ढक लिया, मुख रूपी कमल से मानो (उसकी) पूजा की, और आशा से मानों उसे) सखी बना लिया, सरस्वती को ऐसी दशा होने पर वह मालती के पास आई, और उतर कर दूर से ही झुके हुए शिर से प्रणाम किया किया, और उन दोनों सरस्वती तथा सावित्री के द्वारा आलिङ्गन को प्राप्त करके नम्रतापूर्वक बैठ गई, आदर के साथ उन दोनों के द्वारा सम्भाषण के अवसर को प्राप्त करती हुई अपने को पुण्यशालिनी माना, और दधीच के द्वारा सन्देश रूप में दिये हुए नमस्कार को शिर से अञ्जली बाँधकर कहा, सावित्री और सरस्वती के मन को उस मालती ने अपने शिष्ट आचार और अत्यन्त मधुर उन-उन बातचीतों के द्वारा हरण कर लिया। अर्थात् सरस्वती और सावित्री के मन को उसने मधुर आलाप से तथा शिष्ट आचार नम्रता आदि से वश में कर लिया।

संस्कृत-व्याख्या—सरस्वत्या शारदया. दधीचप्रेम्णा दधीचस्नेहेन, दूरादेव, मनोरथैः स्वविविधेच्छाभिः, लुण्ठिता इव मालतीलुण्ठितेव अभूत् इत्यर्थः कुतूहलेन कौतुकेन, आकृष्टेव मोहितेव, उत्कलिकाभिः कामज-विकारैः,

प्रत्युद्गतेव स्वागतिक्रियमाणेव, उत्कण्ठया, आलिङ्गतेव मिलितेव, हृदयेन, चेतसा, अन्तःप्रविशतेव आभ्यन्तरप्रविष्टेव, आनन्दाश्रुभिः आनन्दजन्यबाष्पैः, स्नपितेव आर्द्रेव, स्मितेन हासेन, विलुप्तेव चन्दनलिप्तेव, उच्छ्वसितैः—विरहोच्छ्वासैः वीजितेव व्यजनवायुसेवितेव चक्षुषा नेत्रेण आच्छादितेवआवृतेव, वदनपुण्डरीकेण—वदनमेव पुण्डरीक कमलं तेन आनन कमलेन, अभ्यर्चितेव पूजितेव, आशया दधीचप्राप्तीच्छया, सखीकृतेव (मालती) सविधम् समीपम्, उपययौ उपागच्छत् । च, अवतीर्य घोटकात् अधः आगत्य, दूरादेव, अवनतेन, मूर्ध्ना शिरसा प्रणामम् अभिवादनम् अकरोत् चकार, ताभ्यां सावित्री सरस्वतीभ्याम्, आलिङ्गता—सस्नेहं मिलिता सती, सविनयं नम्रतापूर्वकम्, उपाविशत् आसनमलञ्चकार, ताभ्यां सावित्री सरस्वतीभ्यां, सप्रश्रयम् नम्रता-पूर्वकं, सम्भाषित आलपिता, च, आत्मानं स्वां, पुण्यभाजनं पुण्यपात्रं भाग्य-शालिनीम्, अमन्यत मेने च, दधीचसंदिष्टं–दधीचेन, संदिष्टं यत् संदिश्य प्रेषितं तत्, शिरसि मस्तके, निहितेन, योजितेन, अञ्जलिना, नमस्कारं प्रणामम्, अकथयत् प्राह, च सावित्रीसरस्वत्योः द्वयोरपिअनयोः. मनसी चित्ते, आकारतः विनीताकारेण, अग्राम्यतया शिष्टाचारेण तैः तैः प्रेमपूर्णैः, अतिपेशलैः अतिमनोहरैः आलापैः वार्तालापैः अगृह्णात् अगृहीत् स्ववंश चकारेत्यर्थः ।

शब्दार्थ—**उत्कलिकाभिः**=काम की स्मृति से उत्पन्न उमंगों से, **प्रत्युगतेव**=मानो स्वागत किया, **स्नपितेव**=मानो स्नान कराया, **विलुप्तेव**=चन्दन से लेप की गई हो, **सप्रश्रयं**=नम्रतापूर्वक, **अग्राम्यतया**=शिष्टाचार के साथ, **अतिपेशलैः**=अत्यन्त सुकुमार, मनोहर ।

क्रमेण चातीते मध्यदिनसमये शोणमवतीर्णायां सावित्र्यां स्नातुमुत्सारितपरिजना साकूतेव मालती कुसुमस्रस्तरशायिनीं समुपसृत्य सरस्वतीमाबभाषे—' देवि, विज्ञाप्यं नः किंचिदस्ति रहसि । यतो मुहूर्तमवधानदानेन प्रसादं क्रियमाणमिच्छामि' इति ।

अर्थ—क्रमशः (धीरे-धीरे बातचीत करते हुए) मध्याह्न (दोपहर) हो जाने पर, सावित्री के शोण नदी पर स्नान करने लिये चली जाने पर, (समय पाकर) सेवकों को दूर करके मालती फूलों के बिस्तर पर लेटी हुई सरस्वती

के समीप पहुंचकर बोली, हे देवी ! कुछ एकान्त में आपसे निवेदन करना है, अतः मैं चाहती हूं, कि थोड़ी देर प्रसन्न होकर ध्यानपूर्वक (मेरे निवेदन को सुनें।

संस्कृत-व्याख्या—क्रमेण क्रमशः, मध्यदिनसमये मध्याह्ने, अतीते अतिक्रान्ते, सति, सावित्र्यां, स्नातुं शोणम्. अवतीर्णायां जलान्तरप्रविष्टायाम्, उत्सारितपरिजना— उत्सारितः दूरीकृतः परिजनः सेवकवर्गः, यया सा, साकूता इव साभिप्रायेव, मालती, कुसुमप्रस्तरशायिनीं—कुसुमानां पुष्पाणां, प्रस्तरे पर्यङ्के, शेते इति तां, सरस्वतीम्, समुपसृत्य समीपमेत्य, आवभाषे उवाच, देवि ! सरस्वति ! नः अस्माकं किञ्चित्, रहसि एकान्ते, विज्ञाप्यं निवेदनीयम् अस्ति, यतः यस्मात् करणात्, इच्छामि अहमभिलषामि, मुहूर्तं, क्षणमात्रं, प्रसादं क्रियमाणं प्रसन्नतायुक्तं, अवधानदानेन सावधानेन मन्निवेदनं शृणोतु इति।

शब्दार्थ— मध्यदिनसमये=दोपहर, अवतीर्णायाम्=उतर जाने पर, उत्सारितपरितजना=सेवकों को दूर कर दिया है जिसने ऐसी वह, साकूतेव=अभिप्राय से युक्त के समान, कुसुमप्रस्तरशायिनीं=फूलों के बिस्तर पर लेटी हुई, समुपत्सृत्य=पास में जाकर, आवभाषे=बोली।

सरस्वती तु दधीचसंदेशाशङ्किनी किं वक्ष्यतीति स्तननिहितवामकरनखरकिरणदन्तुरितमुद्भिद्यमानकुतूहलांकुरनिकरमिव हृदयमुत्तरीयदुकूलवल्कलैकदेशेन सछादयन्ती, गलतावतंसपल्लवन श्रोतुं श्रवणेनेव कुतुहलाद्धावमानेनाविरतश्वाससंदोहदोलायितां जीविताशामिव समासन्नतरुलतामवलम्बमाना, सभुत्फुल्लस्य मुखशशिनो लावण्यप्रवाहेण शृङ्गाररसेनेवाप्लावयन्ती सकलं जीवलोकम्, शयनकुसुमपरिमललग्नैर्मधुकरकदम्बकैर्मदनानलदाहश्यामलैर्मनोरथैर्निर्गनिर्गत्य मूर्तैरुत्क्षिप्यमाणा, कुसुमशयनीयात्स्मरशरसंज्वरिणी, मन्दं मन्दमुदगात्। 'उपांशु कथय' इति कपोलतलप्रतिबिम्बितां लज्जया कर्णमूलमिव मालतीं प्रवेशयन्ती मधुरया गिरा सुधीरमुवाच

अर्थ— सरस्वती तो दधीच के सन्देश की आशंका से न मालूम क्या कहेगी (यह सोचने लगी) वक्षःस्थल पर रखे हुये बायें हाथ के नाखूनों की ऊँची-नीची किरण ऐसी प्रतीत हो रही थीं, मानो सरस्वती के हृदय से कुतूहल के अंकुरों का समूह निकल रहा हो, अपने हृदय को दूकूल वल्कल (दुपट्टे) के एक भाग (कोने) से ढक रही थी, कान में धारण किया हुआ पल्लव (पत्ते का कर्णाभूषण गिरने लगा, मानो सरस्वतो का कान ही सन्देश सुनने की त्वरा से दौड़ने लगा हो, निरन्तर निकलने वाली श्वांस के झूले पर सवार, जीवित रहने की (अपनी) आशा को समीपस्थ लता का सहारा ले रही थी, प्रसन्न अर्थात् विकसित मुखरूपी चन्द्रमा की सौन्दर्यधारा से ऐसा प्रतीत होता था मानो शृङ्गार के रस से समस्त प्राणियों को व्याप्त (भरने) करने लगी हो, विस्तर के पुष्पों की परागपान में तल्लीन, कामाग्नि से जले हुये सरस्वती के साक्षात् मनोरथ रूप काले शरीर वाले भौंरों ने मानो हृदय से निकलकर उसे उठाया, (तो वह) कामदेव के बाणों के ज्वर से पीड़ित फूलों के विस्तर से धीरे-धीरे उठी। धीरे कहो, यह कहती हुई सरस्वती अपने कपोल स्थल पर प्रतिबिम्बित होने वाली मालती को मानो लज्जा से (अपने) कान में प्रवेश करती हुई मधुर वाणी से धीरज से बोली।

संस्कृत-व्याख्या सरस्वती, तु दधीचसन्देशाशाङ्किनी—दधीचस्य संदेशम् आशङ्कत इति सा, किं, वक्ष्यतीति कथयिष्यतीति, स्तननिहितवामकरनखकिरणदन्तुरितम्—स्तनयोः वक्षोजयोः, निहितः स्थापितः, यः, वामकरः, तस्य, नखानां, किरणैः रश्मिभिः, दन्तुरितम्, उच्चावचम्. उद्भिद्यमानकुतूहलाङ्कुरनिकरम्—उद्भिद्यमानः निर्गच्छन्, कुतुहलस्य कौतुकस्य, अङ्कुराणां बीजानां, निकरः राशिः, यस्य, तत्, हृदयम् चित्तम् उत्तरीयदुकूलवल्कलैकदेशेन—उत्तरीयं च तत्, धुकूलं च कौशेयं, तदेव वल्कलं, तस्य वल्कलस्य, एकदेशः एकभागः, नेन, संच्छादयन्ती, गलता निपतता, अवतंसपल्लवेन—ह्यवतंसः कर्णाभूषणं, तस्य, पल्लवः किसलयः, तेन, श्रोतुम् आकर्णयितुं, श्रवणेनैव कर्णेनैव, कुतूहलात् कौतूकात्, धावमानेन अपसरता, अविरतश्वाससन्दोहलायिताम्—अविरतं निरन्तरं यः, श्वाससन्दोहः श्वासप्रसरः तेन दोलायितां समासन्नलतां=समासन्ना पार्श्वस्थिता, या लता, तां, जीविताशामिव—जीवितस्य आशामिव, अवलम्बमाना अभियन्ती, समुत्फुल्लस्य विकसितस्य, मुखशशिनः मुखचन्द्रस्य, लावण्यप्रवा-

हेण सौन्दर्यधारया, शृङ्गाररसेनेव, सकलं, जीवलोकं प्राणि मूहम्, आप्लावयन्ती आनन्दयन्ती, शयनकुसुमपरिमललग्नैः—शयनस्य, कुसुमायां पुष्पाणां, परिमलेन सुरभिणा, लग्नाः आसक्ताः तैः, मधुकरकदम्बकैः—मधुकराणां भ्रमराणां, कदम्बकैः समूहैः मदनानलदाहश्यामलैः—मदनानलस्य कामाग्नेः, दाहः तापः, तन श्यामलैः कृष्णवर्णैः, मूर्तैः शरीरधारिभिः, मनोरथैरिव निविघेच्छाभिरिव, निर्गत्य हृदयात् निष्क्रम्य, उत्क्षिप्यमाणा उत्थाप्यमाना, स्मरशरसंज्वरिणी—स्मरस्य कामदेवस्य, शरैः बाणैः, संज्वरः तापातिशय , अस्ति अस्याः इति एवम्भूता सरस्वती, मन्दं मन्दम् शनैः शनैः उदगात् उत्तस्थौ । उपांशु मन्दं, कथय इति इत्येवं, कथयन्ती, सरस्वती, कपोलतलप्रतिबिम्बितां=कपोलतले, प्रतिबिम्बितां, मालतीम् एतन्नाम्नीं, लज्जया व्रीढया, कर्णमूलमिव कर्णाभ्यन्तरमिव, प्रवेशयन्ती: मधुरया, गिरा वाण्या, सुधीर धैर्यपूर्वकम्, उवाच अब्रवीत् ।

शब्दार्थ – स्तननिहितवामकरनखकिरणदन्तुरितम्=वक्षःस्थल पर रखे हुए बांये हाथ के नाखूनों की किरणों से ऊँचे-नीचे, उद्भिद्यमानकुतूहलाङ्कुरनिकरम्=(हृदय से) उत्पन्न कौतूहल के अकुरों के समूह, उत्तरीयदुकूलवल्कलैकदेशेन=दुपट्टे के रेशमी वस्त्र रूपी वल्कल के एक कोने से, संछादयन्ती=ढकती हुई, गलता=गिरते हुए, अवतंसपल्लवेन=कर्णभूषण के किसलय से, श्रवणेन=कान से, अविरतश्वाससन्दोहदोलायितां=निरन्तर निकलने वाले श्वास समूह से चञ्चल, जीविताशामिव=जीवन की आशा के समान, आसन्नलतां=समीपस्थ लता का, अवलम्बमाना=सहारा लेती हुई, समुत्फुल्लस्य=विकसित, लावण्यप्रवाहेण=सुन्दरता की धारा से, शृङ्गाररसेनेव=शृंगार रस के समान, आप्लावयन्ती=आनन्दित करती हुई, शयनकुसुमपरिमललग्नैः =विस्तर के पुष्पों की सुगन्धि में आसक्त मधुकरकदम्बकैः=भौंरों के समूह से, मदनानलदाहश्यामलैः=कामाग्नि की जलन से काले हुए, मूर्तैः=साक्षात् शरीर धारण किए हुए, मनोरथैरिव=मनोरथ के समान, निर्गत्य=निकलकर, उत्क्षिप्यमाणा=उठाई हुई, स्मरशरसंज्वरिणी=कामदेव के बाण के तप से पीड़ित, कुसुमशयनीयात्=फूलों के विस्तर से, उदगात्=उठ खड़ी हुई, उपांशु =धीरे, कपोलतलप्रतिबिम्बितां=कपोल स्थल पर प्रतिबिम्बित होने वाली, कर्णमूलमिव=कान में, प्रवेशयन्ती=प्रवेश करती हुई, सुधीरम्=धीरतापूर्वक, गिरा=वाणी से ।

'सखि मालति, किमर्थमेवमभिदधासि ? काहमवधानदानस्य शरीरस्य प्राणानां वा ? सर्वस्याप्रार्थितोऽपि प्रभवत्येवातिवेलं चक्षुष्यो जनः। सा न काचिद्या न भवसि मे स्वसा सखी प्रणयिनी प्राणसमा च। नियुज्यतां यावतः कार्यस्य क्षमं क्षोदीयसो गरीयसो वा शरीरकमिदम्। अनवस्करमाश्रवं मे त्वयि हृदयम्। प्रीत्या प्रतिसरा विधेयास्मि ते। व्यावृणिनि; विवक्षितम्' इति।

अर्थ—हे सखि ! मालती ऐसा किसलिए कर रही हो, मैं ध्यानपूर्वक सुनने वाली कौन होती हूं (क्योंकि) शरीर अथवा प्राण भी मेरे वश में नहीं हैं। अर्थात् तुम ही मेरे प्राणों और शरीर की स्वामिनी हो। अनुकूल आचरण करने वाला मित्र व्यक्ति प्रार्थना के बिना ही समस्त (शरीर और प्राणों) का स्वामी होता है। ऐसी कोई (मेरी प्रिय) सखी नहीं है जो तुम न हो अर्थात् तुम मेरा सर्वस्व हो, तुम मेरी बहन, सखी, प्रेमभाजन, और प्राणों के समान हो। किसी भी साधारण (छोटे) अथवा गौरवशाली (बड़े) कार्य में मेरे इस शरीर को लगाने योग्य हो, मेरा यह निर्मल हृदय तुम्हारी आज्ञा (पालन) से स्थित रहने वाला है, प्रेम से तुम्हारी आज्ञापालन करने और कार्य में नियुक्त करने योग्य हूं, हे सुन्दरि ! कहने योग्य जो कहने की इच्छा रखती हो वह कहो।

संस्कृत-व्याख्या—हे सखि ? मालति ? किमर्थं कस्माद्धेतोः एवम्, अभिदधासि कथयसि, अवधानदानस्य सावधानभवितुम् अहम् सरस्वती, काऽस्मि, यतः अहम् शरीरस्य प्राणानां वा, स्वामिनी नास्ति, त्वमेव मे प्राणानां, शरीरस्य, च स्वामिनी असि, चक्षुष्यो जनः अनुकूलचरणो जनः प्रियः सखा, अप्रार्थितोऽपि अकथितोऽपि, सर्वस्य, प्राणादिकस्य, सकलवस्तुनः, अतिवेलम् सदैव प्रभवति स्वामी भवति, सा मम सखी, काचित् कापि न नास्ति, या सखी, न भवसि त्वं नासि, मे सरस्वत्या, स्वसा भगिनी, सखी आलिः, प्रणयिनी प्रेमभाजनं, प्राणसमा प्राणतुल्या चास्ति, क्षोदीयसः क्षुद्रस्यः गरीयसः गौरवपूर्णस्य, यावतः, कार्यस्य, क्षमः कर्तुम् योग्यम् इदं, शरीरकम् नियुज्यताम् नियोजयतु। अनवस्कर निर्मलं, स्वच्छं, मे मम, हृदयम्, त्वयि, आश्रवम्

आज्ञापालने तत्परम् अस्ति । प्रीत्या प्रेम्णा, ते त्वया, प्रतिसरा नियोक्तुं योग्या, निधेयाऽस्मि आदेशकारिणी, अस्मि, वरवर्णिनि ? सुन्दरि ? विवक्षितम् वक्तुम् इष्टं यत् व्यावृणु ब्रूहि, इति ।

शब्दार्थ—अभिदधासि=कहती हो, चक्षुष्यः=अनुकूल व्यवहार करने वाला मित्र, अप्रार्थितोऽपि=विना कहे हुए ही, अतिवेलं=अत्यन्त, सदा, क्षोदीयसः=तुच्छ, छोटे, साधारण, गरीयसः=बड़े गौरवशाली, अनवस्करं=स्वच्छ पवित्र, आश्रवम्=आज्ञापालन करने वाला, प्रतिसरा=नियुक्त करने योग्य, विधेयाऽस्मि=आज्ञापालन करने वाली हूं, वरवर्णिनि=हे सुन्दरी, विवक्षितं=जो कहना चाहती हो वह, व्यावृण=कहो ।

सा त्ववादीत्—'देवि; जानास्येव माधूर्यं विषयाणाम्, लोलुपतां चेन्द्रियग्रामस्य, उन्मादितां च नवयौवनस्य, पारिप्लवतां च मनसः । प्रख्यातैव मन्मथस्य दुर्निवारता । अतो न मामुपालम्भेनोपस्थातुमर्हसि । न च बालिशता चपलता चारणता वा वाचालतायाः कारणम् । न किंचिन्न कारयत्यसाधारणा स्वामिभक्तिः । सा त्वं देवि; यदैव दृष्टासि देवेन तत एवारभ्यास्य कामो गुरुः, चन्द्रमा जीवितेशः, मलयमरुदुच्छ्वासहेतु, आधयोऽन्तरङ्गस्थानेषु संतापः, परमसुहृत् प्रजागर आप्तः मनोरथाः सर्वगताः निःश्वासा विग्रहाग्रेसराः, मृत्युः पार्श्ववर्ती रणरणकः संचारकः, संकल्पा बुद्ध्युपदेशवृद्धाः । किंच विज्ञापयामि ।

अर्थ—वह मालति बोली, हे देवि ? तुन जानती ही हो कि (सांसारिक) विषय प्रिय लगते हैं, इन्द्रियां चंचल होती हैं, नवीन युवावस्था मतवाली होती है, मन चंचल होता है, कामविकार रोका नहीं जा सकता है, यह प्रसिद्ध ही है, इसलिये तुम मुझे उलाहना न देना, मेरी इस वाचालता का (अधिक बोलने का) कारण मूर्खता, चञ्चलता एव धूर्त्तता नहीं है, असाधारण स्वामिभक्ति क्या नहीं कराती है, वह तुम जब से स्वामी के द्वारा देखी गई हो

उसी समय से स्वामी (दधीच) का कामदेव गुरु बन बन गया है, प्राणों का स्वामी चन्द्रमा हो गया है, मलय पर्वत से आने वाली शीतल हवा उनके लिए उच्छ्वास (लम्बी श्वास) का कारण हो गई है, व्याधियाँ ही अन्तरंग (मित्र) बन गई हैं, सन्ताप घनिष्ट मित्र बन गया है, जागरण विश्वास पात्र आत्मीय बन गया है। धन की इच्छाएँ अस्त-व्यस्त हो गई हैं, निःश्वास विरह के आगे चलने लगा है, मृत्यु समीपवर्ती हो गई है, मानसिक चिन्ता ही प्रेरिका बन गई है, संकल्प ही बुद्धि का सबसे बड़ा उपदेष्टा बन गया है और (अधिक) क्या निवेदन करूँ।

संस्कृत-व्याख्या—सा मालती, अवादीत् प्राह, विषयाणां विलासादि-विषयाणां माधुर्यं प्रियत्वं, जानास्येव वेत्सि एव, च, इन्द्रियग्रामस्य इन्द्रियसमूहस्य लोलुपतां चपलतां, च नवयौवनस्य नतनतारुण्यस्य, उन्मादिताम् उन्मादकारिणीं शक्तिम्, मनसः चेतसः पारिप्लवतां चञ्चलतां, च, जानास्येव, मन्मथस्य कामदेवस्य, दुर्निवारता दुर्जेयता, प्रख्यातैव प्रसिद्धैवास्ति, अतःअस्मात् कारणात्, माम् मालतीम् उपालम्भेन उपालम्भप्रदानेन उपालब्धुं दूषयितुं न अर्हसि न योग्याऽसि, च वाचालतायाः मुखरतायाः, कारणं हेतुः, बालिशता मूर्खता, चपुलता चञ्चलता, चारणता धूर्त्तता, न नास्ति, असाधारणा अत्युत्कटा स्वामीभक्तिः प्रभुभक्तिः, किञ्चित् किमपि, न कारयति अपि सर्वमपि कारयतीत्यर्थः, सा परमसुन्दरी लोकप्रसिद्धा, त्वं भवेति, देवि ? भगवति ? देवेन स्वामिना, यदैव यस्मिन्नेव समये, दृष्टासि दृष्टिपथमागतासि, तत आरभ्य एव तस्मात् कालादेव, अस्य स्वामिनः, कामः मन्मथः, गुरुः उपदेष्टा, जीवितेशः प्राणेशः, चन्द्रमा मलयमरुत् मलयपर्वतवायुः, उच्छ्वासहेतुः निःश्वासकारणम्, अन्तरङ्गस्थानेषु मित्रस्थानेषु. आधयः मनः पीडाः, सन्तापः पीडा परमसुहृत् सखा, प्रजागरः जागरणम्, आप्तः विश्वासपात्रम्, मनोरथाः अभिलाषाः, सर्वगताः अव्यवस्थिताः, निःश्वासा दीर्घोच्छ्वासाः, दिग्रहाग्रेसराः= विग्रहात् शरीरात् अग्रेसराः अग्रगामिनः, मृत्युः, पार्श्ववर्ती समीपचरः, रणरणकः चिन्तावेगः, संचारकः प्रेरकः संकल्पाः प्रतिज्ञाः, बुद्ध्युपदेशवृद्धाः= वुद्धेः मत्याः, उपदेशाय उपदेष्टुम्, वृद्धाः वृद्धपुरुषा इव, महोपदेशकाश्चेति भावः, किं च अतः परं किमधिकं, विज्ञापयामि विनिवेदयामि।

शब्दार्थ—पारिप्लवतां=चञ्चलता को, दुर्निवारता=अजेयता, प्रख्यातैव

=प्रसिद्ध ही है, बालिशता=मूर्खता, चारणता=धूर्तता, प्रजागरः=जागना, आप्ताः=विश्वासपात्र, विग्रहाग्रेसरा=शरीर के आगे चलने वाले, रणरणकः =मानसिक चिन्ता।

अनुरूपो देव इत्यात्मसंभावना, शीलवानिति प्रक्रमविरुद्धम्, धीर इत्यवस्थाविपरीतम्, सुभग इति त्वदायत्तम्, स्थिरप्रीतिरिति निपुणोपक्षेपः, जानाति सेवितुमित्यस्वामिभावोचितम्, इच्छति दासभावमामरणात्कर्तुमिति धूर्त्तालापः, भवनस्वामिनी भवेत्युप्रलोभनम्, पुण्यभागिनी भजति भर्तारं तादृशमिति स्वामिपक्षपातः, त्वं तस्य मृत्युरित्यप्रियम्, अगुणज्ञासीत्यधिक्षपः, स्वप्नेऽस्य बहुशः कृतप्रसादासीत्यसाक्षिकम्, प्राणरक्षार्थमर्थयत इति कातरता, तत्र गम्यतामित्याज्ञा, वारितोऽपि बलादागच्छतीति, परिभवः। तदेवमगोचरे गिरामसीति श्रुत्वा देवी प्रमाणम' इप्यभिधाय। तुष्णीमभूत्।

अर्थ—यदि मैं यह कहूं कि स्वामी (दधीच) आपके योग्य हैं तो यह आत्म प्रशंसा होगी, वह सुशील हैं तो यह कथन प्रसंग विपरीत होगा धैर्यशाली हैं तो यह कथन कामदशा के विपरीत होगा, वे सुन्दर हैं यह तुम्हारे कहने योग्य है, वे दृढ़ प्रेम करनें वाले हैं तो यह कथन चतुर पुरुष ही कह सकते हैं, वे प्रेम की सेवा करना जानते हैं यह कथन स्वामिभावना के प्रतिकूल है, वे जीवन पर्यन्त आपकी दासता (गुलामी) करना चाहते हैं यह कथन धूर्तों के योग्य ही है, गृह स्वामिनी हो तो यह कहना लालच देना है, कोई पुण्य-शालिनी ही ऐसे स्वामी को प्राप्त करती है यह कहना स्वामी के प्रति पक्षपात सिद्ध होता है। आपके बिना वे जीवित नहीं रह सकते तो यह कहना अशुभ होगा, तुम उसके गुणों को नहीं जानती हो यह कहना आपका अपमान करना है, तुम स्वप्न में अनेक बार इस पर कृपा कर चुकी हो इसका कोई साक्षी (प्रमाण) नहीं है। वे अपने प्राणों की भिक्षा (आपसे) माँगते हैं, यह कहना दीनता दीखाना है, वहाँ जाइये यह कहना आज्ञा होगी, रोकने पर वे बलात् यहाँ आयेंगे यह कहना

अपमान होगा। इस प्रकार मैं क्या कहूं मेरी वाणी कुछ कहने में समर्थ नहीं है यह सुनकर आप ही कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निर्णय कर कार्य करें यह कह कर मालती चुप हो गई।

संस्कृत-व्याख्या—यद्यहं मालती एवं कथयामि यत् देवः स्वामी दधीचः, अनुरूपः त्वदयोग्यः अस्ति इति कथनम्, आत्मसंभावना आत्मप्रशंसा, सः, शीलवान् सुशीलः, इति, कथनं तु, प्रक्रमविरुद्धम् प्रसंगविरुद्धम्, धीरः धैर्यवान्, इति कथनं, तु, अवस्थाविपरीतम् मदनावस्थाविरुद्धम्, सुभगः सुन्दरः इति कथनं, तु, त्वदायत्तम् त्वदधीनम् अस्ति, स्थिरप्रीतिः दृढानुरागः, इति कथनं, तु, निपुणोपक्षेपः दक्षपुरुषकथनयोग्यः, सेवितुम्, जानाति, इति कथनं तु, अस्वामिभावोचितम्=स्वामिभावविपरीतम्, आमरणात् जीवनावधि, दासभावं कर्तुम्, इच्छति, इति कथनं तु, धूर्त्तालापः धूर्त्तकथनम्। भवनस्वामिनी गृहाधिस्वामिनी, भव इति कथनं तु उपप्रलोभनं प्रलोभयमात्रमेव, तादृशं गुणवन्तं, भर्तारं पतिं, पुण्यभागिनी पुण्यवती, भजति सेवते, इति कथनं तु, स्वामिपक्षपातः, त्वं तस्य देवस्य, मृत्युः जीवनहेतुः इति कथनं तु, अप्रियम् अशुभसूचकम्, अगुणज्ञा तद्गुणैः अपरिचिताऽसि इति कथनं तु, ते अधिक्षेपः तिरस्कारः, अस्य देवस्य, स्वप्नेऽपि स्वप्नदशायामपि, बहुशः बहुवारं, कृतप्रसादा=कृतः विहितः, प्रसादः अनुग्रहः, यया सा, इति कथनं तु असाक्षिकं साक्ष्यभावादप्रमाणिकं, प्राणरक्षार्थं प्राणभिक्षाम्, अर्थयते प्रार्थयते, इति कथनं तु, कातरता दैन्यभावः, अत्र, गम्यताम् गच्छतु, इति कथनं, तु, आज्ञा आदेशः वारितोऽपि निवार्यमाणोऽपि, बलात् हठात्, आगच्छति, इति कथनं तु परिभवः तिरस्कारः, तदेवम् अस्यां दशायां गिरां वाणीनाम्, अगोचरे कथयितुम्, अशक्ये, इति मन्निवेदनं, श्रुत्वा आकर्ण्य, देवी भवति एव, प्रमाणं कर्त्तव्याकर्तव्यनिर्णये समर्थाऽस्ति, इति, अनेन प्रकारेण अभिधाय कथयित्वा, मालती, तूष्णीमभूत् शान्ताऽभूत्।

शब्दार्थ—आत्मसंभावना=आत्मप्रशंसा, प्रक्रमविरुद्धम्=प्रसंग विरुद्ध, त्वदायत्तम्=तुम्हारे कथन के योग्य (अधीन), निपुणोपक्षेपः=चतुर पुरुष के कहने के योग्य, अधिक्षेपः=तिरस्कार, निन्दा, कृतप्रसादा=स्वप्न में दर्शन दान के द्वारा अनुग्रह किया है, अर्थयते=प्रार्थना करता है। कातरता=दीनता का भाव प्रकट करना। वारितोऽपि=रोकने पर भी, परिभवः=अपमान, गिरां=वाणी के, अगोचरे=अविषय, न कहने में समर्थ, तूष्णीम्=चुप।

अथ सरस्वती प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा प्रत्यवादीत्—'अयि, न शक्नोमि बहु भाषितुम्। एषास्मि ते स्मितवादिनी। वचसि स्थिता। गृह्यन्താममी प्राणाः' इति। मालती तु 'देवि, यदाज्ञापयसि, अतिप्रसादाय' इति व्याहृत्य प्रहर्षपरवशा प्रणम्य प्रजविना तुरगेण ततार शोणम्। अगाच्च दधीचमानेतुं च्यवनाश्रमपदम्। इतरा तु सखीस्नेहेन सावित्रीमपि विदितवृत्तान्तामकरोत्। उत्कण्ठाभारभृता च ताम्यता चेतसा कल्पायितं कथंकथमपि दिवसशेषमनैषीत्।

अर्थ—मालती के चुप हो जाने पर सरस्वती प्रेम प्रसन्न दृष्टि से देखती हुई मालती से बोली अयि सखि ? मालती, मैं अधिक बोल नहीं सकती हूं, हँस कर बोलने वाली मैं तेरे कथन पर आरूढ हूं, अर्थात् तेरे वचन का पूर्ण रूप से पालन करने को तैयार हूं, मेरे इन प्राणों को ग्रहण करो, यह कहा, मालती ने तो यह कहा है हे देवि ! जो आज्ञा देती हो, प्रसन्नता के साथ स्वीकार है। यह कहकर प्रसन्नता से परवश होती हुई, प्रणाम कर तेज चलने वाले घोड़े से शोण नदी को पार कर गई. और दधीच को लाने के लिये च्यवन ऋषि के आश्रम में पहुंच गई, दूसरी (मालती की सखि ने) सखी ने प्रेम से सावित्री को भी समस्त वृत्तान्त बता दिया, उत्कण्ठा के भार से बोझिल व्याकुल हृदय से किसी प्रकार अवशिष्ट दिन को कल्प के समान व्यतीत किया।

संस्कृत-व्याख्या—अथ मालती कथनान्तरम् एव, सरस्वती, प्रतिविस्फारितेन =प्रीत्या स्नेहेन, विस्फारितेन प्रसन्नेन, चक्षुषा लोचनेन, प्रत्यवादीत् प्रत्युवाच, अयि ? सखि ? मालति ? बहुभाषितं बहुवक्तुं, न शक्नोमि न प्रभवामि, हे स्मितवादिनि=स्मित पूर्वाभिभाषिणि ? ते मालत्याः. वचसि कथने, स्थित स्मि, अमी एते, प्राणाः, गृह्यन्ताम्, इति, मालती, तु, देवि ? हे सरस्वती ? यदाज्ञापयसि, अतिप्रसादाय अनुग्रहार्थम्, इति इत्थं, व्याहृत्य उक्त्वा प्रहर्षपरवशा= प्रकृष्टः यः हर्षः तेन परवशा पराधीना, प्रणम्य अभिवाद्य, प्रजविना तीव्रगामिना, तुरगेण वाजिना, शोणं, ततार अतरत्, च, दधीचम् आनेतुम् आनयनार्थं, च्यवनाश्रमपदम्=च्यवनस्य एतन्नाम्नः महर्षेः आश्रमपदम्, अगात् प्राप।

इतरा द्वितीया, तु: सखीस्नेहेन सखी प्रेम्णा, सावित्रीमपि विदितवृत्तान्ताम्=विदित: ज्ञात: वृत्तान्त: वृत्तं, यया सा ताम् अकरोत् चकार, सावित्रीमपि निखिलं वृत्तम अश्रावयत् इत्यर्थः, उत्कण्ठाभारभृता=उत्कण्ठाया: त्वरायां भार: तं विभर्ति इति+तेन, ताम्यता चिन्तामग्नेन, चेतसा, हृदयेन कल्पायितं कल्पमिव, दिवसशेषम् अवशिष्टदिवसम् कथ कथमपि यथाकथञ्चित् अनैषीत् अपापयत् ।

शब्दार्थ—प्रीतिविस्फारितेन=प्रेम से खिले हुए (प्रसन्न), अतिप्रासादाय=अत्तन्त कृपा (अनुग्रह) के लिये, व्याहृत्य=कहकर, प्रजविना=तेज चलने वाले, विदितवृत्तान्तम्=समस्त समाचार को जानने वाली, अकरोत्=कर दिया, उत्कण्ठाभारभृता=उत्सुकता के भार से बोझिल, ताम्यता=चिन्तायुक्त, दिवसशेषं=शेष दिन को, कल्पायितं=कल्प के समान, अनैशीत्=विताया ।

अस्तमुपगते च भगवती गभस्तिमति, स्तिमिततरमवतरति तमसि, प्रहसितामिव सितां दिशं पौरंदरी दरीमिव केसरिणि मुञ्चति चन्द्रमसि सरस्वती शुचिनि चीनांशुकसुकुमारतरे तरङ्गिणि दुकूलकोमलशयन इव शोणसैकते समुपविष्टा स्वप्नकृतप्रार्थनापादपतनलग्नां दधीचचरणनखचन्द्रिकामिव ललाटिकां दधाना, गण्डस्थलार्शप्रतिबिम्बितेन 'चारुहासिनि, अयमसावाहृतो हृदयदयितो जन:' इति श्रवणसमीप वर्तिना निवेद्यमावमदनसंदेशेवेन्दुना, विकीर्यमाणनखकिरणजक्रवालेन बालव्यजनीकृतचन्द्रकलाकलापेनेव करेण वीजयन्ती स्वेदिनं कपोलपट्टम्, अत्र दधीचादृते न केनचित्प्रवेष्टव्यम्' इति तिरश्चीनं चित्तभुवा पातितां विलासवत्रलतामिवं बालमृणालिकामधिस्तनं स्तनयन्ती कथमपि हृदयेन वहन्ती प्रतिपालयामास । आसीच्चास्या मनसि अहमपि नाम सरस्वती यत्रामुना मनोजन्मना जघन्येव परवशीकृता । तत्र का गणनेतरासु तपस्विनीष्वतितरलासु तरुणीषु' इति ।

अर्थ—भगवान् सूर्य के अस्त हो जाने पर, घने अन्धकार के छा जाने पर, जिस प्रकार सिंह गुफा छोड़कर निकलता है उसी प्रकार हसी के समान सफेद पूर्व दिशा को छोड़कर चन्द्रमा के निकलने पर सरस्वती पवित्र चीन में बने हुए वारीक वस्त्र के समान कोमल तरंगों से युक्त रेशमी कोमल चादर के समान शोण नदी के रेत पर बैठी हुई, मस्तकस्थित आभूषण को धारण किये हुए थी, वह आभूषण ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वप्न में प्रार्थना करने के लिए चरणों पर गिरने से दधीच के नाखूनों की कान्ति ही हो, सरस्वती के कपोल-रूपी दर्पण में चन्द्र प्रतिविम्ब हो रहा था वह प्रतिबिम्ब होने वाला चन्द्र ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कान के समीप आकार कामदेव का यह सन्देश निवेदन कर रहा था कि हे मनोहर हंसी हंसने वाली देखो मैंने (चन्द्र ने) तेरे प्रिय को तेरे पास उपस्थित कर दिया, उसके हाथों के नाखूनों के चारों ओर विखरी हुई किरणें ऐसी प्रतीत हो रही थीं. मानो उसके हाथ ने चन्द्रमा की कलाओं को ही चामर बनाया हो, ऐसे चामर से स्वेद-बिन्दुओं से युक्त अपने कपोल स्थल पर हवा कर रही थी, वह सरस्वती अपने स्तनों पर किसी प्रकार नवीन कमल मृणाल को धारण किये हुये थी, जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो कामदेव ने अपना बेंत ही स्तनों पर छोड़ दिया हो, क्योंकि दधीच के अतिरिक्त कोई अन्य यहाँ प्रवेश न कर सकें, (इस अवस्था में स्थित) सरस्वती दधीच के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी, इस सरस्वती के मन में यह बात उत्पन्न हुई, कि मैं सरस्वती होकर भी इस कामदेव से इस प्रकार साधारण तुच्छ स्त्री के समान परवश हो रही हूं. तो फिर, अन्य चञ्चल युवती स्त्रियों के विषय में क्या कहना अर्थात् वे वेचारी कितनी व्यथित होती होंगी (यह अनुमान ही लगाया जा सकता है) ।

संस्कृत-व्याख्या—गभस्तिमति, किरणमति, भगवती, सूर्ये, अस्तमुपगते, अस्तंगते, सति, स्तिमिततरम् अत्यन्तं, तमसि अन्धकारे, अवतरति व्याप्ते, सति, केसरिणि सिंहे, दरीम् कन्दरां, मुञ्चति इव परित्यजतीव, प्रहसितामिव हास्य-पूर्णामिव, सितां शुभ्रां, पौरन्दरीं= पुरन्दरस्य इन्द्रस्य, सम्बन्धिनी. इयं दिशा, पूर्वदिशा, तां, चन्द्रमसि शशिनि, मुञ्चति परित्यज्य उदिते सति, शुचिनि, पवित्रे, चीनांशुकसुकुमारतये=चीनांशुक इव चीनदेशोत्पन्नसूक्ष्मवस्त्रमिव, सुकुमारतरे मृदुनि, [illegible] क्षौमवस्त्रमिव

कोमल मृदु, शयनं शय्यास्तरणं तस्मिन्, इव, शोणसैकते=शोणस्य सैकते बालुकामये तटे, समुपविष्टा सती, प्रतिपालयामास प्रत्यपालयत। स्वप्नकृत-प्रार्थनापादपतनलग्नां=स्वप्ने, कृता विहिता. या प्रार्थना, तत्र, यत् पादपतनं चरणपातः, तेन, लग्ना, ताम्, दधीचचरणनखचन्द्रिकाम् इव=दधीचस्य, चरणयोः, नखानां, चन्द्रिकामिव कान्तिमिव, ललाटिकां मस्तक आभूषण, दधाना धारयन्ती, गण्डस्थलादर्शप्रतिबिम्बितेन=गण्डस्थलं कपोलस्थलमेव, आदर्शः दर्पणं, तत्र, प्रतिबिम्बितेन, श्रवणसमीपवर्तिना कर्णसमीपवर्तिना, निवेद्यमानसन्देशेन= निवेद्यमानः सन्देशः. येन सः तेन, इन्दुना शशिना, चारुहासिनि? मधुरहासिनि? अयम्, ते असौ, हृदयदयितः हृदयप्रियः, (मया चन्द्रेण) आहृतः आनीतोऽस्ति, विकीर्यमाणनखकिरणचक्रवालेन=विकीर्यमाणं प्रक्षिप्यमाणं नखकिरणानां नखरश्मीनां, चक्रवालं निकरः, यस्मात्, सः तेन, वालव्यजनीकृतचन्द्रकलाक-लापेनेव=वालव्यजनीकृताः चामरीकृताः, चन्द्रकलानां चन्द्रकिरणानां, कलापः समूहः येन सः तेन, करेण पाणिना, स्वेदिनं स्वेदार्द्रं, कपोलपट्टं कपोलस्थलं, वीजयन्ती वायुं कुर्वाणा, चित्तभुवा कामदेवेन, पतितां निहितां, विलासवेत्रलता-मिव=विलासार्थं, वेत्रलतामिव=वेत्रयष्टिमिव, बालमृणालिकां नूतनकमल-नालम्, अधिस्तनम्=स्तनयोः, अधि वक्षोजयोः उपरि, स्तनयन्ती दधाना मन्येऽत्र कामदेवनिहितां मृणालिकारूपिणीं वेत्रयष्टिमालोक्य दधीचादृते दधीचं विहाय कोप्यन्यः केनचित् अन्येन युवकेन, तिरश्चीनं तिर्यक् यथास्यात्तथा न प्रवेष्टव्यम् इति–उत्प्रेक्षते, एवम्भूता सरस्वती तं प्रतिपालयामास प्रत्यपालयत्। अस्याः सरस्वत्याः, मनसि चित्ते, आसीत् एवम्भवत् अहम् सरस्वती अपि सकलविद्याधिष्ठात्री अपि यत्र कामविषये, अमुना अनेन, मनोजन्मना कामदेवेन, जघन्येव क्षुद्रस्त्रीव, परवशीकृता, पराधीनासञ्जाताऽस्मि, तत्र कामविषये, इतरासु अन्यासु, अतितरलासु स्वभावातिचञ्चलासु, तरुणीषु का गणना किं कथनं न किमतीतिभावः।

शब्दार्थ—गभस्तिमति=सूर्य स्तिमिततरम्=अत्यन्त, पौरन्दरीं=इन्द्र सम्बन्धिनी पूर्व दिशा, शुचिनि=पवित्र, स्वप्नकृतप्रार्थनापादपतनलग्नां=स्वप्न में की हुई प्रार्थना के समय पैरों पर गिरने से लगी हुई, ललाटिकां=मस्तका-भरण को, गण्डस्थलादर्शप्रतिबिम्बितेन=कपोल रूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित, श्रवणसमीपवर्तिना=कान के समीपवर्ती, निवेद्यमानसन्देशेन=सन्देश निवेदन

करने वाले, इन्दुना=चन्द्र से, विकीर्यमाणनखकिरणचक्रवालेन=चारों ओर बिखरे हुये नाखूनों की किरणों के जल से, वालव्यजनीकृतचन्द्रकलाकलापेनेव=चन्द्रमा की कलाओं को चंवर बनाने वाले, करेण=हाथ से, स्वेदिनं=पसीने से युक्त, तिरश्चीनं=तिरछे, चित्तभुवा=कामदेव के द्वारा, पतितां=रखी हुई, विलासवेत्रलतामिव=विलास के लिए (धारण की हुई) बेंत के समान, अधिस्तनं=स्तनों के ऊपर, स्तनयन्ती=धारण करती हुई, मनोजन्मना=कामदेव के द्वारा, जघन्येव=साधारण तुच्छ स्त्री के समान, परवशीकृता=पराधीन कर दी गई हूं, इतरासु=अन्य, अतितरलासु=अत्यन्त चंचल, तरुणीषु- युवती स्त्रियों के विषय में, का गणना=क्या कहना।

आजगाम च मधुमास इव सुरभिगन्धवाहः, हंस इव कृत-मृणालधृतिः, शिखण्डीव घनप्रीत्युन्मुखः, मलयानिल इवाहि-तसरसचन्दनधवलतनुलतोत्कम्पः, कृष्यमाण इव कृतकरकच-ग्रहेण ग्रहपतिनाः, प्रेर्यमाण इव कन्दर्पोद्दीपनदक्षेण दक्षिणा-निलेन, उह्यमान इवोत्कलिकाबहुलेन रतिरसेन, परिमलसं-पातिमा मधुपपटलेन पटेनेव नीलेनाच्छादिताङ्गयष्टिः, अन्तः स्फुरता मत्तमदनकरिकर्णशङ्खायमानेन प्रतिमेन्दुना प्रथमसमा-गमविलासविलक्षस्मितेनेव धवलीक्रियमाणैककपोलोदरो मा-लतिद्वितीयो दधीचः। आगत्य च हृदयगतदयितानूपुररववि-मिश्रयेव हंसगद्गदया गिरा कृतसंभाषणो यथा मन्मथः समा-ज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति यथा विदग्धताध्यापयति, यथानुरागः शिक्षयति, तथा तामभिरामां रामामरमयत्। उपजातविस्रम्भा चात्मानमकथयदस्य सरस्वती। तेन तु सार्धमेकदिवसमिव संवत्सरमधिकमनयत्।

अर्थ—वसन्त ऋतु के समान सुगन्धि युक्त, हंस के समान कमल नाल धारण किये हुए, मोरों की तरह बादलों से प्रेम करने वाले, मलयपर्वत से निकलने

वाली हवा के समान सरस चन्दन के लेप से गौरवपूर्ण शरीर को कँपाने वाले, किरण रूपी हाथों से बालों को पकड़ने वाले चन्द्रमा के द्वारा खींचे जाते हुए, कामोद्दीपन करने में समर्थ दक्षिण वायु के द्वारा मानो प्रेरित किए जाते हुए, उमंगरूपी कलियों से युक्त रति-क्रीड़ा के आनन्द के द्वारा ही मानो ढोये जाते हुए, सुगन्धि का अनुसरण करने वाले भौंरों के समूह के द्वारा ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो उनका शरीर नीले वस्त्र से ढका हुआ हो, उन्नत कामदेव रूपी हाथ के कान में धारण किये हुए शंख के आभूषण के समान चन्द्रमा उनके कपोल स्थल पर प्रतिबिम्बित हो रहा था अथवा मानो प्रथम मिलन के विलास की हँसी से कपोल स्थल की कान्ति और अधिक सफेद हो गई हो ऐसे कपोल वाले दधीच मालती के साथ वहाँ आ गये। और (वहाँ) आकर हृदयास्थित प्रिया के नूपुर ध्वनि से मिश्रित हंस के समान मधुर वाणी से बातचीत की, कामदेव जो आज्ञा देता है, युवावस्था जो उपदेश देती है, प्रेम जो शिक्षा देता है, चतुरता जो समझती है, उसके अनुसार प्रिया के साथ विहार करने लगे, पूर्ण विश्वास हो जाने पर सरस्वती ने दधीच से अपना (दुर्वासा के शाप के कारण मृत्युलोक में आगमन आदि का) वृतान्त कहा, उन दधीच के साथ रहती हुई सरस्वती ने एक वर्ष से अधिक समय को एक दिन के समान व्यतीत किया।

संस्कृत-व्याख्या—मधुमास इव वसन्त इव सुरभिगन्धवहः सुगन्धियुक्तः, हंस इव, कृतमृणालधृतिः=कृता विहिता, मृणालां, धृतिः धारण, येन सः शिखण्डीव मयूर इव, घनप्रीत्युन्मुखः—बहुस्नेहोन्मुखः, मलयानिल इव मलयवायुरिव, आहितसरसचन्दनधवलतनुलतोत्कम्पः=धवला श्वेता, तनुलता शरीरयष्टिः आहितः उत्पन्नः, सरसः कृतकरकचग्रहणेन=कृतः वहितः, करैः, रश्मिभिः, हस्तैश्च, कचग्रहणं केशग्रहणं येन सः तेन, ग्रहपतिना=ग्रहाणां शनिकेतुराहुबुधादीनां, पतिना स्वामिना, चन्द्रेणेत्यर्थः कृष्यमाण इव, कन्दर्पोद्दीपनदक्षेण=कन्दर्पस्य कामविकारस्य, उद्दीपने, दक्षः समर्थः, तेन, दक्षिणानिलेन दक्षिणपवनेन, प्रेर्यमाण इव उत्कलिकावहुलेन उत्कलिकाः उत्कण्ठाः बहुलाः अधिकाः यस्मिन् सः तेन रतिरसेन रतिक्रीडानन्देन उह्यमान इव नीयमान इव, परिमलसंपातिना=परिमलस्य सुरभेः, सम्पातिना अनुगामिना, मधुपपटलेन भ्रमरसमूहेन, नीलेन नीलवर्णेन, पटेनेव वस्त्रेणेव, आच्छादिताङ्गयष्टिः=आच्छादिता आवृता, अङ्गयष्टिः, शरीरयष्टिः, येन सः, अन्तःस्फुरता

कपोलान्तः प्रतिविम्बितेन मत्तमदनकरिकर्णशंखायमानेन=मत्तः, यः, मदनः कामदेवः, स एव करी गजः, तस्य गजस्य कर्णयोः, शंख इव प्रतिमेन्दुना प्रतिबिम्बितेन शशिना, प्रथमसमागम विलासविलक्षस्मितेन इव=प्रथमः यः समागमः तस्मिन् यः विलासः तेन विलक्षम् आश्चर्ययुक्तं स्मितं मन्दहासः, यस्य सः तेन इव, धवलीक्रियमाणैककपोलोदरः धवलिक्रियमाणः श्वेतीभूतः, एकस्य, कपोलस्य, उदरः मध्यभागः, यस्य सः, एवम्भूतः मालतीद्वितीयः मालतीसहायः, दधीचः एतन्नाम्रा युवकः, आजगाम आगच्छत् । च, आगत्य हृदयगतदयितानूपुररवविमिश्रयेव=हृदयगता, या दयिता प्रिया, तस्याः, नूपुराणां, रवेण ध्वनिना विमिश्राः विशेषण मिलिताः, तया हंसगद्गदया हंस इव गद्गदया, गिरा वाण्या, कृतसम्भाषणः=कृतं विहितं, सम्भाषणं वार्तालापः, येन सः यथा, मन्मथः कामदेवः, समाज्ञापयति, आदिशति, यथा, च, यौवनं तारुण्येम्, उपदिशति, यथा, विदग्धता चातुर्यम् । अध्यापयति शिक्षयति, यथा अनुरागः स्नेहः, शिक्षयति, तथा तेन प्रकारेण, अभिरामां परम सुन्दरी, तां सरस्वतीं रामां प्रियाम्, अरमयत् रमयामास, उपजातयिस्रम्भा=उपजातः संजातः विस्रम्भः विश्वासः, यस्याः सा, सरस्वती, अस्य, दधीचस्य, आत्मानं स्वशापवृतान्तादिकम्, अकथयत् अवादीत् । तेन सार्धम् दधीचेन सह, संम्वत्सरमधिकम् एकवर्षादपि अधिकं समयम्, एकदिवसमिव, एकदिनमिव, अनयत् अतिनीतवती ।

शब्दार्थ—कृतमृणालधृतिः=कमल डंठल को धारण किये हुये, शिखण्डीव=मोर के समान, घनप्रीत्युन्मुखः=बादल से प्रेम करने वाले, दधीच=के पक्ष में घना प्रेम करने वाले, आहितसरसचन्दनधवलतनुलतोत्कम्पः=लगे गीले चन्दन के लेप से सफेद शरीर रूपी लता को कंपाने वाले, कृतकरकचग्रहणेन=किरणरूपी हाथ से बाल पकड़ने वाले, ग्रहपतिना=ग्रहों के स्वामी अर्थात् चन्द्रमा के द्वारा, कृष्यमाण इव=खींचे जाते हुए, कन्दर्पोद्दीपनदक्षेण =कामविकार को उद्दीपन करने में चतुर, दक्षिणानिलेन=दक्षिण दिशा से आने वाली शीतल वायु के द्वारा, उत्कलिकाबहुलेन=उमंगों की अधिकता से युक्त, रतिरसेन=रतिक्रीडा के आनन्द से, उह्यमान इव=ढोया सा जाता हुआ, परिमलसंपातिना=सुगन्धि का अनुगमन करने वाले, आच्छादिताङ्गयष्टिः=ढका हुआ है शरीर जिसका ऐसा वह, अन्तःस्फुरता=कपोल पर

प्रतिबिम्बित होने वाले, मत्तमदनकरिकर्णशङ्खायमानेन=मतवाले कामदेव रूपी हाथी के कान के शंख के समान, प्रतिमेन्दुना=प्रतिबिम्बित होने वाले चन्द्र से, प्रथमसमागमविलासविलक्षस्मितेनेव=प्रथम मिलन के विलास की मन्द हंसी से ही मानो, धवलीक्रियमाणैककपोलोदरः=सफेद हो गया है एक कपोल का मध्यभाग जिसका ऐसा वह, मालतीद्वितीयः=मालती के साथ। हृदयगतदयितनूपुररवविदमिश्रयेव=हृदयस्थित प्रिया के नूपुरों की आवाज से मिले हुए के समान, गिरा=वाणी से, कृतसम्भाषणः=वार्तालाप किया, अभिरामां=परम सुन्दरी, रामाम्=रमणी, उपजातविस्रम्भा=उत्पन्न हो गया है विश्वास जिसको ऐसा वह, सरस्वती अस्य=दधीच से, आत्मानं=अपने (शापादि के वृत्तान्त) को, सम्वत्सरमधिकम्=एक वर्ष से भी अधिक समय को, एकदिवसमिव=एक दिन से समान, अनयत्=बिताया।

अथ दैवयोगात्सरस्वती बभार गर्भम्। असूत चानेहसा सर्वलक्षणाभिरामं तनयम्। तस्मै च जातमात्रायैव 'सम्यक्स-रहस्याः सर्वे वेदाः सर्वाणि च शास्त्राणि सकलाश्च कला मत्प्रभावात्स्वयमाविर्भविष्यन्ति' इति वरमदात्। सद्भर्तृश्लाघया दर्शयितुमिव हृदयेनादाय दधीचं पितामहादेशात्समं सावित्र्या पुनरपि ब्रह्मलोकमारुरोह। गतायां च तस्यां दधी-चोऽपि हृदये ह्लादिन्येवाभिहतो भार्गववंशसंभूतस्य भ्रातुर्ब्रा-ह्मणस्य जायामक्षमालाभिधानां मुनिकन्यकामात्मसूनोः संव-र्धनाय नियुज्य विरहातुरस्तपसे वनमगात्। यस्मिन्नेवावसरे सरस्वत्यसूत तनयं तस्मिन्नेवाक्षमालापि सुतं प्रसूतवती। तौ तु सा निर्विशेषं सामान्यस्तन्यादिना शनैःशनै शिशू सम-वर्धयत्। एकस्तयोः सारस्वताख्य एवाभवत्, अपरोऽपि वत्स-नामासीत्। आसीच्च तयोः सौंदर्ययोरिव स्पृहणीया प्रीतिः।

अर्थ—इसके बाद भाग्य से सरस्वती ने गर्भ धारण किया, और समय के अनुसार सभी लक्षणों से युक्त सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। जन्म लेते ही उस

पुत्र को सरस्वती ने वरदान दिया कि - मेरे प्रभाव से रहस्यों से युक्त चारों वेद, सभी शास्त्र, सम्पूर्ण कलाएँ स्वयं तेरे में उत्पन्न (प्रकट) होंगी, यह वरदान दिया। श्रेष्ठ पति की प्रशंसा के लिए ही मानो दधीच को हृदय में धारण कर ब्रह्मा जी की आज्ञानुसार फिर सावित्री के साथ सरस्वती ब्रह्मलोक में चली गई। सरस्वती के ब्रह्मलोक में चले जाने पर दधीच के हृदय पर मानो वज्राघात तुल्य व्यथित होते हुए दधीच ने अपने पुत्र को पालन करने के लिए भार्गव वंश में उत्पन्न किसी भाई ब्राह्मण की स्त्री अक्षमाला नाम की मुनिसुता को नियुक्त करके (उसे सौंपकर) विरह से व्याकुल होते हुए तपस्या करने के लिये वन को प्रस्थान किया। जिस समय सरस्वती ने पुत्र को उत्पन्न किया था, उसी समय अक्षमाला ने भी पुत्र को जन्म दिया था। उस अक्षमाला ने उन दोनों को एक समान दुग्ध-पान आदि के द्वारा दोनों बच्चों को बड़ा किया। उनमें से एक सारस्वत के नाम से प्रसिद्ध हुआ, दूसरा भी वत्स के नाम से प्रसिद्ध हुआ, उन दोनों में सगे भाई जैसा घना प्रेम था।

संस्कृत-व्याख्या — अथ अनन्तरं, दैवयोगात्, भाग्यवशात्, सरस्वती, गर्भं बभार दधार, धृतवती, च, अनेहसा समयेन, सर्वलक्षणाभिरामं=सर्वलक्षणैः, अभिरामं सुन्दरं, तनयं पुत्रम्, असूत सुषुवे, जातमात्राय एव उत्पन्नमात्रायैव तस्मै सुताय, सम्यक्, सरहस्या स्तत्वार्थसहिताः, सर्वे निखिलाः वेदाः ऋग्वेदादयः, सर्वाणि निखिलानि, शास्त्राणि, सकलाः समस्ताः, कलाः संगीतकाव्यादि चित्रकलादय., मत्प्रभावान् सरस्वत्यनुग्रहात् स्वयमेव, आविर्भविष्यन्ति त्वयि प्रकटयिष्यन्तीति, वरम् अदात् ददौ, सदभर्तृश्लाघया=श्रेष्ठपत्युः प्रशंसया, दर्शयितुमिव, प्रकटयितुमिव, हृदयेन, दधीचम्, आदाय गृहीत्वा, पितामहादेशात्=पितामहस्य ब्रह्मणः, आदेशात् आज्ञया, पुनरपि भूयोऽपि, सावित्र्या समं सावित्र्या सह, ब्रह्मलोकम्, आरुरोह जगाम। च तस्यां सरस्वत्यां, गतायां प्रस्थितायां, दधीचः अपि, हृदये चित्ते, ह्रादिन्येव वज्राभिघातेनेव, अभिहतः प्रताडितः सन्, भार्गववंशसंभूतस्य भार्गवकुलोत्पन्नस्य, भ्रातुः कस्यचिद् बन्धोः, ब्राह्मणस्य, जायां पत्नीम्, अक्षमालाभिधानाम् अक्षमालेति नाम्नीं मुनिकन्यकां मुनितनयाम् आत्मसूनोः स्वसुतस्य, संवर्धनाय पालनाय, नियुज्य, विरहातुरः=विरहेण आतुरः व्याकुलः सन्, तपसे तपः कर्तुं, वनं काननम्, अगात् जगाम। यस्मिन्नेव, अवसरे समये, सरस्वती, तनयं पुत्रम्, असूत

अजनि, तस्मिन्नेव अवसरे, अक्षमालाऽपि, सुतं, प्रसूतवती अजनि, सा अक्षमाला, तु निर्विशेषं समानरूपेण तौ द्वावपि, शिशू, सामान्यस्तन्यादिना समानरूपेण दुग्ध पानादिना, समवर्धयत् अपालयत्, तयोः द्वयोः, एकः सारस्वताख्य एव सारस्वत नाम्ना एव प्रसिद्धोऽभवत् । अपरोऽपि द्वितीयोऽपि, वत्सनामा वत्सेति नाम्ना आसीत् अभवत्, च, तयोः द्वयोः, सोदर्ययोः सहोदरयोरिव स्पृहणीया प्रशंसनीया, प्रीतिः स्नेहः, आसीत् ।

शब्दार्थ—बभार=धारण किया, अनेहसा=समय से, असूत=उत्पन्न किया, जातमात्राय=उत्पन्न होते ही, सरहस्याः=रहस्यों सहित, आविर्भविष्यन्ति=उत्पन्न (प्रकट) होंगे, रुद्भर्तु श्लाघया=श्रेष्ठ पति की प्रशंसा के लिए, आरुरोह=चढ़ गई, चली गई, ह्लादिन्येव=वज्राघात के समान, अभिहतः=तडित होता हुआ, अक्षमालाभिधानां=अक्षमाला नामक, आत्मसूनोः=अपने पुत्र के, संवर्धनाय=पालन-पोषण के लिए, नियुज्य=नियुक्त करके विरहातुरः=विरह से व्याकुल, निर्विशेषं=एक समान, सामान्यस्तन्यादिना =समान रूप से दुग्ध पान आदि के द्वारा, समवर्धयत्=बढ़ाया, पालन-पोषण करके बड़ा किया । सारस्वताख्यः=सारस्वत नाम वाला, सोदर्ययोरिव=सगे भाई जैसा, स्पृहणीया=प्रशंसनीय, प्रीतिः=प्रेम, आसीत्=था ।

अथ सारस्वतो मातुर्महिम्ना यौवनारम्भ एवाविर्भूताशेषविद्यासंभारस्तस्मिन्सवयसि भ्रातरि प्रेयसि प्राणसमे सुहृदि वत्से वाङ्मय समस्तमेव संचारयामास । चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम् । आत्मनाप्याषढी, कृष्णाजिनी, अक्षवलयी, वल्कली, मेखली, जटी च भूत्पा तपस्यतो जनयितुरेव जगामान्तिकम् ।

अर्थ—इसके बाद माता सरस्वती के प्रभाव से सारस्वत में युवावस्था के आरम्भ होते ही समस्त विद्याएँ प्रकट हो गईं, तो उस सारस्वत ने समान आयु वाले प्राणों के समान प्रिय भाई और मित्र वत्स में सम्पूर्ण वाङ्मय प्रविष्ट कर दिया अर्थात् वत्स को समस्त विद्याएं पढ़ा दीं और वत्स का विवाह कर दिया, फिर उसी स्थान में प्रेम से प्रीतिकूट नाम का निवास स्थान बनाया

और स्वयं पलाशदण्ड, कृष्णमृगचर्म, रुद्राक्ष, की माला, वल्कल, मेखला और जटाधारी होकर तपस्या करने वाले अपने पिता के पास चला गया।

संस्कृत-व्याख्या—अथ अनन्तरं, सारस्वतः, मातुः सरस्वत्याः, महिम्ना प्रभावेण, यौवनारम्भ एव तारुण्यारम्भ एव, आविर्भूताशेषविद्यासंभारः=आविर्भूतः आविष्कृतः, अशेषाणां निखिलानां, विद्यानां, सभारः निकरः, येन सः, सवयसि समवयस्के, प्राणसमे प्राणतुल्ये, तस्मिन् भ्रातरि, प्रेयसि प्रिये, सुहृदि मित्रे, वत्से समस्तमेव सम्पूर्णमेव वाङ्मयं, संचारयामास प्रवेशयामास, कृतदारपरिग्रहस्य=कृतः, दाराणां स्त्रियाः, परिग्रहः ग्रहणं, येन सः तस्य, अस्य वत्सस्य प्रीत्या स्नेहेन, तस्मिन्नेव, प्रदेशे स्थाने, प्रीतिकूटनामानम् प्रीतिकूटनामकं निवासं निवासस्थानम्, चकार अकरोत्। आत्मना स्वयम्, आषाढी पलाशदण्डधारी, कृष्णाजिनी कृष्णमृगःचर्मधरः, अक्षवलयी रुद्राक्षधरः, वल्कली त्वग्वस्त्रधारी, मेखली मेखलाधारः, जटी जटाधरः, भूत्वा, तपस्यत तपःकुर्वाणस्य जनयितुः पितुः एव, अन्तिकं पार्श्वं जगाम ययौ।

शब्दार्थ—आविर्भूताशेषविद्यासंभारः=उत्पन्न हो गई हैं सभी विद्याएँ जिसमें ऐसा वह, सवयसि=समान आयु वाले, प्रेयसि=प्रिय, संचारयामास=प्रवेश कराया, पढ़ाया, कृतदारपरिग्रहस्य=कर लिया है विवाह जिसने ऐसे उस वत्स का, तस्मिन्नेव प्रदेशे=उसी स्थान में, प्रीतिकूटनामानं=प्रीतिकूट नामक, निवासं=निवास स्थान, चकार=बनाया, आत्मना=स्वयं, आषाढी =पलाशदण्डधारी, कृष्णाजिनी=कृष्णमृग चर्मधारी, अक्षवलीय=रुद्राक्षमालाधारी, वल्कली=वल्कल वस्त्रधारी, मेखली=मेखलाधारी, जटी=जटाधारी. भूत्वा=होकर, तपस्यतः=तपस्या करने वाले, जनयितुः=पिता के, अन्तिकम्=पास को, जगाम=चला गया।

अथ वत्सात्प्रवर्धमानादिपुरुषजनितात्मचरणोन्नतिनिर्गतप्रघोषः, परमेश्वरशिरोधृतः, सकलकलागमगम्भीरः, महामुनिमान्यः, विपक्षक्षोभक्षमः, क्षितितललब्धायतिः, अस्खलितप्रवृत्तो भागीरथीप्रवाह इव पावनः प्रावर्तत विमलो वंश। यस्मादजायन्त वात्स्यायना नाम गृहमुनयः, आश्रितश्रौता अप्यना-

लम्बितालीकबक्ककाकवः, कृतकुक्कुटव्रता अप्यवैडालवृत्तयः, विवर्जितजनपङ्क्तयः, परिहृतकपटकौरुकुचीकूर्चाकूताः, अगृहीतगह्वराः, न्यक्कृतनिकृतयः, प्रसन्नप्रकृतयः, विहतविकृतयः, परपरीवादपराचीनचेतोवृत्तयः, वर्णत्रयव्यावृत्तिविशुद्धान्धसः, धीरधिषणावधूताध्येषणाः, असङ्कसुकस्वभावाः, प्रणतप्रणयिनः।

अर्थ—इसके बाद वत्स से उत्पन्न हुआ वंश क्रमशः बढ़ता हुआ आदि-पुरुष अर्थात् शुक्र आदि पूर्वजों के बनाये हुए वेद की कठ आदि शाखाओं का अध्ययन करने वाले सर्वत्र व्याप्त एवं ख्याति तथा उन्नति प्राप्त पूर्वजों के द्वारा यह वंश उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ, (गंगा प्रवाह के पक्ष में—वृद्धि को प्राप्त वामनरूप आदि पुरुष विष्णु के द्वारा बढ़ाये गये अपने पैर के उत्कर्ष के गौरव से निकला है वेग (धार) जिसकी ऐसी गंगा के प्रवाह के समान वंश गौरव को प्राप्त हुआ) राजाओं के द्वारा सम्मिलित यह वंश हुआ, (गंगा प्रवाह-के पक्ष में शिवजी द्वारा धारण किये गये गंगा के प्रवाह के समान) समस्त कलाओं तथा विद्याओं की प्राप्ति से गम्भीर (गंगा प्रवाह के पक्ष में—कलकल ध्वनि से गम्भीर) शत्रुओं के (मान) मर्दन में समर्थ (गंगा प्रवाह के पक्ष में—पर्वतों के मर्दन में समर्थ) पृथिवी पर प्रताप करने वाला, (गंगा प्रवाह के पक्ष में पृथिवी पर विस्तार प्राप्त करने वाला) जिस वंश में किसी कार्य में कोई त्रुटि (अपराध या भूल) नहीं होती थी। (गंगा प्रवाह के पक्ष में—जिसका प्रवाह अबाधगति से प्रवाहित होता था) इस प्रकार यह पवित्र एवं निर्मल वंश गंगा प्रवाह के समान (भूतल पर) प्रवृत्त हुआ। जिस वंश से वात्स्यायन नामक गृहस्थ उत्पन्न हुए, जो वेद विहित कर्म करने वाले होते हुए भी झूठे और बगुले के समान कपट-व्यवहार नहीं करते थे, कुक्कुट व्रत करने वाले होते हुए भी मार्जारी के समान हिंसा वृत्ति नहीं करते थे, (धर्मशास्त्र के कुक्कुट नामक व्रत विशेष को करने वाले थे और हिंसा कर्म से पृथक् रहते थे यह विरोधाभास का परिहार है, लोगों की पंक्ति का परित्याग करने वाले अर्थात् सामाजिक भोज पंक्ति में भोजन नहीं करते थे) कपट, पाखण्ड और शुक (तोते) के समान व्यर्थ बकवास तथा बालों का संवारना आदि नहीं करते थे, पापकर्मों से रहित

धूर्ततापूर्ण व्यवहार से शून्य, प्रसन्न स्वभाव वाले, विकारों को नष्ट करने वाले, दूसरों की निन्दा से पराङ्मुख रहने वाले, तीनों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि से अलग रहकर स्वयं पाकी होकर पवित्र भोजन करने वाले, धैर्यबुद्धि और किसी से याचना न करने वाले, स्थिर स्वभाव से युक्त नमन करने वालों से प्रेम करने वाले ब्राह्मण उत्पन्न हुए।

संस्कृत-व्याख्या—अथ अनन्तरं, वत्सात् एतन्नामकात्, प्रवर्धमानादिपुरुषजनितात्मचरणोन्नतिनिर्गतप्रघोष=प्रवर्धमाना: वृद्धि गच्छन्त:, ये आदिपुरुषा: पूर्वजा: शुक्राद्या: तैः, जनिता विहिता, आत्मचरणानां स्वकठादिशाखाध्येतृणां, उन्नतिः अभ्युदय:, तया, निर्गत: उत्पन्न:, प्रघोष: प्रचार:, यस्य स (गंगाप्रवाह पक्षे तु, प्रवर्धमान: वामनरूपधारी, य:, आदिपुरुष: विष्णु: ते, जनिता कृता, आत्मन: स्वस्य, चरणस्य, उन्नति: विस्तार: तया, निर्गत:, प्रघोप: प्रचार:, यस्य स:) परमेश्वरशिरोधृत:=परमश्चसौ, ईश्वर:=परमेश्वर: नृप:, तेन, शिरसा, धृत: स्वीकृत: (गग प्रवाहपक्षे=परमेश्वरेण शङ्करेण, शिरसा, धृत: गृहीत) सकलकलागमगम्भीर:=सकला: समस्ता: या: कला: विविधविद्यादि—कला:, तासाम्, आगमनेन प्राप्त्या, गम्भीर: गम्भीरस्वरूपभाव:, (गंगा प्रभाव पक्षे—कलकलेन सहिता सकलकल:, सचासौ आगम: तेन गम्भीर:) विपक्षक्षोभक्षम:=विपक्षा: अरय:, तेषां शत्रूणां क्षोभे दलने, क्षम: दक्ष:, गंगाप्रवाहपक्षे—विगता: पक्षा: येषां ते विपक्षा: पर्वता:, तेषां, क्षोभे दलने, क्षम:, समर्थ:) क्षितितललब्धायति:=क्षितितले भूमण्डले, लब्धा प्राप्ता, आयति: विस्तार:, ख्यातिरित्यर्थ:, येन स: (गंगाप्रवाहपक्षे—आयति: प्रवाहविस्तार:) अस्खलतिप्रवृत्त:=अस्खलति सद् व्यवहरणे त्रुटिं विना, प्रवृत्त: संजात:, (गङ्गाप्रवाहपक्षे—अस्खलतिम्=अप्रतिहतगति:) आश्रितश्रौताऽपि=आश्रितं स्वीकृतं, श्रौतं वेदविहितं कर्म' यै: ते, अनालम्बितालीकबककाकव:=न आलम्बितं न गृहीतम्, अलीकं मिथ्याव्यवहरणं दककाकुशल बककपटं, च यैस्ते, एवम्भूता:, कृतकुक्कुटव्रता:=कृतं स्वीकृतं, कुक्कुटानां व्रतम् अशनं यै: ते, अपि, अवैडालवृत्तय: नास्ति वैडाली वृत्ति: हिंसात्मकाचरणं, येषां ते, अत्र ये कुक्कुटान् अश्नन्ति ते हिंसात्मकाचरणा, कथंनेति विरोध: उद्भवति, तत्परिहार: कुक्कुटव्रतनामकं धर्मशास्त्रस्य एकं विशिष्टं व्रतमस्ति तदाचरन्ति हिंसा च न कुर्वन्ति इति विरोधपरिहार: विवर्जितजनपङ्क्तय:=विवर्जिता: परित्यक्ता:,

जनपंक्तिः सामूहिकभोजनं, यैस्ते, परिहृतं परित्यक्तम् कपटंछद्म कीरकुचीकूर्चा-कृताः परिहृतं परित्यक्तं, कपटं छद्म, कीरकुची च शुक इव व्यर्थप्रलापः च, कूर्चं च केशप्रसाधादिकम् इति कपटकीरकुचीकूर्चाणि, तेषु आकूतं वाञ्छां, यैः ते अगृहीतगह्वराः न गृहीतं कृतं, गह्वरं गहनं कर्म, यैस्ते पापरहिता इति भावः, न्यक्कृतनिकृतयः=न्यक्कृता तिरस्कृता, निकृतिः, धूर्तता, यैस्ते, प्रसन्न-प्रकृतयः=प्रसन्ना आनन्दयुक्ता, प्रकृतिः स्वभावः, येषां ते, निहतविकृतयः= परेषाम् दूरीकृता, विकृतिः, मनोविकारः यैस्ते, परपरीवादपराचीनचेतोवृत्तयः= परेषाम् अन्यजनानां, परीवादे निन्दायां, पराचीना विमुखा, चेतोवृत्तिः मनो-व्यापारः, येषां, ते, वर्णत्रयव्यावृत्तिविशुद्धान्धसः=वर्णत्रयाणां ब्राह्मणक्षत्रिय-वैश्यानां, व्यावृत्या पृथक्स्थित्या, विशुद्धं पवित्रम्, अन्धः अन्नं येषां ते, धीरधिषणावधूताध्येषणाः=धीरागम्भीरा, या धिषणा बुद्धिः तथा, अवधूता न्यक्कृता, अध्येषणा याचना, यैः ते, असङ्कसुकस्वभावा=नास्तिसङ्कसुकः अस्थिरः, चञ्चलः स्वभावः प्रकृतिः, येषां ते प्रणतप्रणयिनः=प्रणतानाम् अभिवादनकर्तॄणां, प्रणयिनः अनुरागिणः असाधारणः ब्राह्मणाः अजायन्त उद्भवन् ।

शब्दार्थ – प्रवर्धमानादिपुरुषजनितात्मचरणोन्नतिनिर्गतप्रघोषः=पूर्व पुरुषों से वृद्धि को प्राप्त कठ आदि वैदिक शाखाओं का अध्ययन करने वाले पुरुषों से सर्वत्र प्रसिद्ध, परमेश्वरधृतः=राजाओं से पूजित, (गंगाप्रवाह के पक्ष में—शंकर जी के द्वारा धारण किया हुआ) सकलकलागमगम्भीरः=समस्त कलाओं के ज्ञान से गम्भीर, (गंगाप्रवाह के पक्ष में कलकलध्वनि से युक्त तथा गम्भीर) विपक्षक्षोभक्षमः=शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ (पक्ष में—पर्वतों को चूर्ण करने में समर्थ) क्षितितलब्धख्यातिः=पृथिवी पर ख्याति प्राप्त, (पक्ष में—पृथिवी पर फैला हुआ) अस्खलितप्रवृत्तः=किसी भूल के बिना आचरण में प्रवृत्त होने वाले, आश्रितश्रौता अपि=वेदिक नियमों का पालन करने वाले होते हुए भी, अनालम्बितालीकबकवृत्तयः=असत्य भाषण और बगुले की तरह कपट व्यवहार करने वाले नहीं थे, कृतकुक्कुटव्रता=धर्म-शास्त्र में वर्णित कुक्कुट व्रत का पालन करने वाले, अवैडालवृत्तयः=हिंसा-चरण न करने वाले, विवर्जितजनपंक्तयः=लोगों की पंक्ति में भोजन न करने वाले, परिहृतकपटकीरकुचीकूर्चाकृताः=जाल प्रपंच धूर्तता और तोते की तरह व्यर्थ प्रलाप, तथा केश संवार करने वाले नहीं थे, अगृहीतगह्वराः=

पापकर्म से दूर रहते वाले, न्यक्कृतनिकृतयः=धूर्तता से अलग रहने वाले, प्रसन्नप्रकृतयः=प्रसन्न स्वभाव वाले, विहतविकृतयः=मनोविकारों को नष्ट करने वाले, परीवादपराचीनचेतोवृत्तयः=दूसरों की निन्दा से विमुख मानसिक व्यापार वाले, वर्णत्रयव्यावृत्तिविशुद्धान्धसः=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से अलग अर्थात् स्वयं पाकी होकर पवित्र भोजन करने वाले, धीरधिषणवधूताध्येषणाः =गम्भीर बुद्धि से याचना को तिरस्कृत करने वाले, अर्थात् किसी से कुछ न माँगने वाले, गम्भीर बुद्धि वाले, असङ्कुसुकस्वभावाः=स्थिर स्वभाव वाले, प्रणतप्रणयिनः=प्रणाम करने वालों से प्रेम करने वाले।

शमितसमस्तशाखान्तरसंशीतयः, उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थ-ग्रन्थयः, कवयः, वाग्मिनः, विमत्सरा, सरसभाषितव्यसनिनः, विदग्धपरिहासवेदिनः, परिचयपेशलाः, नृत्यगीतवादित्रेष्व-बाह्याः, ऐतिह्यस्यावितृष्णाः, सानुक्रोशाः, सर्वातिथयः, सर्वसाधु-संमताः, सर्वसत्त्वसाधारणसौहार्दद्रवार्द्रीकृतहृदयाः, तथा सर्व-गुणोपेता राजसेनानभिभूताः, क्षमाभाज आश्रितनन्दनाः, अनिस्त्रिंशा विद्याधरा, अजडाः, कलावन्तः, आदोषास्तारकाः, अपरोपतापिनो भास्वन्तः, अनुष्माणो हुतभुजः, अकुसृतयो भोगिनः, अस्तम्भाः पुण्यालयाः, अलुप्तक्रतुक्रिया दक्षाः अव्यालाः कामजितः असाधारणा द्विजातयः।

अर्थ—समस्त वैदिक शाखाओं एवं शास्त्रों की शंकाओं को शान्त (समाधान, दूर) करने वाले, समस्त ग्रन्थों के अर्थ रहस्यमयी ग्रन्थि को खोलने वाले, कविता करने वाले, वाग्मी (गम्भीर बोलने वाले) अहंकार रहित, मधुर भाषण करने वाले, चतुर जनों के परिहास को समझने वाले, परिचय करने में कुशल, नृत्य, गाना-बजाना जानने वाले, इतिहास में रुचि रखने वाले, दयालु, सभी अतिथियों का सम्मान करने वाले, सभी सज्जनों के प्रिय, सभी प्राणियों के प्रेम से आर्द्र हृदय वाले सभी प्राणियों से प्रेम करने वाले, और सभी गुणों से युक्त, रजोगुण के प्रभाव से अप्रभावित, क्षमावान्, (तथा क्षमा=

(पृथिवी) पर रहने वाले) आश्रय में रहने वालों का आनन्द देने वाले (तथा नन्दन वन का आश्रय ग्रहण करने वाले) क्रूरता रहित एवं विद्वान्, (खड्ग न धारण करते हुए यक्ष रूप) विद्वान् तथा विविध कलाओं को जानने वाले, दोषों से शून्य तथा लोगों को तारने वाले, दूसरों को न तपाने वाले, सूर्य गर्म न होते हुए अग्नि के समान, कपट-व्यवहारों से रहित, सुखों को भोगने वाले, (कु=पृथ्वी पर, सृति=चलने वाले), भोगिनः=(साँप यह विरुद्ध अर्थ भी भासित होता है अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार समझना चाहिए) पाखण्ड न करने वाले पुण्यात्मा, यज्ञकर्म करने वाले दक्ष रूप, हिंसा न करने वाले, कामदेव को जीतने वाले, असाधारण ब्राह्मण उत्पन्न हुए।

संस्कृत-व्याख्या शमितसमस्तशाखान्तर-संशीतयः=समाप्तिं नीताः समस्तानां सकलानां, शाखान्तराणां वैदिक शाखाद्यन्तर्गतानां, संशीतयः, शंकाः, यैस्ते, उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थग्रन्थयः=उद्घाटिताः स्पष्टीकृताः समग्रग्रन्थानां विविधशास्त्रादिग्रन्थानां, ग्रन्थयः रहस्यमयार्थाः यैस्ते, कवयः काव्यकर्तारः वाग्मिनः संयितभाषिणः, विमत्सराः, निरहंकाराः, सरसभाषित व्यसनिनः सरसभाषणस्वभावाः, विदग्धपरिहासवेदिनः=विदग्धानां निपुणानां, ये, परिहासाः, तान्, विदन्ति जानन्ति, इति—एवम्भूताः परिचयपेशलाः परिचयदक्षाः, ऐतिह्यस्य पौराणिकवृत्तस्य, अवितृष्णाः अतृप्ता, सानुक्रोशाः दयावन्तं, सर्वातिथयः सर्वातिथीन् पूजयन्तः, सर्वसाधुसमताः सर्वसज्जनप्रिया, सर्वसत्त्वसाधारणसौहार्द्रद्रवार्द्रीकृतहृदयाः=सर्वसत्वेषु सकलजीवेषु, सौहार्द्रं स्नेह एव, द्रवः, रसः, तेन आर्द्रं क्लिन्नं, हृदयं चेतः, येषां, ते, सर्वगुणोपेताः सगलगुणयुक्ता राजसेन राजो गुणेन, अनभिभूताः अप्रभाविताः क्षमाभाजः क्षमावन्त, आश्रितनन्दनाः, आश्रितानन्ददायकाः अनिस्त्रिंशाः=अक्रूरस्वभावाः, विद्याधराः विद्वानः, अजडाः=पण्डिताः, कलावन्तः कलाविदः, अदोषाः दोषवर्जिताः, तारकाः उद्धारका, अपरोपतापिनः=परान् तापयन्ति इति परोपतापिनः=अपरोपतापिनः न परपीडाकारिणः, भास्वन्तः सूर्यस्वरूपाः, अनुष्माणः शीतलस्य रूपाः, हुतभुज अग्नितुल्यतेजसः, अकुसृतयः पापकर्मशून्या, भोगिनः सुखभोक्तारः, अस्तम्भाः दम्भशून्याः, पुण्यालयाः पुण्यात्मानः, अलुप्तक्रतुक्रियाः=न लुप्ताः न नष्टाः, क्रतोः यज्ञस्य, क्रियाः कर्माणि, येषां ते, दक्षाः दक्षस्वरूपाः, अम्बालाः अहिंसकाः कामजितः कामवशगाः, कामदेवविजेतारः असाधारणाः असमान्याः द्विजातयः विप्राः, अजायन्त उदभवन्।

शब्दार्थ—शमितसमस्तशाखान्तरसंशीतयः=समस्त वेद एवं शास्त्रों के अन्तर्गत होने वाली शंकाओं का समाधान करने वाले, उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थग्रन्थयः=समस्त ग्रन्थों के अर्थ की ग्रन्थि खोलने वाले, विदग्धपरिहासवेदिनः=चतुर जनों के हास्यपूर्ण वाक्य के अर्थ को समझने वाले अवाह्याः=जानने वाले, ऐतिह्यस्य=इतिहास से सम्बन्धित वृत्त को, अवितृष्णाः=तृप्त न होने वाले, सानुक्रोशाः=दयालु, सर्वसत्वसाधारणसौहार्द्रद्रवार्द्रीकृतहृदयाः=समस्त प्राणियों के प्रेम रूपी जल से आर्द्र (गीले) हृदय वाले। अर्थात् सभी प्राणियों से प्रेम करने वाले, राजसेन=रजोगुण से, अनुभिभूताः=अप्रभावित, क्षमाभाजः=क्षमावान् अथवा क्षमा=पृथिवी पर भाजः=रहने वाले, आश्रितनन्दनाः=आश्रित लोगों को आनन्दित करन वाले अथवा नन्दन वन का आश्रय लेने वाले, अनिस्त्रिशाः=क्रूरतारहित अथवा लवार न धारण करने वाले, विद्याधरा=विद्वान् (अथवा यक्ष), अजडाः=विद्वान्, अदोषः=दोष रहित, तारकाः=उद्धार करने वाले, अपरोपतापिनः=दूसरों को न संताप देने वाले, भास्वन्तः=सूर्य स्वरूप, अकुसृतयः=पाप कर्म रहित (अथवा पृथ्वी पर न चलने वाले), भोगिनः=सुख भोगने वाले, (अथवा साँप) अस्तम्भाः=पाखण्ड रहित, अलुप्तक्रतुक्रियाः=नष्ट नहीं हुई है यज्ञ की क्रिया-कर्म जिनकी वे, अव्यालाः=हिंसा न करने वाले, कामजितः=कामदेव को जीतने वाले।

तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु, संसरति च संसारे, यात्सु युगेषु, अवतीर्णे कलौ, वहत्सु वत्सरेषु, व्रजत्सु वासरेषु, अतिक्रामति च काले प्रसवपरम्पराभिरनवरतमापतति विकाशिनि वात्स्यायनकुले, क्रमेण कुबेरनामा वैनतेय इव गुरुपक्षपातो द्विजो जन्म लेभे। तस्याभवन्नच्युत, ईशानो हरः पाशुपतश्चेति चत्वारो युगारम्भा इव ब्राह्मतेजोजन्यमानप्रजाविस्तारा नारायणबाहुदण्डा इव सच्चक्रनन्दकास्तनयाः। तत्र पाशुपतस्यैक एवाभवद् भूभार इवाचलकुलस्थितिः स्थिरश्चतुरुदधिगम्भीरो ऽर्थपतिरिति नामा समग्रामग्रजन्मचूडामणिर्महात्मा सूनुः।

अर्थ—इस प्रकार उस वात्स्यायन वंश में ब्राह्मण उत्पन्न हुए, संसार रूपी चक्र के (निरन्तर) चलते रहने पर, कलियुग के आने पर, वर्षा के बीतने पर, (दिनों के बीतने पर) और समय के बीतने पर, सन्तान-प्रसव की परम्परा से निरन्तर वात्स्यानन का कुल बढ़ता गया। इस वंश की वृद्धि-परम्परा के क्रम से गुरु में स्नेह करने वाला गरुड के समान कुबेर नामक ब्राह्मण ने जन्म ग्रहण किया। उसे कुबेर के अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो चार युग (सद्युग, द्वापर, त्रेता, कलियुग) के आरम्भ के समान थे, जिनके ब्रह्म तेज से उत्पन्न सन्तान निरन्तर विस्तार को प्राप्त हो गई, जो लड़के विष्णु के हाथों के समान सज्जनों को आनन्द देने वाले हुए, उनमें पाशुपति के ही अर्थपति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कुल मर्यादा को सुदृढ़ रखने वाला, स्थिर चारों सागरों के समान स्वभाव वाला, सम्पूर्ण ब्राह्मणों में श्रेष्ठ एवं महात्मा हुआ।

संस्कृत-व्याख्या—तेषु प्रसिद्धेषु एवं उत्पद्यमानेषु जायमानेषु, ब्राह्मणेषु, संसारे संसार चक्रे, संसरति गच्छति सति यात्सु अतिक्रान्तेषु, युगेषु सतयुगादिषु कलौ कलियुग, अवतीर्णे प्राप्ते सति, वत्सरेषु वर्षेषु, वहत्सु अतिक्रामत्सु वासरेषु दिनेषु व्रजत्सु, गच्छत्सु, च, काले समये, अतिक्रामति व्यतीते सति, प्रसवपरम्पराभिः—प्रसवस्य सन्तानप्रसूतेः, परम्पराभिः प्रवाहैः, अनवरत सततं, विकाशिनि प्रसरणशीले वात्स्यायन कुले एतन्नामके वंशे, आपतति विस्तारंगते सति, क्रमेण वंशपरम्परया, गुरुपक्षपाती गुर्वानुरागी, वैनतेय इव विनता पुत्र इव गरुड इव, कुवेरनामा एतन्नामा, द्विजः विप्रः जन्म लेभे उत्पन्नोऽभवदित्यर्थः तस्य कुबेरस्य, अच्युतः, ईशानः, हरः, पाशुपतश्च इति इमे चत्वारः तनयाः सुता अभवन् वभूवुः ये युगारम्भा इव सद्युगाद्यारम्भा इव ब्राह्मतेजोजन्यमानप्रजाविस्तारा—ब्राह्म ब्रह्मसम्वन्धि, यत् तेजः तेन ब्राह्मतेजसा, जन्यमानः प्रजायाः सन्ततेः, विस्तारः आधिक्यं यैस्ते, एवम्भूताः, ते पुत्राः, नारायणस्य बाहुदण्डा इव—नारायणस्य विष्णोः बाहवः हस्ता एव दण्डाः तद्वदिव सच्चक्रनन्दकाः सतां सज्जनां चक्रं समूहः तस्य नन्दकाः आनन्ददायिनः, अभवन्। तत्र तेषु पाशुपतस्य एतन्नाम्नः पुत्रस्य, एक एव, अचलकुलस्थितिः—अचला सुदृढा, कुलस्य वंशस्य, स्थितिः प्रतिष्ठा, यस्य सः, समग्राग्रजन्मचूडामणिः—समग्राः सकलाः, अग्रजन्मानः द्विजाः तेषां, चक्र निकरः, तस्मिन् चूडामणिः श्रेष्ठः, स्थिर,

दृढमतिः चतुरुदधिगम्भीरः चतुर्णाम् उदधीनां सागराणाम् इव, गम्भीरः गम्भीर-स्वभावः, नाम्नां अभिधेयेन, अर्थपतिः इति, प्रसिद्धः महात्मा सूनुः पुत्रः अभवत्।

शब्दार्थ-संसरति=सरकने पर, चलने पर, यात्सु=बीतने पर, ब्राह्मतेजोजन्यमानप्रजाविस्तारा=ब्रह्म सम्बन्धी तेज से उत्पन्न होने वाली सन्तान चारों दिशाओं में फैल गई, सच्चक्रनन्दकाः=सज्जनों के समूह को आनन्द देने वाले, अचल-कुलस्थितिः=कुल-परम्परा की मर्यादा को दृढ़ रखने वाला, स्थिरः=स्थिर बुद्धि, चतुरुदधिगम्भीरः=चारों समुद्रों में समान गम्भीर स्वभाव वाला, समग्राग्रजन्मचक्रचूणामणिः=सम्पूर्ण ब्राह्मणों के समूह में सर्वश्रेष्ठ, पाशुपतस्य पशुपति के, अर्थपति=अर्थपति नामक एक एव=एक ही, सूनुः=पुत्र, अभवत्=हुआ।

सोऽजनयद्भृगुं हंसं शूचिं कविं महीदत्तं धर्मं जातवेदसं चित्रभानुं त्र्यक्षमहिदत्तं विश्वरूपं चेत्येकादश रुद्रानिव सोमामृतरसशीकरच्छुरितमुखान्पवित्रान्पुत्रान्। अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्। स बाल एव बलवतो विधेर्वशादुपसंपन्नया व्ययुज्यत जनन्या। जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्। अवर्धत च तेनाधिकतरमाधीयमानधृतिर्धाम्नि निजे।

अर्थ—उस अर्थपति ने एकादश रुद्रों के समान सोमरस के कणों से सिक्त मुंह वाले तथा पवित्र ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया जिनके नाम (१) भृगु, (२) हंस, (३) शुचि, (४) कवि, (५) महीदत्त, (६) धर्म, (७) जातवेदस, (८) चित्रभानु, (९) त्र्यक्ष, (१०) अहिदत्त और (११) विश्वरूप हुए। उन एकादश पुत्रों के मध्य में चित्रभानु ने राजदेवी नामक ब्राह्मणी में बाण नामक पुत्र को प्राप्त किया अर्थात् जन्म दिया, बलवान भाग्य की विपरीतता वश वह बालक बाण बाल्यकाल में ही माता से वियुक्त हो गया अर्थात् बाल्यकाल में ही माता का देहावसान हो गया, पुत्र-प्रेम से युक्त पिता ने ही इस बालक का माता की तरह पालन-पोषण किया, वह बालक अपने घर में ही धीरतापूर्वक रहते हुए बढ़ने लगा।

संस्कृत-व्याख्या—सः अर्थपतिः, रुद्रान् इव, सोमामृतरसशीकरच्छुरितमुखान् =सोमस्य सोमलतायाः, यः अमृतरसः, तस्य सोमाऽमृतस्य, शीकरैः कणैः छुरितानिव्याप्तानि मुखानि आननानि येषां ते तान् पवित्रान् पूतान्, एकादश, पुत्रान् सुतान्, अजनयत् अजनि, (तेषां नामानीमानिसन्ति) भृगुः, हंसः, शुचिः कविः महीदत्तः धर्मः जातवेदसः चित्रभानुः यक्षः, अहिदत्तः, विश्वरूपश्च इत्य-भवन् तेषां एकादशानां, मध्ये चित्रभानुः, राजदेव्यभिधानायां राजदेवीति ना-म्न्यां ब्राह्मण्यां द्विजायाम् । बाणम् एतन्नामानं, आत्मजं पुत्रम् अलभत प्राप । बलवतः महाप्रभावतः विधेः भागयस्य, वशात् कारणात् । सः बाणः, बाल एव उपसन्नया दिवंगतयाऽजनन्या मात्रा, व्ययुज्यत विराहितोऽभवत् । जातस्नेहः =जातः उत्पन्नः, स्नेहः अनुरागः, यस्य सः, एवम्भूतः पिता चित्रभानुः एव अस्य बाणनाम्नः शिशोः, नितरां यथास्यात्तथा, अत्यन्तं, मातृतम् मातृवत् पालनादिकम् अकरोत् चकार, च, आधीयमानधृति=आधीयमाना सधार्यमाणा, धृतिः यस्य सः, निजे स्वकीये, धाम्नि=भवने, तेन, अधिकतरम अवर्धत वृद्धिमलभत ।

शब्दार्थ—सोमामृतरसशीकरच्छुरितमुखान्=सोमलता के अमृत रस के कणों से व्याप्त मुख वाले, रुद्रानिव=रुद्रों के समान, पवित्रान्= पवित्र, पुत्रान्=पुत्रों को, अजनयत्=उत्पन्न किया । उपसन्नया=मृत्यु को प्राप्त हुई जनन्या=माता से, व्युज्यत=वियुक्त हो गया, जातस्नेहः=उत्पन्न हो गया है प्रेम जिसको ऐसा वह पिता, मातृतां=माता की तरह पालन-पोषण किया । आधीयमानधृति=धैर्यधारणपूर्वकः, निजे=अपने, धाम्नि=घर में, अवर्धत=वढ़ने लगा ।

कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य ससावृत्तस्य चास्य चतुर्दश-वर्षदेशीयस्य पितापि श्रुतिस्मृतिविहितं कृत्वा द्विजजनोचित निखिलं पुण्यजातं कालेनादशमीस्थ एवास्तमगमत । संस्थिते च पितरी महता शोकेनाभीलमनुप्राप्तो दिवानिशं दह्यमान-हृदयः कथं कथमपि कतिपयान्दिवसानात्मगृह एवानैषीत् । गते च विरलतां शोके शनैः शनैरविनयनिदानतया स्वातन्त्र-

यस्य, कुतूहलबहुलतया च बालभावस्य, धैर्यप्रतिपक्षतया च यौवनारम्भस्य, शैशवोचितान्यनेकानि चापलान्याचरन्नित्वरो बभूव।

अर्थ—ब्राह्मण वंश के अनुरूप वेद-विधि के अनुसार बाण के यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के होने पर समावर्तन संस्कार भी हो गया था। बाण की आयु चौदह वर्ष की नहीं हो पाई थी कि बाण के पिता भी अल्पायु की अवस्था में अर्थात् पूर्ण आयु प्राप्त न करने से पहिले ही समाप्त (दिवंगत) हो गये। पिता के स्वर्ग चले जाने पर बड़े शोक के साथ महान् कष्ट को प्राप्त हुए। दिन रात (पिता के निधन जन्य शोकाग्नि) से दग्ध हृदय बाण ने किसी प्रकार दिनों को अपने घर पर ही व्यतीत किया। धीरे-धीरे-पितृ-मरण जन्य शोक के कम होने पर स्वतन्त्रता के कारण उनकी अनुशासनहीनता अर्थात् उद्दण्डता बढ़ गई, बचपन में स्वभाव से ही अनेक कुतूहल पैदा हो जाते हैं, युवावस्था के प्रारम्भ होते ही धैर्य नष्ट हो जाता है, अतः बालपन के अनुकूल अनेक चञ्चलतापूर्ण कार्यों को करते हुये बाण स्वेच्छाचारी (आवारा) हो गये।

संस्कृत-व्याख्या–कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य– कृतेः, उपनयनादीनां यज्ञोपवीतादीनां क्रियाणाम् संस्काराणां, कलापः समूहः यस्य सः तया समावृत्तस्य कृतसमावर्त्तनसंस्कारस्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य, अस्य बाणस्य, पिताऽपि जनकोऽपि, श्रुतिस्मृतिविहितं=श्रुतिषु वेदेषु, स्मृतिषु स्मृतिशास्त्रेषु, विहितं प्रतिपादितं, कर्म, द्विजजनोचितं विप्रोचितं, निखिलं सम्पूर्णं, पुण्यजातं संस्कारादिकं पवित्रं कर्म कृत्वा, कालेन मृत्युना, अदशमीस्थ एव=वृद्धावस्थाम् अप्राप्त एव, अस्तं समाप्तिं. मृत्युम्, अगमत्=प्राप्नोत। च पितरि जनके, संस्थिते दिवंगतेसति, महता, शोकेन, आमीलनं दैन्यं, कष्टम्, अनुप्राप्तः, दिवानिशं दिनरात्रं, दह्यमानहृदयः=दह्यमानं पितृशोकाग्निनादग्धं हृदयं चेतः, यस्य सः कथं कथमपि केनापि प्रकारेण, कतिपयान्, दिवसान् दिनानि, आत्मगृह एव, स्वभवन एव, अनैषीत् अयापयत्। शनैः शनैः क्रमशः, शोके कष्टे, विरलतां गते स्वल्पीभूते, स्वातंत्र्यस्य स्वच्छन्दाचरणस्य हेतोः, अविनयनिदानतया=अविनयस्य उद्दण्डतायाः, निदानं कारणं, तस्य भावस्तत्ता, बालभावस्य शैशवस्य (कारणात्) कुतूहलबहुलतया कौतुकाधिक्यात्, यौवनारम्भस्य तारुण्यारम्भस्य, धैर्यप्रतिपक्ष-

तया, धैर्यविरोधितया, शैशवोचितानि बालसुलभानि, अनेकानि बहूनि, चापलानि चञ्चलतापूर्णकर्माणि आचरन्, कुर्वन्, इत्वरः स्वेच्छाचारी, बभूव, अभवत् ।

शब्दार्थ – कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य=किया गया है यज्ञोपवीत आदि क्रियाकलाप जिसका उसके, श्रुतिस्मृति विहितं=वेद और स्मृति शास्त्रों में प्रतिपादित कर्म, आदशमीस्थः=वृद्धावस्था को न प्राप्त हुए, संस्थिते=मर जाने पर, आमीलनं=दैन्यं, कष्टं, अनैषीत्=विताया, विरलतांगते=कम होने पर, धैर्यप्रतिपक्षतया=धीरज का विरोधी होने के कारण, इत्वरः=स्वेच्छाचारी (आवारा) बभूव=हो गया ।

अभवंश्चास्य सवयसः समानाः सुहृदः सहायाश्च । तथा च । भ्रातरौ पारशवौ चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरीशानः परं मित्रम्, प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ, विद्वांसौ वारबाणवासबाणौ, वर्णकविर्वेणीभारतः प्राकृतकृत्कुलपुत्रो वायुविकारः, बन्दिनावनङ्गबाणसूचीबाणौ, कात्यायनिका चक्रवाकिका, जांगुलिको मयूरकः, ताम्बूलदायकश्चण्डकः, भिषक्पुत्रो मन्दारकः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः, कलादश्चामीकरः, हैरिकः सिन्धुषेणः, लेखको गोविन्दकः, चित्रकृद्वीरवर्मा, पुस्तकृत्कुमारदत्तः, मार्दङ्गिको जीमूतः, गायनौ सोमिलग्रहादित्यौ, सैरन्ध्री कुरङ्गिका वांशिकौ मधुकरपारावतौ, गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः संवाहिका केरलिका, लासकयुवा ताण्डविकः, आक्षिक आखण्डलः, कितवो भीमकः, शैलालियुवा शिखण्डक, नर्तकी हरिणिका, पाराशरी सुमतिः, क्षपणको वीरदेवः, कथको जयसेनः, शैवो वक्रघोणः, मन्त्रसाधकः करालः, असुरविवरव्यसनी लोहिताक्षः, धातुवादविद्विहंगमः, दार्दुरिको दामोदरः, ऐन्द्रजालिकश्चकोराक्षः, मस्करी ताम्रचूडकः । स एभिरन्यैश्चानुगम्यमानो बालतया निघ्नतामुप-

गतो देशान्तरावलोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः सत्स्वपि पितृपितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु सति चाविच्छिन्ने विद्याप्रसंगे गृहान्निरगात्। अगाच्च निरवग्रहो ग्रहवानिव नवयौवनेन स्वैरिणा मनसा महतामुपहास्यताम्।

अर्थ—इस बाण के समान आयु वाले, समान स्वेच्छाचारी अनेक मित्र सहायक बन गये, जिन मित्रों के नाम इस प्रकार हैं—(१) चन्द्रसेन, (२) मातृषेण, ये दोनों मित्र शूद्रा में उत्पन्न ब्राह्मण पुत्र थे, भाषाकवि (३) ईशान (बाण का) परम मित्र था, (४) रूद्र और (५) नारायण बड़े प्रेमी थे, (६) बारबाण और (७) वासबाण ये दो विद्वान् वर्ण कवि, (८) वेणीभारत, प्राकृत में रचना करने वाला, उच्चकुलोत्पन्न, (९) वायुविकार, बन्दीकुल में उत्पन्न, (१०) अनंगबाण, (११) सूचीवाण, कात्यायनिका (बौद्धसन्यासिनी) (१२) चक्रवाकिका, जांगुलिक (विषवैद्य अथवा सर्पविषवैद्य), (१३) मयूरक, पान देने वाला, (१४) चण्डक, भिषकपुत्र अर्थात् वैद्य का लड़का, (१५) मन्दारक, पुस्तक पढ़ने वाला, (१६) सुदृष्टि, सोने को काटने वाला सुनार, (१७) चामीकर, सुनारों का अधिपति अथवा हीरा काटने वाला, (१८) सिन्धुषण (जौहरी) लिखने वाला (क्लर्क), (१९) गोविन्दक, चित्र बनाने वाला. (२०) वीरवर्मा, मिट्टी के खिलौने बनाने वाला, (२१) कुमारदत्त, मृदंग बजाने वाला, (२२) जीमूत, गाने वाला, (२३) सोमिल और (२४) ग्रहादित्य (२५) सैरन्ध्री, (केश प्रसाधन आदि का कार्य करने वाली), (२६) करंगिका, (२७) वंशी बजाने वाली, (२८) मधुकर, (२९) पारावत, गान्धर्वोपाध्याय, (३०) दर्दुरक, पैर दबाने वाली, (३१) केरलिका, नृत्य करने वाली, (३२) ताण्डविका, जुवा खेलने वाला, (३३) शिखण्डक, नृत्य करने वाला, (३४) हरिणिका, सन्यासी, (३५) सुमित, जैन महात्मा, (३६) वीरदेव, कथावाचक, (३७) जयसेन शैवमत को मानने वाला, (३८) वक्रघोण, मंत्र सिद्ध करने वाला, (३९) कराल, पाताल में प्रवेश कर यक्ष राक्षसों को सिद्ध करने वाला, (४०) लोहिताक्ष, रसायन बनाने में चतुर, (४१) विहंगम, दर्दुर नामक घटवाद्य बजाने वाला (४२) दामोदर, इन्द्रजाल विद्या को जानने वाला (४३) चकोराक्ष मस्करी (परिव्राजक महात्मा) (४४) ताम्रचूड। ये चवालिस बाण के मित्र एवं सहायक थे। ये

मित्र तथा कुछ अन्य लोगों के द्वारा अनुगमन किए जाते हुए वाण वाल स्वभाव के कारण अपने को अपने इन मित्र के ऊपर डाल रखा था अर्थात् मित्रों के कथनानुसार व्यवहार करते थे। वाण के हृदय में देश देशान्तरों को देखने की बड़ी तीव्र इच्छा थी। यद्यपि पिता एवं बावा आदि के द्वारा अर्जित ब्राह्मण वंश के अनुरूप धनसम्पत्ति भी थी—तथा—निरन्तर विद्या (विविध शास्त्र आदि सम्बन्धी शास्त्रार्थ) का प्रसंग भी प्राप्त था फिर घर से निकल पड़े, जिस प्रकार किसी व्यक्ति पर भूत-प्रेत आदि ग्रह वाधा सवार हो जाती है उस व्यक्ति के समान स्वतन्त्र आचरण करने लगे जिससे बड़े बड़े लोगों के लिए भी वाण उपहास का पात्र बने अर्थात् सब बड़े लोग वाण की हँसी उड़ाने लगे।

संस्कृत-व्याख्या—अस्य: वाणस्य, सवयसः=समानं तुल्यं, वयः आयुः येषां, ते, समवयस्काः इत्यर्थः, समानाः तुल्यव्यवहाराः, सुहृदः मित्राणि, च अभवन् बभूवुः, तथा च, पारशवौ शूद्रायां संजातौ, चन्द्रसेनमातृषेणौ एतन्नामानौ भ्रातरौ बान्धवौ, भाषा कविः, ईशानः एतन्नाम्नाः, परं, मित्रं सखा, रुद्रनारायणौ= रुद्रश्च नारायणश्चेति नामानौ द्वौ, प्रणयिनौ अनुरागिणौ आस्ताम्, विद्वांसौ पण्डितौ, वारवाणवासवाणौ एतन्नामानौ, वर्णकविः, वेणीभारतः एतन्नामकः, प्राकृतकृत् प्राकृतकारः, कुलपुत्रः कुलीनः, वायुविकारः एतन्नामकः, बन्दिनौ बन्दिकुलोत्पन्नौ, अनङ्गबाणसूचीबाणौ=एतन्नामानौ, कात्यायनिका बौद्धसन्या- सिनी, चक्रवाकिका एतन्नाम्नी, जांगुलिकः विषवैद्यः, सर्पविषवैद्यो वा, मयूरकः एतन्नामकः, ताम्बूलदायकः ताम्बूलार्पकः, चण्डकः एतन्नामा, सखा, भिषक्पुत्रः वैद्यपुत्रः, मन्दारकः एतन्नामकः, पुस्तकवाचकः, सुदृष्टिः एतन्नामकः, कलादः= कलं स्वर्णकलिकाम् आद्यति आखण्डयति, चामीकरः एतन्नामा, हैरिकः रत्न- परीक्षकः, सिन्धुषेणः एतन्नामकः, लेखकः, कोविन्दकः एतन्नामा, चित्रकृत् चित्र- कारः वीरवर्मा एतन्नामकः, पुस्तकृत् मृत्तिका क्रीडनकविधायकः, कुमारदत्तः एतन्नामकः, मार्दङ्गिकः मृदङ्गवादकः, जीमूतः एतन्नामकः, गायनौ गायनकला- दक्षौ, सोमिलग्रहादित्यौ एतन्नामकौ, सैरन्ध्री केशप्रसाधिका, कुरङ्गिका एत- न्नाम्नी, वांशिकौ वंशीवादकौ, मधुकरपारावतौ एतन्नामानौ, गान्धर्वोपाध्यायः संगीतोपाध्यायः, दर्दुरकः एतन्नामकः, संवाहिका सम्वाहनकर्त्री, केरलिका एतन्नामनी लासकयुवा नृत्यनिपुणः ताण्डविकः एतन्नामा, आक्षिकः द्यूतक्रीडकः, आखण्डलः, एतन्नामकः, कितवः धूर्तः, भीमकः एतन्नामकः, शैलालियुवा नटः,

शिखण्डकः एतन्नामकः, नर्तकी नृत्यकर्त्री, हरिणिका एतन्नाम्नीः पाराशरी सन्यासी, सुमतिः एतन्नामक क्षपणकः जैनसाधुः, वीरदेवः एतन्नामकः, कथकः कथावाचकः, जयसेनः एतन्नामाः, शैवः शैवमतावलम्वी, वक्रघोणः एतन्नामकः, मन्त्रसाधकः, मन्त्रसिद्धिकर्त्ता, करालः एतन्नामकः, असुरविवरव्यसनी=असुरस्य बलेः राक्षसस्य, विवरे पाताले, व्यसनं तदस्ति अस्य इति पातालगमनपरिचितः, लोहिताक्षः एतन्नामकः, धातुवादवित् रसायनशास्त्रज्ञः, विहंगमः एतन्नामक, दार्दुरिकः दर्दुरवाद्यस्य वादकः, दामोदरः एतन्नामकः, ऐन्द्रजालिकः, इन्द्रजालकलाः विशारदः, चकोराक्षः एतन्नामकः, मस्करी परिव्राजकः, ताम्रचूडकः एतन्नामकः सभिः उपर्युक्तैः मित्रैः, अन्यैश्च अपरैश्च मित्रैः, अनुगम्यमानः अनुस्रियमाणः, बालतया बालस्वभावतया, निघ्नतां परवशताम्, उपगतः प्राप्तः बभूव, देशान्तरावलोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः=देशान्तराणाम्, अवलोकनस्य कौतुकेन आक्षिप्तं हृदयं यस्य सः पितृपितामहोपात्तेषु=पितॄणां पितामहानां, च, उपात्तेषु अर्जितेषु, ब्राह्मणजनोचितेषु, विभवेषु सम्पत्तिषु सत्स्वपि विद्यमानेष्वपि, च, अविच्छिन्ने नैरन्तर्येण, विद्याप्रसङ्गे विविधविद्या-सम्बन्धिशास्त्रार्थकाव्यादिरचनं-प्रसङ्गे, सति विद्यमाने, (अपि) गृहात् भावनात् प्रीतिकूटात् इत्यर्थः, निरगात् निरगच्छत् । निरवग्रहः स्वेच्छाचरणः, ग्रहगृहीत इव, स्वैरिणा स्वेच्छाचारिणा, मन सा हृदयेन, नवयौवनेन नूतनतारुण्येन, च, महताम् वयोवृद्धानाम उपहास्यताम् हास्यविषयताम्, अगात् प्राप ।

शब्दार्थ—पारशवौ =(माता) शूद्रा में उत्पन्न, अर्थात् शूद्रा और ब्राह्मण से उत्पन्न, प्रणयिनौ=प्रेम करने वाले, जांगुलिकः=विषविद्या जानने वाले अथवा साँप के विष को दूर करने में समर्थ, कलादः=कलं=सुवर्ण, आद्यति=काटने (टुकड़े करने) वाले, अर्थात् स्वर्णकार, हैरिक=रत्न, पारखी (जौहरी), पुस्तकृत्=मिट्टी के खिलौने बनाने वाला, मार्दङ्गिकः=मृदंग बजाने वाला, सैरन्ध्री=बाल आदि प्रसाधन (कंघा करने वाली), वांशिकौ=मुरली (वंशी) बजाने वाले, गान्धर्वोपाध्यायः=संगीत विद्या को, संवाहिकाः=पैर दबाने वाली, लासकयुवा=नृत्य करने वाला युवक, आक्षिकः=द्यूत पाश को फेंकने वाला अर्थात् जुआ खेलने वाला, कितवः=धूर्त्त, शैलालियुवा=नट, (अभिनय करने वाला), पाराशरी=भिक्षु, क्षपणकः=जैनी महात्मा, कथकः=कथा बाचने वाला, असुरविवरव्यसनी=पाताललोक में प्रवेश करने वाला,

धातुवादवित्=धातुशोधन आदि रसायन शास्त्र का ज्ञाता, **दार्दुरिक**=दर्दुर नामक बाजे को बजाने वाला, **मस्करी**=संन्यासी, **निघ्नतां**=पराधीनता को, **उपगतः**=प्राप्त हो गया, **देशान्तरावलोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः**=देश, देशान्तरों को देखने की उत्कण्ठा से आकृष्ट हृदय वाला, **पितृपितामहोपात्तेषु**=पिता एवं दादा (बाबा) आदि के द्वारा अर्जित किये हुए, **विभवेषु**=धन-सम्पत्ति के, **सत्स्वपि**=होने पर भी, **अविच्छिन्ने**=निरन्तर, सदा, प्रतिदिन, **विद्याप्रसङ्गे**= विद्या अर्थात् शास्त्रार्थ काव्य-रचना आदि के वातावरण के, **सति**=होने पर, **गृहात्**=घर से, प्रीतिकूट नामक अपने गाँव से, **निरगात्**=निकल गया, **निरवग्रह**=स्वेच्छापूर्वक आचरण करने वाला, **ग्रहवानिव**=भूत, प्रेत, आदि ग्रहों से सवार (आक्रान्त) पुरुष के समान, **स्वैरिणा**=स्वतन्त्र आचरण करने वाले, **महतां**=बड़े लोगों के लिए, **उपहास्यताम्**=हँसी का पात्र, **अगात्**= हो गया।

अथ शनैः शनैरत्युदारव्यवहृतिमनीहृन्ति बृहन्ति राजकुलानि वीक्षमाणः, निरवद्यविद्योतितानि गुरुकुलानि च सेवमानः, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीश्चोपतिष्ठमानः स्वभावगम्भीरधीधनानि विदग्धमण्डलानि च गाहमानः, पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत्। महतश्च कालात्तमेव भूयो वात्स्यायनवंशाश्रममात्मनो जन्मभुवं ब्राह्मणाधिवासमगमत्। तत्र च चिरदर्शनादभिनवीभूतस्नेहसद्भावैः ससंस्तवप्रकटिज्ञातेयैराप्तैरुत्सवदिवस इवानान्दिताभिगमनो बालमित्रमण्डलमध्यगतो सुखमोक्षमिवान्वभवत्।

अर्थ—इसके बाद बाण धीरे-धीरे (क्रमशः) उदार व्यवहारों से मन को हरण करने वाले बड़े-बड़े राजवंशों को देखता हुआ और श्रेष्ठ एवम् उत्तम विद्या से अलंकृत गुरुकुलों की सेवा करता हुआ, बड़े-बड़े मूल्यवान् वार्तालापों से गम्भीर गुणों से युक्त गोष्ठियों में सम्मिलित होता हुआ, स्वभाव से गम्भीर बुद्धि रूपी धन से युक्त विद्वानों के समूह में रहता हुआ फिर अपने वंश के

अनुरूप प्रख्यात विद्वत् भाव की प्राप्त हो गया अर्थात् गम्भीर विद्वान् हुआ। बहुत समय के बाद फिर बाण स्वयम् अपने जन्मस्थान वात्स्यायन वंश में उत्पन्न ब्राह्मणों के आवास स्थान अर्थात् प्रीतिकूट नामक गाँव में आ गया। बहुत दिनों के बाद बाण के दर्शन से नवीन हो गया है प्रेमभाव तथा सद्भाव जिनका ऐसे विश्वासपात्र परिचय प्रकटित करने वाले मित्रों के मध्य में स्थित उत्सव के दिन के समान अपने आगमन से (बन्धुओं तथा मित्रों को) आनन्दित करता हुआ बाण ने मानो मोक्ष-प्राप्ति के सुख का अनुभव प्राप्त किया अर्थात् बाण बहुत दिनों के बाद अपने जन्मस्थान में आकर बाल मित्रों एवं बन्धुओं से परिचय प्राप्त कर परमानन्द का अनुभव करने लगा।

संस्कृत-व्याख्या — अथ अनन्तरं, शनैः शनैः क्रमशः, मन्दं-मन्दं, अत्युदार-व्यवहृतिमनोहृन्ति=अति उदाराः, याः व्यवहृतयः व्यवहारा, शिष्टाचरणानि, ताभिः मनः हृदयं, हरन्तीति मनोहृन्ति मनोहराणि, महन्तिवृहन्ति, राजकुलानि राजवंशान्, वीक्षमाणः संपश्यन्, निरवद्यविद्यावद्योतितानि=निरवद्याः उत्तमाः प्रशंसनीयाः, याः, विद्याः, ताभिः, विद्योतितानि भास्वन्ति, देदीप्यमानानि, अलङ्कृतानीत्यर्थः, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीः=महार्हाः अतिश्रेष्ठाः, ये, अलापाः वादविवादादयः, शास्त्रचर्चाः, तैः, गम्भीराणां, गुणवतां, महापुरुषाणाम्, गोष्ठीः सभाः, उपतिष्ठमानः सादरं सेवमानः, स्वभावगम्भीरधीधनानि=स्वभावेन प्रकृत्या, गम्भीरा, या, धीः मतिः, सा एव धनं येषां तानि, विदग्धमण्डलानि=विदग्धानां दक्षपुरुषाणां, विदुषामित्यर्थः, मण्डलानि समूहाः, गाहमानः सेवमानः, वैपश्चितीं विद्वज्जनानुरूपाम्, आत्मवंशोचिताम् वात्स्यायनकुलानुरूपाम्, तामेव विश्वप्रख्यातामेव, प्रकृतिं स्वभावम्, अभजत् प्राप। महत. कालात् चिरकालात्, भूयः पुनः, आत्मना स्वयम्, तमेव प्रख्यातामेव वात्स्यायनवंश'-श्रमं=प्रीतिकूटनामकं ग्रामम्, जन्मभुवं जन्मस्थानं, ब्राह्मणाधिवासं ब्राह्मणानाम् वात्स्यायनकुलोत्पन्नानां द्विजानाम्, अधिवासं निवासस्थानं प्रीतिकूटमित्यर्थः, अगमत् ययौ, च, तत्र प्रीतिकूटनाम्नि ग्रामे, चिरदर्शनात् चिरकालोवलोकनात्, अभिनवी भूतस्नेहसद्भावैः=अभिनवभूतौ नूतनतां प्राप्तौ, स्नेहः च सतां भावः सद्भावः च—स्नेहसद्भावौ, येषां ते तैः, ससंस्तवप्रकटितज्ञातेयैः=ससंस्तवं परिचयसहितं, प्रकटितं प्रदर्शितं, ज्ञातेयं बन्धुता, यैः ते तैः, एवंभूतैः, आप्तैः विश्वासपात्रैः, बन्धुभिः मित्रैः च, आनन्दाभिगमनः=आनन्दितम् आनन्दीकृतम्,

अभिगमनम् आगमनं, यस्य सः एतादृशः, बालमित्रमण्डलमध्यगतः=बालानां बाल्यकालीनानां, मित्राणां सुहृदाम्, मण्डलं समूहः, तस्य मध्ये, गतः स्थितः, प्राप्तः, उत्सवदिवस इव, मोक्षसुखम् मोक्षानन्दम्, इव, अन्वभवत् अनुभवस्तिम।

शब्दार्थ—अत्युदारव्यवहृतिमनोहृन्ति=अत्यन्त उदार व्यवहारों से मन को हरण कने वाले, बृहन्ति=बड़े-बड़े, वीक्षमाणः=देखता हुआ. निरवद्यविद्यावद्योतितानि=उद्यम एवं प्रशंसनीय विधाओं से सुशोभित, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीः=अत्यन्त मूल्यवान् वार्तालापों से गम्भीर गुणों से युक्त विद्वानों की गोष्ठियों की, उपतिष्ठमानः=सेवा करता हुआ, स्वभावगम्भीरधीधनानि=स्वभाव से गम्भीर बुद्धिरूपी धन से युक्त, विदग्धमण्डलानि=चतुर एवं विद्वानों के समूह की, गाहमानः=सेवा करता हुआ, वैपश्चितीं=विद्वानों से सम्बन्धित अथवा विद्वानों के अनुरूप, आत्मवंशोचिताम्=अपने वात्स्यायन वंश के अनुरूप, जन्मभुवं=जन्मस्थान को, ब्राह्मणाधिवासं=ब्राह्मणों के निवास स्थान प्रीतिकूट को, अभिनवीभूतस्नेहसद्भावैः=नवीन हो गया है प्रेम और सद्भाव जिनके ऐसे मित्रों से, ससंस्तवप्रकटितज्ञातेयैः=परिचय प्रकटित करने वाले बन्धुओं के द्वारा, आनन्दिताभिगमनः=आगमन से प्रसन्न करने वाला, बालमित्रमण्डलमध्यगतः=बचपन के मित्रों के मध्य में स्थित (रहते हुए), उत्सवदिवस इव=उत्सव के दिन समान।

(श्री बाणभट्टविरचित हर्षचरितस्य प्रथमोच्छ्वासस्य सीतापुर मण्डलान्तर्गत चतुरैया ग्राम निवासिना चुन्नीलालशुक्लेन सम्पादिता व्याख्या समाप्ता)

— ——

परिशिष्ट

हर्षचरित (प्रथमोच्छ्वास) की सूक्तियाँ

(१) कोकिला इव जायन्तेवाचालाः कामचारिणः—

प्रायः संसार में देखा जाता है कि राग एवं द्वेष की भावनाओं से ग्रसित वाचाल (वहुत वोलने वाले) तथा स्वेच्छाचरण करने वाले कुकवि लोग कोयल के समान उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् कोयल के समान व्यर्थ वहुत बकवास करते रहते हैं।

(२) अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते—

सहृदय एवं सज्जन उत्तम कवियों के मध्य अप्रसिद्ध एवं कुकवि गण शब्दों का परिवर्तन करने एवं रचना के लक्षणों को छिपाने से पहचान लिया जाता है। इसमें कुकवियों को चोर कहा गया है। जिस प्रकार चोर केवल मुख आदि की कान्ति की मलीनता से पहचान लिया है। उसी प्रकार उत्तम कवियों के भाव आदि की चोरी करने वाला कवि वर्णों को परिवर्तन करके वर्णन करने आदि पर पहचान लिया जाता है।

(३) विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः—

जिस प्रकार राजा सातवाहन ने विशुद्ध जाति के रत्नों से युक्त एक उत्तम कोश (खजाना) बनाया था। उसी प्रकार भट्टार-हरिश्चन्द्र ने ओज प्रसाद आदि गुणों से अलंकृत सुभाषितों से सुशोभित "कोश" नामक काव्य की रचना की थी।

(४) निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

नवीन विकसित मधुर एवं सरस पुष्पमञ्जरी के समान कालिदास की सुरस एवं मधुर सूक्तियों से किसको आनन्द नहीं प्राप्त होता अर्थात् जिस प्रकार नवीन विकसित मञ्जरी को देखकर सभी लोग आनन्द को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार कालिदास की सरस एवं मधुर सूक्तियों को पढ़कर अथवा सुनकर सभी सहृदय लोक आनन्द-विभोर हो जाते हैं।

(५) हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ।

जिस प्रकार भगवान शंकर की लीला कामदेव के भस्म करने और हिमालय-पुत्री पार्वती के शृंगार करने आदि विरोधी बातों से युक्त होने पर भी किसको आश्चर्यचकित नहीं करती है । अपितु सभी को आश्चर्ययुक्त बना देती है । उसी प्रकार काम को प्रकटित करने वाली पार्वती की आराधना आदि से युक्त गुणाढ्यकृत बृहत्कथा किसको आश्चर्ययुक्त नहीं करती अर्थात् सभी सहृदय को आश्चर्ययुक्त कर रही है ।

(६) अभूमिरेषा शापस्य ।

शाप देने के लिये तैयार दुर्वासा से देवताओं ने कहा कि हे भगवन् ऋषे ! यह सरस्वती शाप के योग्य नहीं है । इस प्रकार देवताओं के प्रार्थना किये जाते हुए भी (दुर्वासा ने सरस्वती को शाप दे दिया) इस सरस्वती की श्रेष्ठता स्वयम् अभिव्यक्त हो रही है । वह शाप से नहीं अर्थात् विशुद्ध सर्वगुणों से युक्त महनीय है ।

(७) असंस्कृतमतयोऽपि जात्यैव द्विजन्मानो माननीयाः ।

दुर्वासा के द्वारा सरस्वती को शाप दिये जाने पर दुर्वासा को सावित्री प्रतिशाप देने को उद्यत हुई तो सरस्वती ने सावित्री को यह कहकर रोका कि हे सखि ! सावित्री ! क्रोध के वेग को रोको, क्योंकि संस्काररहित बुद्धि वाले अर्थात् मूर्ख ब्राह्मण भी जाति के कारण आदरणीय होते हैं । अतः उन्हें अपराध करने पर भी शाप नहीं देना चाहिये ।

(८) उद्दामप्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं हि रजः कलुषयति दृष्टिमनक्षजिताम् ।

दुर्वासा के द्वारा सरस्वती को शाप दिये जाने के बाद ब्रह्मा जी ने दुर्वासा से कहा कि हे ब्रह्मन् आपने जिस मार्ग का आश्रय लिया है वह सज्जन पुरुषों के लिये योग्य एवम् आचरणीय नहीं है क्योंकि इससे आगे चलकर विनाश ही होता है; क्योंकि इन इन्द्रियों के पराधीन पुरुषों की दृष्टि को अनेक सांसारिक विषय-वासनाओं में लिप्त इन्द्रिय रूपी घोड़ों के द्वारा उड़ाई हुई विषयवासना रूपी धूल मलिन बना देती है अर्थात् कलंकित कर देती है । "सम्भावितस्य चाकीर्त्तिः मरणादतिरिच्यते" गीता के इस कथन के अनुसार

लब्धप्रतिष्ठा की बुराई (निन्दा) तो मृत्यु से भी बढ़कर होती है अतः आपने सरस्वती को शाप देकर अयश ही कमाया है कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं किया है।

(९) विशुद्धया हि धिया पश्यन्ति कृतबुद्धयः सर्वानर्थानसतः सतो वा।

ब्रह्मा जी ने दुर्वासा से कहा कि निश्चित एवं स्थिर बुद्धि वाले लोग कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करके व्यवहार करते हैं। आपके समान सहसा कोई ऐसा कार्य नहीं करते हैं जिससे वे हंसी को प्राप्त होवें।

(१०) निसर्गविरोधिनी चेयं पयः पावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः।

ब्रह्मा जी ने दुर्वासा से कहा कि हे ब्रह्मन् यह तुम्हारी सरस्वती को निरपराध शाप देने की प्रवृत्ति जल और अग्नि की एकत्रस्थिति के समान स्वाभाविक विरोध को उत्पन्न करने वाली है अर्थात् जिस प्रकार जल और अग्नि की एकत्र स्थिति स्वाभाविक विरुद्ध होती है उसी प्रकार तुम्हारी यह धर्म और क्रोध की एकत्र स्थिति स्वभावतः विरुद्ध है। अतः तुमने धर्म का आचरण करने वाले होते हुए भी क्रोध के वशीभूत होकर के सहसा निरपराध सरस्वती को शाप दे दिया है, यह तुम्हारा व्यवहार अनुचित एवं स्वभावतः विरुद्ध है।

(११) क्षमामूलं हि तपसाम्।

आगे फिर ब्रह्मा ने कहा कि क्योंकि हे ब्रह्मन् तपस्वी तो स्वभावतः क्षमावान् होते हैं आपका यह आचरण क्षमा के भी सर्वथा विपरीत है। अतः तुम्हें इस प्रकार निरपराध सरस्वती को शाप नहीं देना चाहिये था।

(१२) अतिरोषणश्चक्षुमानन्ध एव जनः।

क्योंकि हे ब्रह्मन्! अत्यन्त क्रोधी स्वभाव वाला व्यक्ति तो आँखों वाला होते हुए भी अन्धा होता है। अतः तुम्हारा यह आचरण सर्वथा निन्द्य एवं मूर्खतापूर्ण है।

(१३) न हि कोपकलुषिता विमृशतिमतिः कर्तव्यमकर्तव्यं वा।

आगे पुनः ब्रह्मा ने कहा कि हे ब्रह्मन्! क्रोध से कलुषित (दूषित) हुई बुद्धि कुछ विचार करने (सोचने) में समर्थ नहीं होती है। अतः क्रोधग्रस्त बुद्धि करणीय अकरणीय का विचार नहीं कर पाती है। अतः क्रोध के वशीभूत होकर तुमने बिना सोचे ही निरपराध सरस्वती को शाप दे दिया है।

(१४) अनुचिता खल्वस्य मुनिवेषस्य हास्यष्टिरिव वृत्तमुक्ता चित्तवृत्तिः ।

आगे फिर ब्रह्मा ने कहा कि ब्रह्मन् शील (सदाचरण) से रहित तुम्हारी यह क्रोध प्रवृत्ति मुनिवेष के लिये अनुकूल नहीं है अपितु मुनिवेश के सर्वथा विपरीत एवम् अनुचित है। जैसे मुक्ताहार की शोभा विलास व्यक्तियों के शरीर पर ही होती है किसी तपस्वी के लिये मुक्ताहार धारण करना शोभा नहीं देता है अपितु तपस्वी को मुक्ताहार धारण करना अनुचित प्रतीत होता है, उसी प्रकार तुम्हारी यह क्रोधपूर्ण चित्तवृत्ति मुनिवेष के सर्वथा विपरीत एवम् अनुचित है।

(१५) न खल्वनेडमूकाः एडा जडा वा सर्वं एते महर्षयः ।

हे ब्रह्मन् ये सब उपस्थित सभा में बैठे हुये मुनि लोग कान के बहरे, नेत्रों से अन्धे और मूर्ख नहीं हैं। तुमने राग और द्वेष-पूर्ण हृदय को न रोक कर निरपराध सरस्वती को शाप दे दिया।

(१६) निष्कारणा च निकारकणिकाऽपि कलुषयति मनस्विनोऽपि मानसमसदृश-जनादापतन्ती ।

सरस्वती से सावित्री ने कहा कि हे सखि ! विना कारण अर्थात् निष्प्रयोजन (व्यर्थ) अयोग्य व्यक्ति के द्वारा किया गया थोड़ा भी अपमान स्वाभिमानी जनों के मन को उसी प्रकार मलिन कर देता है जिस प्रकार विष से थोड़ा भी जल समस्त मानसरोवर को विष विकार से युक्त वना देता है। अतः दुर्वासा के निष्कारण शाप से आपका हृदय कलुषित हो गया है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

(१७) अतिसुकुमारं च जनं सन्तापपरमाणवो मालतीकुसुममिव म्लानिमुपयान्ति ।

सावित्री ने सरस्वती से पुनः आगे कहा कि अत्यन्त सुकुमार (कोमल) स्वभाव वाले व्यक्ति को सन्ताप के अत्यन्त लघु रूप (अंश) भी मालती के पुष्प के समान मलिन कर देते हैं अर्थात् जिस प्रकार हल्की सूर्य की किरणों से मालती का पुष्प मलिन पड़ जाता है उसी प्रकार अल्प सन्ताप से भी सुकुमार व्यक्ति मलिन (दुःखी) हो जाते हैं।

(१८) महतामुपरि च निपतन्नणुरपि सृणिरिव करिणां क्लेशः कदर्थनायालम् ।
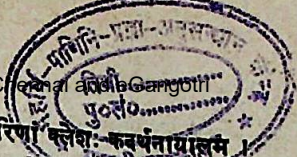
आगे पुनः सरस्वती से सावित्री ने कहा कि बड़े लोगों पर आई हुई छोटी विपत्ति भी उनको उसी प्रकार व्यथित करने में पर्याप्त होती है, जिस प्रकार बड़े-बड़े विशालकाय हाथियों को एक छोटा सा भी अंकुश व्यथित करने में पर्याप्त होता है ।

(१९) सहजस्नेह पाशग्रन्थिबन्धनाश्च बान्धवभूताः दुस्त्यजाः जन्मभूमयः ।

सावित्री ने सरस्वती से कहा कि स्वाभाविक प्रेम के बन्धन से बंधी हुई जन्मभूमि बन्धुओं के समान छोड़ी नहीं जा सकती अर्थात् भाई-बन्धुओं के समान जन्मभूमि छोड़ने में अति कठिन होती है ।

(२०) दारयति दारुणः क्रकचपात इव हृदयं संस्तुतजनविरहः ।

सावित्री ने सरस्वती को सान्त्वना देते हुये कहा कि परिचित व्यक्तियों का विरह (वियोग) भयंकर "आरा" की (तीव्र) धार के समान हृदय को विदीर्ण कर देता है अर्थात् परिचित जनों का वियोग आरे की तेज धार के समान असह्य एवं दुःखदायी हृदय को विदीर्ण करने वाला होता है ।

(२१) अप्रगल्भमपि जनं प्रभवता प्रश्रयेणार्पितं मनो मध्विव वाचालयति ।

सावित्री और सरस्वती ने शोण नदी के समीप आये हुये दधीच का स्वागत किया और फिर सावित्री ने नम्रता एवं शालीनता के साथ दधीच के विश्वास-पात्र वृद्ध सेवक से कहा कि प्रथम दर्शन के अवसर पर ही सज्जन लोग उपहार रूप में प्रेम अर्पित करते हैं । प्रभावकारी नम्रता, शील आदि के साथ अर्पित किया हुआ मन मदिरा के समान संकोची एवं अधृष्ट व्यक्ति को भी कहने के लिये बाचालित बना देता है अर्थात् जिस प्रकार मदिरा-पान से अधृष्ट व्यक्ति धृष्ट के समान वहुत बोलने लगता है, उसी प्रकार विनीत, शील आदि गुणों से युक्त व्यक्ति के सामीप्य से अधृष्ट व्यक्ति धृष्ट के समान बातें करने लगता है । अर्थात् आपकी शिष्टता, नम्रता आदि से प्रभावित हुआ मन मुझे (सावित्री को) मुखरित (कहने के लिये) धृष्ट बना रहा है ।

(२२) अयत्नेनैवातिनम्रे साधौ धनुषीव गुणः परां कोटिमारोपयति विश्रम्भः ।

सावित्री ने कहा कि अत्यन्त विनीत एवं शिष्ट स्वभाव वाले सज्जन व्यक्ति में अनायास ही विश्वास चरम-सीमा को प्राप्त कर लेता है । जिस

प्रकार झुके हुये धनुष पर प्रत्यञ्चा (डोरी) बिना परिश्रम के ही अग्रभाग को प्राप्त कर लेती है।

(२३) जनयन्ति च विस्मयमतिधीरधियामप्यदृष्टपूर्वा दृश्यमाना जगति स्रष्टुः सृष्ट्यतिशयाः।

सावित्री ने कहा कि हे वृद्धपुरुष पहले कभी न देखी हुई दिखाई पड़ने वाली ब्रह्मा के द्वारा निर्मित अत्युत्तम वस्तुयें धीर स्वभाव वाले लोगों के भी हृदय में आश्चर्य उत्पन्न कर देती है। अर्थात् दधीच कुमार के असाधारण सौन्दर्य आदि गुणों को देखकर धीर प्रकृति इन लोगों के हृदय में भी आश्चर्य उत्पन्न हो गया है।

(२४) सतां हि प्रियम्वदता कुलविद्या।

सावित्री के कथन को सुनकर दधीच के सेवक वृद्ध पुरुष ने कहा कि हे चिरंजीविनि प्रिय एवं मधुर भाषण करना सज्जनों को कुल विद्या अर्थात् उच्च कुल के ज्ञान का सूचक होता है। अतः निसन्देह आपकी उच्च कुलता अभिव्यञ्जित हो रही है।

(२५) सौजन्यभूमयो भूयसा शुभेन सज्जननिर्माण-शिल्पकला इव भवादृश्यो दृश्यन्ते।

वृद्धपुरुष ने सावित्री से कहा कि आपके समान सौजन्य की जन्मभूमि-अर्थात् सज्जनता का उत्पत्ति-स्थान रूप बहुत बड़े-बड़े शुभ (पुण्य) कर्मों से दृष्टिगोचर होते हैं अर्थात् (सहसा) मिलते हैं। क्योंकि आप जैसे सज्जन लोग सज्जनता-निर्माण-कला के समान होते हैं। अतः आप लोग सज्जनता की उत्तम-भूमि अर्थात् मूलाधार हैं।

(२६ उत्तमानां च चिरन्तनता जनयति-अनुजीविन्यपि जने कियन्मात्रमपि-मन्दाक्षम्।

उस वृद्ध पुरुष ने अपना परिचय देते हुये सावित्री से कहा कि मैं उस राजा शर्याति के वंश का परम्परागत सेवक हूं। सेवकों में सबसे अधिक प्राचीन सेवक में उत्तम एवं श्रेष्ठ अर्थात् महापुरुषों की कुछ लज्जा होती है। अर्थात् प्राचीन सेवक के प्रति उत्तम लोग लज्जा का अनुभव करते हैं। इसलिये राजा शर्याति ने मुझे इस दधीच का साथी बनाकर भेजा है।

(२७) अक्षीणः खलु दाक्षिण्यकोशो महताम् ।

वृद्ध पुरुष ने सावित्री से कहा—कि बड़े लोगों की उदारता का कोश (भण्डार) नष्ट होने वाला नहीं होता है। अर्थात् मुझ पर राजा शर्याति की महती उदारता है कि जिससे मुझे दधीच के साथ आने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

(२८) नेयमाकृतिः दिव्यतां व्यभिचरति ।

उस दधीच के सेवक वृद्ध पुरुष ने कहा कि हम लोग भी आप दोनों के वृत्तान्त को सुनने की इच्छा रखते हैं। आप दोनों की यह आकृति देवत्व की सूचना दे रही है। अर्थात आप दोनों आकृति से देवता प्रतीत होती हैं तथा देवत्व का अतिक्रमण नहीं कर रही हैं।

(२९) पुण्यभाञ्जि तानि चक्षूंसि चेतांसि यौवनानि वा स्त्रैणानि येषामसाव- विषयो दर्शनस्य ।

सरस्वती दधीच के दर्शन के समय से ही आकृष्ट होती हुई उसी के विषय में सोचती हुई कहती है कि उन युवती स्त्रियों के नेत्र, हृदय एवं उनके यौवन पुण्यशाली (धन्य) हैं जिन्होंने इस दर्शनीय परम सुन्दर दधीच का दर्शन नहीं प्राप्त किया।

(३०) मर्त्यलोकः खलु सर्वलोकानामुपरि यस्मिन्नेवं विधानि भवन्ति त्रिभुवन- भूषणानि सकलगुणग्रामगुरूणि रत्नानि ।

सरस्वती दधीच के अप्रतिम लावण्य पर मुग्ध होती हुई कहती है कि यह मृत्यु लोक ही समस्त लोकों में सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि जिसमें इस प्रकार तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ अथवा तीनों लोकों को अलंकृत करने वाले सम्पूर्ण गुणों के समूह से युक्त दधीच जैसे रत्न पुरुष निवास करते हैं।

(३१) अतिमहानुभावः खलु कुमारो येनेवमविज्ञायमाने क्षणदृष्टेऽपि जने परिचितिमनुबध्नाति ।

पुनः आये हुए दधीच के विश्वासपात्र सेवक विकुक्षि से सावित्री ने कहा—कि कुमार दधीच निश्चय ही बड़े सज्जन हैं जो इस प्रकार अपिरिचित क्षणभर के लिये देखे हुये हम लोगों पर परिचय मान रहे हैं। निश्चय ही वे बड़े सहृदय एवं सज्जन हैं।

(३२) अलसः खलु लोको यदेवं सुलभ-सौहार्द्राणि येन केनचिन्न क्रीणाति महतां मनांसि ।

सावित्री ने पुनः कहा कि यह संसार बड़ा कठोर है जो इस प्रकार स्वयं सरलता से प्राप्त मित्रताओं को और बड़े-बड़े महानुभावों के मन को नहीं खरीद लेता है । अर्थात् बिना यत्न के प्राप्त ऐसी मित्रता के वश में बड़े लोगों के मन को नहीं प्राप्त कर सकता है ।

(३३) अशून्यं हि सौजन्यमाभिजात्येन वः स्वामिसूनोः ।

सावित्री ने विकुक्षि से कहा कि निःसन्देह आपके स्वामी के पुत्र दधीच में उच्च कुल के साथ-साथ सौजन्य भी हैं अर्थात् बड़े सज्जन और कुलीन हैं।

(३४) सोऽयमौदर्यातिशयः "कोऽपि" महात्मनामितरजनदुर्लभो "येनोपकरणी कुर्वन्ति ।"

सावित्री ने आगे विकुक्षि से कहा कि बड़े लोगों में ऐसी असाधारण उदारता होती है जिससे वे तीनों लोकों के लोगों को वश में कर लेते हैं । यह असाधारण उदारता अन्य लोगों में नहीं होती है । केवल महापुरुषों में ही होती है ।

(३५) औलहः खलु संयमनपाशः सौजन्यमभिजातानाम् ।

उच्चकुल में उत्पन्न होने वाले लोगों का सौजन्य बाँधने के लिये लोहे की जंजीर से अधिक दृढ़ (मजबूत) होता है ।

(३६) भव्या न द्विरुच्चारयन्ति वाचम् ।

जो सज्जन होते हैं वे अपनी कही हुई बात से नहीं हटते अर्थात् एक बार जो कह दिया उसका अतिक्रमण कभी नहीं करते हैं ।

(३७) अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां परव्यसनम् ।

सज्जनों का यह स्वभाव होता है कि वे गुण-दोष का विचार न करके परोपकार करते रहते हैं ।

———